संयुक्त राष्ट्रसंघ जैव विविधता दशक

वनस्पति वाणी

सितम्बर 2016 • रजत जयंती अंक 25

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत ॥

(अर्थात् सभी सुखी हों, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं
के साक्षी बनें और किसी को भी दुःख का भागी न बनना पड़े।)
-बृहदारण्यकोपनिषद 1.4.14

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

© भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 2016
इस प्रकाशन का कोई अंश निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की लिखित पूर्वानुमति के बिना पुनर्प्रवर्तित/रिट्रिवल पद्धति में भण्डारण या इलेक्ट्रॉनिक, मेकेनिकल फोटोकापी, रिकार्डिंग या अन्य किसी तरीके से ट्रांसमिट नहीं किया जा सकता है।

ISSN : 0975-4342

संरक्षक एवं प्रधान सम्पादक	:	**डॉ. परमजीत सिंह**
सम्पादक मण्डल	:	**डॉ. बी. के. सिन्हा**
		डॉ. एस. एस. दाश
		डॉ. पुष्पा कुमारी
		श्री संजय कुमार
सहयोग	:	**श्री संजीव कुमार दास**

- वनस्पति वाणी में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता, प्रमाणिकता एवं व्यक्त विचारों के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं।
- इस अंक के प्रूफ संशोधन, मुद्रण क्रम में हिन्दी एवं प्रकाशन अनुभाग के सभी कर्मचारियों ने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है।

आवरण चित्र

यरलांग घाटी, वेस्ट सियांग जनपद, अरूणाचल प्रदेश का एक मनोरम दृश्य

सौजन्य : डॉ. एस. एस. दाश

निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, सी. जी. ओ. कॉमप्लेक्स, साल्ट लेक, कोलकाता - 700 064 द्वारा प्रकाशित एवं मे. इम्प्रींटा, 243/2 बी, ए.पी.सी. रोड, कोलकाता - 700 006 द्वारा मुद्रित।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से..... (i)

सम्पादकीय

1. हिन्दी में वनस्पति विज्ञान का लोकव्यापीकरण : वनस्पति वाणी के 25 अंकों की यात्रा : एस. एस. दाश एवं संजय कुमार (iii-vi)

वनस्पति विविधता

2. टिहरी जल विद्युत परियोजना के पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन का वानस्पतिक अध्ययन : एस. के. श्रीवास्तव, प्रशान्त के. पुसालकर, अच्युता नन्द शुक्ला एवं पुरूषोत्तम डेरोलिया 1
3. कर्नल शेर जंग राष्ट्रीय उद्यान सिम्बलबाड़ा, हिमाचल प्रदेश – एक परिचय : मानस रंजन देबता, पुरूषोत्तम कुमार डेरोलिया, एस. के. श्रीवास्तव एवं अरविन्द कुमार 7
4. पश्चिमी हिमालय की संकटग्रस्त औषधीय वनस्पतियों का संरक्षण – पारम्परिक एवं वर्तमान संग्रहण विधियों की तुलनात्मक विवेचना : बृजेश कुमार, प्रशान्त के. पुसालकर एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव 11
5. उत्तराखण्ड की पारम्परिक फसलों का महत्व एवं संरक्षण : कुमार अम्बरीश एवं एस. के. श्रीवास्तव 22
6. हिमाचल प्रदेश के कुछ चयनित उच्च पर्वतीय पौधों के औषधीय गुण तथा संरक्षण की स्थिति – एक संक्षिप्त विश्लेषण : पुनीत कुमार, आर. मणिकंदन, जी.एस. पंवार और संजय उनियाल 25
7. उत्तर–पश्चिमी हिमालय : घास की आनुवंशिक विविधता का भंडार : हरमिन्दर सिंह और पुनीत कुमार 32
8. पालकोट वन्य–जीव अभयारण्य (झारखंड) की वनस्पति विविधता– एक परिचय : विजय कुमार मासतकर, पी. लक्ष्मीनरसिम्हन एवं माधुरी मोढ़क 35
9. राजस्थान की महत्वपूर्ण औषधीय वन–सम्पदा : संक्षिप्त वर्णन : चन्दन सिंह पुरोहित, रमेश कुमार एवं विनोद मैना 39
10. अचानकमार टाइगर रिजर्व : नितिषा श्रीवास्तव, अच्युता नन्द शुक्ला एवं अर्जुन प्रसाद तिवारी 45
11. संकटग्रस्त पौधों का संरक्षण व संवर्धन : एक चुनौती–एक पहल : अम्बर श्रीवास्तव, शमीम अहमद एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव 48

अपुष्पीय वनस्पति

12. शैवालों का आर्थिक महत्व : प्रतिभा गुप्ता 53
13. उभयोद्भिद : ब्रायोफाइटा समूह के लिए प्रस्तावित एक नवीन हिन्दी नाम : कृष्ण कुमार रावत 56

व्यक्तित्व

14. प्रो. वाई भारद्वाज (1895–1963): प्रख्यात शैवालविद् : आर. के. गुप्ता एवं सुदीप्त कुमार दास 57

नृ–वनस्पति / इथनोबॉटनी

15. जारवा : एक पूर्वालोकन : विनोद मैना एवं रमेश कुमार 59
16. ओड़िशा के आदिवासियों का एक बहु उपयोगी वृक्ष–साल (*शोरिया रोबस्टा*) : हरीश सिंह 64
17. असम के अल्पज्ञात खाद्य उपयोगी पादप : कंगकन पगाग, सुरेन्द्र कुमार शर्मा, ए. के. साहू एवं विपिन कुमार सिन्हा 69
18. लाई एवं मिजो जनजातियों के जन जीवन में फुयांग्पुई राष्ट्रीय उद्यान, मिजोरम के औषधीय वनस्पतियों का महत्व : समीरन पांडे एवं विपिन कुमार सिन्हा 72
19. निकोबार द्वीप समूह में नारियल की उपयोगिता : रेशमा लकरा एवं पुष्पा कुमारी 76

20.	पावन भूमि – अपर गंगा रामसर साइट वानस्पतिक संरक्षण में योगदान	: आरती गर्ग एवं पुष्पी सिंह	80
तकनीकी परिदृश्य			
21.	पादप नामकरण विज्ञान – मेलबोर्न कोड (आई.सी.एन.) का एक परिचय	: जी. पी. सिन्हा एवं नितिशा श्रीवास्तव	86
22.	*लिलियम पौलिफिल्लम* : उत्तर–पश्चिम हिमालय की स्थानीय.....	: गिरिराज सिंह पंवार	91
23.	शोध पत्रों व पत्रिकाओं की प्रभाविकता का मूल्यांकन	: मनोहर पाठक, आशुतोष कुमार वर्मा, एस. एस. दाश, कुमार अविनाश भारती	95
24.	पतंगी मांझे और धागों से भारतीय वनस्पति उद्यान में उत्पन्न खतरे	: बसंत कुमार सिंह, सी. एम. सबापथी, अरविंद प्रमाणिक एवं संजय कुमार	97
25.	पारंपरिक ज्ञान अंकीय पुस्तकालय.....	: नीलिमा ए. एम. एवं संजय कुमार	101
26.	पादप अतिक्रमण : संकल्पना.....	: कुलदीप सिंह डोगरा	104
चिरपरिचित वनस्पति			
27.	*पिसोनिया गैन्डिस* : एक अल्पज्ञात महत्वपूर्ण औषधीय वृक्ष	: देवस्मिता दत्ता प्रमाणिक, एस. एस. दाश एवं संजय कुमार	106
28.	*यूराएल फेरक्स* (निम्फेसी) मखाना : पश्चिम बंगाल राज्य में एक संभावित जलीय नकदी फसल के रूप में	: हिमांशु शेखर महापात्र एवं दिनेश लक्ष्मण शिरोडकर	109
29.	बुरांश (*रोडोडेन्ड्रॉन अरबोरियम*) : एक मनमोहक एवं गुणकारी वनस्पति	: पुष्पी सिंह एवं आरती गर्ग	111
30.	पारिजात (हरसिंगार)– एक पुनरावलोकन	: अर्जुन प्रसाद तिवारी, अच्युता नंद शुक्ला एवं भोलानाथ	113
31.	लक्ष्मणफल (*एनोना मूरिकाटा*) : एक महत्वपूर्ण वृक्ष	: विनीत कुमार सिंह एवं गोपाल प्रसाद सिन्हा	117
32.	*इंडोपेप्टाडेनिया औधेंसिस* – एक संक्षिप्त परिचय	: नीलम गौतम, अच्युतानंद शुक्ला एवं अम्बर श्रीवास्तव	120
33.	गंधेला : नंधौर वन्य जीव अभयारण्य का एक बहुउपयोगी पौधा	: कुमार अम्बरीश एवं संजय उनियाल	122
काव्यांजलि			
34.	फागुन संग पौधे	: विनोद मैना	124
35.	अमलतास	: विनीत कुमार सिंह	125
36.	प्रकृति प्रार्थना	: विनीत कुमार सिंह	126
37.	वन देवता शत् शत् नमन	: प्रतिभा गुप्ता	127
38.	भारत में जल संकट	: संगीता निरंजन	128
39.	वैज्ञानिक शोध सच बोल रहे हैं	: भोलानाथ	129
पटाक्षेप			
40.	रामचरित मानस में वनस्पति	: नवीन चौधरी एवं संजीव कुमार दास	131
41.	मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में पर्यावरण	: संजीव कुमार दास	134
42.	अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिन्दी	: पुरूषोत्तम कुमार डेरोलिया एवं एस. के. श्रीवास्तव	136
43.	पर्यावरण समाचार – 2016	: संजीव कुमार दास एवं संजय कुमार	139
44.	राजभाषा कार्यान्वयन में उल्लेखनीय बिन्दु		141
45.	लेखकों के लिए निर्देश		142

डॉ. परमजीत सिंह
निदेशक

सत्यमेव जयते

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण

निदेशक की कलम से.....

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 14 सितम्बर, 1949 को भारत सरकार ने हिंदी को संघ की राजभाषा तथा देवनागरी लिपि को राष्ट्रीय लिपि के रूप में अंगीकार किया था। भारत सरकार की राजभाषा नीति के अनुपालनार्थ भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण अपने कामकाज में राजभाषा हिंदी के प्रयोग को उत्तरोत्तर बढ़ावा देने के लिए इस संगठन द्वारा प्रारम्भ की गई गृह पत्रिका 'वनस्पति वाणी' का 25वां रजत जयंती अंक सौंपते हुए अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है । यह पत्रिका गृह पत्रिका होकर भी वनस्पति विषयक एक लोकप्रिय पत्रिका के रूप में उभर कर आई है। यह राजभाषा कार्यान्वयन की प्रगति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस प्रकाशन के माध्यम से हमारा प्रयास विज्ञान का लोकव्यापीकरण करना है।

पत्रिका के नये अंक के प्रकाशन पर मैं संपादक मंडल के सभी सदस्यों एवं रचनाकारों को हार्दिक बधाई देता हूँ तथा यह विश्वास प्रकट करता हूँ कि भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के सभी अधिकारी एवं कर्मचारी पत्रिका के प्रकाशन की निरंतरता बनाए रखने के लिए अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करते रहेंगे। पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं।

(डॉ. परमजीत सिंह)

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
BOTANICAL SURVEY OF INDIA

तृतीय एम एस ओ भवन, 5 वाँ तल, सी जी ओ कामप्लेक्स, सॉल्ट लेक, सेक्टर-1, कोलकाता-700 064

दूरभाष : 033 23344963 (का);033 22837444 (आवास) ◆ फैक्स : 033 23346040

हिन्दी में वनस्पति विज्ञान का लोकव्यापीकरण : वनस्पति वाणी के 25 अंकों की यात्रा

एस. एस. दाश एवं संजय कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण मूल रूप से भारत में वनस्पति विज्ञान विषयक शोध, अन्वेषण एवं सर्वेक्षण का कार्य करते हुये देश की राजनैतिक सीमा के अंदर विभिन्न समूहों जैसे आवृत्तबीजीय, अनावृत्तबीजीय, एकबीजपत्री, द्विबीजपत्रीय, पर्णांगों (टेरिडोफाइट्स), उभयोद्भिद (ब्रायोफाइटा), शैवाक (लाइकेन), शैवाल (एल्गी) एवं कवकों के प्रलेखन, पहचान के साथ उनके संरक्षण के लिये कार्ययोजना तैयार करने का कार्य कर देश की सेवा में अनवरत कार्य करता आ रहा है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के विभिन्न प्रलेखनों और शोध अन्वेषणों एवं प्रयोगशालाओं के परिणामों पर कई पुस्तकें, जर्नल प्रकाशित होती आ रहीं हैं, इन्हीं प्रकाशनों में से एक है हमारी गृह पत्रिका "वनस्पति वाणी"। वनस्पति वाणी इसलिये भी खास है क्योंकि यह केवल गृह पत्रिका ही नहीं वरन् विशुद्ध रूप से वनस्पति विज्ञान विषय पर केन्द्रित वार्षिक पत्रिका है। आज हमें वनस्पति वाणी का 25वाँ अंक पाठकों को सौंपते हुये गर्व अनुभव हो रहा है। वैसे तो विज्ञान लोकव्यापीकरण की कई मासिक और वार्षिक पत्र–पत्रिकायें प्रकाशित होती आ रहीं हैं, लेकिन पाठ्य सामग्री और विशुद्ध वनस्पति विज्ञान पर शायद ही कोई अन्य प्रकाशन उपलब्ध है। अपने 25वें वर्ष तक के सफर में वनस्पति वाणी विज्ञान की कई रोचक रचनाओं के साथ गागर में सागर जैसी गृह पत्रिका है।

वनस्पति वाणी के 25वें अंक के सफल प्रकाशन के साथ ही हमने निर्णय लिया कि इसे विशेषांक के साथ प्रस्तुत कर पाठकों को इसके संक्षिप्त इतिहास से भी परिचित करवाया जाये। वनस्पति वाणी के प्रारम्भ होने से लेकर वर्ष 2013 तक जुड़े रहे श्री नवीन चौधरी, हिन्दी अधिकारी (सेवानिवृत्त) के अनुसार बात जनवरी 1990 है, जब राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कोलकाता की त्रैमासिक बैठक के दौरान भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के तत्कालीन संयुक्त निदेशक डॉ. स्थीन कुमार चक्रवर्ती ने हिन्दी में विभाग की ओर से एक पत्रिका प्रकाशित करने का सुझाव दिया। उनके सुझाव को सराहा तो गया किन्तु विशुद्ध वनस्पति विज्ञान विषय पर कोई पत्रिका प्रकाशित करना सरल नहीं था, वो भी गैर–हिन्दी भाषी क्षेत्र से ! मार्च 1990 में ही भारत के राजभाषा विभाग एवं राजभाषा संसदीय समिति की तीसरी उप समिति के कोलकाता दौरे के दौरान तत्कालीन निदेशक डॉ. बी. डी. शर्मा ने भी संसदीय समिति के सम्मुख भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा हिन्दी में गृह पत्रिका के प्रकाशन की घोषणा कर दी। जिसे संसदीय समिति ने सराहा और सितम्बर में होने वाले हिन्दी दिवस तक प्रकाशन करने को कहा। इसके बाद इसके स्वरूप, नाम और प्रकाशन की तकनीकी समस्याओं को सुलझाते हुये एक संपादक मंडल गठित किया गया, जिसमें मुख्य भूमिका डॉ. आर. के. चक्रवर्ती, यू. सी. भट्टाचार्य, श्री. ए. आर. के. शास्त्री एवं एस. एल. गुप्त की थी। पत्रिका का वर्तमान नाम वनस्पति वाणी भी डॉ. आर. के. चक्रवर्ती के द्वारा ही दिया हुआ है। सम्पादक सहायक रहे श्री नवीन चौधरी के अनुसार आर. के. चक्रवर्ती, का गैर हिन्दी भाषी होते हुये भी इस पत्रिका के लिये समर्पण और प्रेम अद्वितीय और सराहनीय रहा है, जिसमें उन्हें तत्कालीन निदेशक डॉ. एम. पी. नायर और बाद में निदेशक बने डॉ. बी. डी. शर्मा का हर संभव सहयोग प्राप्त हुआ। इस प्रकार नियत समय पर वनस्पति वाणी का प्रथम अंक हिन्दी दिवस 14, सितम्बर 1990 पर प्रकाशित किया गया। जिसमें विभिन्न पर्यावरणीय विषयों की 11 रचनायें प्रकाशित की गई। प्रथम अंक से ही पर्यावरणीय और वनस्पतियों पर केन्द्रित काव्य रचनाओं को सम्मिलित किया गया, प्रथम अंक के संदेश में प्रभारी अपर निदेशक डॉ. बी. डी. शर्मा ने लिखा है कि विज्ञान का समस्त अनुसंधान, सर्वेक्षण आदि मानव कल्याण के लिये ही होता है। इन सबकी जानकारी लोगों को मिलती रहें तो लाभदायक होगा, प्रचार प्रसार व संचार के माध्यम इस काम को अत्यंत सरलता से कर सकते हैं किन्तु प्रश्न है भाषा। आगे लिखते हुये वो कहते हैं कि बहुत लोगों को यह भ्रम है कि विज्ञान के लिये हिन्दी का प्रयोग सम्भव नहीं है। यह शायद इसलिये क्योंकि कदाचित जनसाधारण की भाषा में विज्ञान को अभिव्यक्ति देना बहुत आसान नहीं है। आज अनेक वैज्ञानिक भाषा के स्तर पर जनसाधारण के निकट जाने की कोशिश कर रहे हैं। विज्ञान को प्रयोगशाला के निकालकर आम लोगों तक पहुँचाने एवं विज्ञान के अन्वेषणों से जन सामान्य को जागरूक करने एवं अधिक से अधिक विद्यार्थियों की रूचि विज्ञान में विकसित करने हेतु वनस्पति वाणी जैसी पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन आज सबसे बड़ी आवश्यकता है, जिससे न केवल विज्ञान लोकव्यापीकरण में सहायता मिलेगी वरन् अभी तक केवल आयुर्वेद तक ही सीमित रहे वनस्पति विज्ञान के कई नये आयामों से लोगों को परिचित भी किया जा सकेगा।

वनस्पति वाणी के द्वितीय अंक में पाठकों को आकर्षित करने के लिये इसे प्रथम बार रंगीन छायाचित्रों के साथ वर्ष 1991 में प्रकाशित किया गया और एक नये कॉलम *'समाचार'* की शुरूआत की गई, जो अभी तक जारी है। इसी अंक में लिखे गये कुछ हिन्दी लेख पठनीय एवं ज्ञानवर्धक

हैं, जिनमें डॉ. एस. एल.गुप्त और ए. आर. के. शास्त्री का मैन्ग्रूव वनस्पति पर लिखा लेख *'कच्छ वनस्पति(मैन्ग्रोव)–लुप्त होता श्रोत'* एवं हरी शंकर पाण्डेय एवं अन्य के द्वारा बांस पर लिखा गया लेख *'आत्मदहनकारी वेणु'* प्रमुख हैं।

वनस्पति वाणी के तृतीय अंक में अपुष्पीय वनस्पतियों (शैवाल) पर बी. डी. शर्मा और एस.एल. गुप्त का लेख *"शैवाल प्रोद्यौगिकी का खाद्य उत्पादन में योगदान'* और जी. पी. राय द्वारा लिखित *'शैवाल : एक सामान्य परिचय'* से पहली बार अपुष्पीय वनस्पतियों पर लेखों का प्रकाशन किया गया। इसी अंक में डॉ. मेघ सिंह के द्वारा प्रथम बार उनकी वानस्पतिक यात्रा संस्मरण को *"अतीत के कुछ अविस्मरणीय क्षण–हमारी रालम यात्रा'* के रूप में प्रकाशित किया गया। हालांकि स्थान विशेष पर इससे पूर्व भी कई लेख जैसे त्रिलोकीनाथ हिमाचल प्रदेश और सिक्किम प्रकाशित किये जा चुके थे, डॉ. मेघ सिंह का संस्मरण वानस्पतिक सर्वेक्षणों में होने वाले रोमांच और स्व–अनुभवों पर केन्द्रित पठनीय लेख है। जिसमें उन्होंने 1969 में कुमाऊँ के रालम ग्लेशियर क्षेत्र की वानस्पतिक यात्रा का सजीव वर्णन किया है। पाठकों को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के प्रकाशनों से अवगत करवाने हेतु वनस्पति वाणी के तृतीय अंक से ही भा.व.स. के कुछ महत्वपूर्ण नये प्रकाशनों से सम्बन्धित जानकारी प्रकाशित करना प्रारम्भ की गई। इसके बाद 1993 में प्रकाशित हुये वनस्पति वाणी के चतुर्थ अंक में लेख को लेखक के संपर्क के साथ प्रकाशित किया जाने लगा, जो पूर्व के अंकों में मात्र नाम देकर ही किया जाता था। इस अंक में डॉ. रथीन कुमार चक्रवर्ती एवं अन्य के द्वारा आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान पर लिखा गया लेख इस उद्यान के इतिहास और विशेषताओं पर प्रकाश डालता है, जिसमें उद्यान में स्थापित स्मृति स्तम्भों पर अंग्रेजी, लैटिन एवं अरबी भाषा में अंकित लेखों का हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। इसके बाद के अंकों में इसी प्रकार प्रगति जारी रही, लेकिन सितम्बर 1996 के दौरान कतिपय कारणों से इसका एक वर्ष प्रकाशन नहीं हो पाया। लेकिन भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों ने हिन्दी में *"भारत की वनस्पति विविधता'* नामक पुस्तक प्रकाशित कर न केवल इसकी भरपाई की अपितु भारत के विभिन्न पादप जैव भौगोलिक क्षेत्रों पर हिन्दी में सुस्पष्ट, मौलिक और सारगर्भित रचनायें प्रकाशित कर एक नींव का पत्थर स्थापित कर दिया। इसके बाद 1997–98 में वर्ष 8–9 के रूप में इसके आठवें अंक को प्रकाशित किया गया।

सितम्बर 1999 को तत्कालीन पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा राजभाषा स्वर्ण जयन्ती वर्ष के लिये प्रस्तावित कार्यक्रम को अंगीकार करते हुये वनस्पति वाणी के नवम् अंक का विमोचन किया गया । श्री नवीन चौधरी के अनुसार इस अंक के साथ डॉ. हर्ष चौधरी, वनस्पति वाणी के संपादक बने और उन्होंने पत्रिका को नये स्वरूप में ढाल दिया। इसी अंक में प्रथम बार भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पूर्व निदेशक डॉ. सुधांशु कुमार जैन द्वारा एथनोबॉटनी विषय से सम्बन्धित लेख *कुछ पौधों के अपरिचित उपयोग* को प्रकाशित किया गया। डॉ. जैन भारत में एथनोबॉटनी के पितामह कहे जाते हैं, हालांकि वे वनस्पति वाणी के शुभारम्भ से

डॉ. रथीन कुमार चक्रवर्ती

डॉ. रथीन कुमार चक्रवर्ती का जन्म वैसे तो कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) में दिनांक 29 अक्टूबर 1939 को हुआ लेकिन उनका पालन पोषण और शिक्षा दिक्षा बिहार के भागलपुर नामक जिले में हुई । उन्होंने भागलपुर के टी. एन. बी. कॉलेज से आई.एस.सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से वनस्पति विज्ञान विषय में स्नातक (आनर्स) और 1960 में परा–स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उन्होंने 03 अप्रैल 1961 से 03 दिसम्बर 1970 तक कलकत्ता विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग में ही प्रोफेसर सिरकर के मार्गनिर्देशन में हार्मोनल रेग्यूलेशन ऑफ प्लांट ग्रोथ एंड डेवलेपमेंट (जीए) ऑन जूट प्लांट नामक प्रोजेक्ट में कार्य किया और प्लांट फिजियोलॉजी की कक्षाओं में अध्यापन का कार्य भी किया। 04 दिसम्बर 1970 को उन्होंने भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में प्लांट फिजियोलॉजिस्ट के तौर पर सेवा प्रारम्भ की। उन्हें भारतीय वनस्पति उद्यान हावड़ा में स्थित केन्द्रीय वानस्पतिक प्रयोगशाला में प्लांट फिजियोलॉजी और बायोकैमेस्ट्री का प्रभारी नियुक्त किया गया। 31 जुलाई 1980 से 31 मार्च 1982 तक डॉ. रथीन ने भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्रीय केंद्र, इलाहाबाद के प्रभारी के तौर पर कार्य किया। इसके बाद 1 अप्रैल 1982 को वे भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा के प्रभारी, नियुक्त किये गये। डॉ. रथीन कुमार चक्रवर्ती भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में विभिन्न पदों पर सेवायें देने के पश्चात् 31 अक्टूबर 1997 को अपर निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुये । सेवानिवृत्ति के बाद भी वे स्वयं को वनस्पति विज्ञान विधा का एक शोद्यार्थी मानते हैं और वर्तमान में वे कोलकाता में भारत रत्न डॉ. बी. सी. रॉय (स्वतंत्रता सेनानी और पश्चिम बंगाल के द्वितीय मुख्यमंत्री) के द्वारा स्थापित डेवलेपमेंट कोन्सोटोरियम में पर्यावरण विद् के तौर पर अपनी सेवायें दे रहे हैं।

कई वर्ष पूर्व ही सेवानिवृत्त हो गये थे, लेकिन वे एकमात्र ऐसे सेवानिवृत्त वैज्ञानिक हैं, जो लगातार एथनोबॉटनी और वानस्पतिक वर्गिकी में अपने लेखों से वनस्पति वाणी को समृद्ध कर रहे हैं और वृद्धावस्था में भी अपने अनुभवों और ज्ञान को पाठकों से बांट रहे हैं। वर्ष 2000 में वनस्पति वाणी के 10 वर्ष पूर्ण हुये और इस अवसर पर वनस्पति वाणी का विशेषांक प्रकाशित किया गया, जिसमें देश के कई संरक्षित क्षेत्रों की वानस्पतिक संपदा का संक्षिप्त वर्णन वाले लेखों को प्रकाशित किया गया, जिनमें पंचमढ़ी जीव मण्डल रिजर्व, कटरनियाघाट अभयारण्य, समसपुर पक्षी विहार (नम भूमि), इंद्रावती बाघ आरक्षित क्षेत्र, बांधवगढ़, राजाजी राष्ट्रीय उद्यान, नंदादेवी जीव मण्डल आरक्षित क्षेत्र, कर्नाला पक्षी अभयारण्य महाराष्ट्र, कान्हा बाघ आरक्षित क्षेत्र एवं फूलों की घाटी राष्ट्रीय उद्यान जैसे संरक्षित क्षेत्र प्रमुख हैं। वर्ष 2002 में वनस्पति वाणी का 11 वां अंक प्रकाशित किया गया, इस अंक में पूर्वोत्तर भारत के सामबद्ध पर्णांग एक अवलोकन नामक लेख में पूर्वोत्तर भारत में पर्णांग की 58 जातियों पर सारगर्भित लेख प्रकाशित किया गया।

अंक 12 से वनस्पति वाणी को तत्कालीन निदेशक डॉ. एम. संजप्पा का संरक्षण प्राप्त हुआ। गैर हिन्दी भाषी होते हुये भी डॉ. एम. संजप्पा ने राजभाषा हिन्दी और राजभाषा में विभागीय गतिविधियों के क्रियान्वयन में सक्रिय भूमिका का निर्वहन किया। अंक 13 में वनस्पति विज्ञान के लोकव्यापीकरण के लिये भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों के द्वारा किये गये वानस्पतिक सर्वेक्षणों एवं शोधों पर कई लेख प्रकाशित किये गये। वर्ष 2005 में प्रकाशित अंक 14 से इसे पाठकों हेतु और भी रूचिकर और ज्ञानवर्धक बनाने हेतु वनस्पति वाणी को आर्कषक डिजाइन प्रदान किया गया, जिसमें सम्पादक हर्ष चौधरी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इस अंक से वनस्पति वाणी में वनस्पतियों पर लिखे जाने वाले लेखों में भी नवीनता की शुरूआत हुई और 'सुनामी लहरें बनाम मानव अतिक्रमण' और 'जीन रूपांतरित और सुपर ऑरगेनिक फसलें' जैसे वैज्ञानिक लेखों को भी इसमें समाहित किया गया। अंक 15 में इसी परिपाटी पर रचनाओं को प्रकाशित किया गया, इसी अंक में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण पूर्व निदेशक डॉ. सुधांशु कुमार जैन के द्वारा हिन्दी में प्रकाशित "बोन्साई" नामक पुस्तक की समीक्षा भी प्रकाशित की गई। यह अब तक वनस्पति वाणी में लिखी गई प्रथम पुस्तक समीक्षा है। इसी दौरान भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा प्रकाशित प्रथम कविता संग्रह 'यह पर्यावरण हमारा है' को संसदीय राजभाषा समिति की तीसरी उपसमिति के उपाध्यक्ष प्रो. रामदेव भण्डारी के द्वारा विमोचित किया गया। 2007 में तत्कालीन प्रभारी, प्रकाशन अनुभाग, डॉ. परमजीत सिंह (वर्तमान में निदेशक) के नेतृत्व में वनस्पति वाणी के 16वें अंक में सकारात्मक बदलाव के साथ इसे और भी अधिक आकर्षकता के साथ इसके आकार में भी परिवर्तन किया गया। इस अंक में वनस्पति वाणी के सम्पादक मंडल में भी परिवर्तन हुआ और डॉ. देवेन्द्र कुमार सिंह, प्रधान सम्पादक बने, उनका दिशा निर्देशन वनस्पति वाणी को वर्ष 2013, अंक 22 तक मिला। 16वें अंक में वनस्पति शब्दावली की तकनीकी खामियों को दूर करते हुये हिन्दी के साथ उन्हें लैटिन में भी दिया गया। इस अंक में डॉ. एम.

श्री नवीन चौधरी

श्री नवीन चौधरी का जन्म 30 जून 1954 को बिहार राज्य के दरभंगा जिले के हिरनी ग्रांम में हुआ था। मैट्रिक तक की शिक्षा ग्राम स्तर से ही प्राप्त करने के बाद उन्होंने पटना कालेज से स्नातक और पटना विश्वविद्यालय से ही स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में दिनांक 1 नवम्बर 1980 को राजभाषा अनुभाग में नियुक्त हुये । दैनिक विभागीय गतिविधियों के साथ साथ वे अपनी मातृभाषा मैथली के प्रचार प्रसार से भी जुड़े हुये हैं। विभागीय गृह पत्रिका वनस्पति वाणी में उनका अमूल्य योगदान रहा है, वे वनस्पति वाणी के प्रथम अंक से लेकर सेवानिवृत्त होने तक जुड़े रहे। राष्ट्रीय स्तर पर साहित्य अकादमी से उनके द्वारा अनुवादित 5 पुस्तकें अब तक प्रकाशित की जा चुकी हैं। मैथली भाषा में उनके द्वारा लिखी दो पुस्तकें "बाट आ बटोही" और "वर्ण वितान" महत्वपूर्ण मौलिक पुस्तकें हैं। नवीन चौधरी के द्वारा प्रसिद्ध कन्नड़ लेखक के. शिवराम कारंथ की कन्नड़ भाषा में लिखी पुस्तक "मराली मारिंगे" के मैथली भाषा में किये अनुवाद "माटी मंगल" के लिये वर्ष 1996–97 का साहित्य अकादमी पुरूस्कार भी प्रदान किया गया है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण से जून 2014 में सेवानिवृत्त होने के बाद भी वे साहित्य की सेवा में लगातार कार्य कर रहे हैं, और समय समय पर विभाग में भी अपनी सेवायें देते रहते हैं। वनस्पति वाणी में प्रकाशित उनकी कुछ रचनायें हैं – कदम उठाने से पहले, अंक 1 : 1990, विज्ञान और मानवीय मूल्य, अंक 2 : 1991, हम टूटे रिश्ते जोड़ रहे हैं, अंक 3 : 1992, पर्यावरण और अर्थ व्यवस्था, अंक 4 : 1993, संवेदना हरण, अंक 6 : 1995, दैनन्दिन में पर्यावरण संरक्षण की भावना, अंक 9: 1999, भारतीय कृषि विज्ञान, अंक 12 : 2003, पुष्प परिचय, अंक 17 : 2008, वनस्पति विज्ञान की आधार शब्दावली, अंक 18 : 2009, जीव विज्ञान – शाखा प्रशाखा, अंक 19: 2010, वनस्पति विज्ञान के जनक थियोफ्रेस्टस, अंक 2 : 2013।

संजप्पा और परमजीत सिंह के द्वारा कार्ल लिनियस पर लिखा गया लेख स्वीडन के इस महान वनस्पतिज्ञ के जीवन और उनके शोध संघर्ष पर प्रकाश डालता है। इसी कड़ी में 'ग्रेट हिमालयन राष्ट्रीय उद्यान' और 'पोंग डैम नम भूमि रामसर स्थल की वानस्पतिक विविधता' पर भी लेखों को प्रकाशित किया गया। सितम्बर 2008 में पूर्ण रूप से रंगीन पृष्ठों से सुसज्जित वनस्पति वाणी के 17वें अंक का विमोचन किया गया। इस अंक के भी सभी 43 लेख अत्यंत रोचक एवं ज्ञानवर्धक हैं, जिनमें देवेन्द्र कुमार सिंह के द्वारा लिखित 'अधिपर्णी लिवरवर्ट का अनोखा संसार', 'शीत मरूस्थल भंगुर पारितंत्र की वनस्पति विविधता', छाया देवरी और टी. एम. हिन्यूटा द्वारा लिखित 'पूर्वोत्तर भारत से डेन्ड्रोबियम वंश', पी. लक्ष्मी नरसिम्हन एवं नंद लाल तिवारी द्वारा लिखित 'भारत के कुछ विशेष संकटग्रस्त एवं लुप्तप्राय पौधे', शिव कुमार के द्वारा लिखित 'विशाल जलीय लिली (विक्टोरिया) के संकर' और सुशील कुमार सिंह के द्वारा लिखित 'जैव विविधता– एक विश्लेषणात्मक अध्ययन' मुख्य हैं।

सितम्बर 2009 में प्रकाशित अंक 18 से वनस्पति वाणी में 52 रचनाओं का प्रबन्धन कर उन्हें पूर्वोत्तर क्षेत्र, नमभूमि, पादप समूह, पादप जाति विशेष, औषधीय वनस्पति, विविध, भू–मण्डलीय तापन, काव्य वाटिका, शब्द वाटिका एवं छपते छपते कालमों में विषयानुसार वर्गीकृत कर प्रकाशित किया गया। इसी अंक से सम्बन्धित वर्ष में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में राजभाषा कार्यान्वयन पर रिपोर्ट का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। इसी अंक में डॉ. एच. जे. चौधरी के द्वारा महान प्रकृतिविद् चार्ल्स डार्विन की 200वीं जयंती पर लिखा लेख अत्यंत पठनीय और ज्ञानवर्धक है। इसी परिपाटी पर वर्ष 2010 में भी वनस्पति वाणी का 19वां अंक 51 रचनाओं के साथ प्रकाशित किया गया। इस अंक के महत्वपूर्ण लेखों में एम. संजप्पा एवं अन्य के द्वारा लिखित 'आचार्य जगदीश चंद्र बोस, भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा' से इस अद्भुत उद्यान के इतिहास और विशेषताओं पर जानकारी मिलती है। देव राज अग्रवाल के द्वारा लिखित 'आइये संवारे वानस्पतिक फोटोग्राफी' से पाठकों को पुष्पों, पौधों, वृक्षों के साथ प्राकृतिक दृश्यों की सही फोटोग्राफिक तकनीक पर भी जानकारी मिलती है। इसी क्रम में पत्रिका का 20वां अंक सितम्बर 2011 में प्रकाशित किया गया। इस अंक में भी कुल 50 रचनायें प्रकाशित की गई, जिनमें डॉ. मिथिलेश कुमार पाठक और अन्य के द्वारा अरूणाचल प्रदेश के ऊपरी सियांग जिले में 3700 मी. की ऊंचाई पर स्थित प्राकृतिक झील पर लिखित 'तीतापुरी यात्रा वृत्तांत' एक रोचक और ज्ञानवर्धक लेख है। इसी अंक में हरिश चंद्र पांडे के द्वारा लिखित 'हिमालयी क्षेत्र के पर्णांगों का आवास–पारिस्थितिकीय अध्ययन' हिमालयी क्षेत्र में स्थलीय, अधिपादपीय, शैलोद्भिद् और जलीय पर्णांग विविधता पर प्रकाश डालता है। सितम्बर 2012 में वनस्पति वाणी का 21 वां अंक प्रकाशित किया गया, इस अंक में 56 रचनायें प्रकाशित की गई । इस अंक में डॉ. सुधांशु कुमार जैन, पूर्व निदेशक, भावस द्वारा लिखित 'पौधों के वानस्पतिक (लैटिन) नामकरण की जटिल संहिता : एक सरल परिचय', बिपिन कुमार सिन्हा एवं अन्य के द्वारा लिखित 'गिब्बन वन्यजीव अभयारण्य की जैव विविधता, मिथिलेश कुमार पाठक एवं अन्य के द्वारा लिखित 'पेमाश्री यात्रा वृतांत' आदि लेख अत्यंत पठनीय और ज्ञानवर्धक हैं। इसी प्रकार सितम्बर 2013 में वनस्पति वाणी के 22 वें अंक 54 रचनाओं को प्रकाशित किया गया। इस अंक में प्रकाशित मुख्य रचनाओं में चम्बल वन्य जीव अभयारण्य, नेंगपुई वन्य जीव अभयारण्य, नवाबगंज पक्षी अभयारण्य, वाल्मीकी बाघ अभयारण्य की जैव विविधता, हैदराबाद में सम्पन्न कोप–11, अरूणाचल के कुरूंग कुमे जिले की पहाड़ियों में किये गये वानस्पतिक सर्वेक्षण के यात्रा वृतांत के साथ पर्णांगों के लोकवानस्पतिक उपयोग पर भी लेख प्रकाशित किये गये। इसी श्रृंखला की अगली कड़ी के रूप में सितम्बर 2014 को वनस्पति वाणी का 23वां अंक 50 विविध विषयों की रचनाओं के साथ प्रकाशित हुआ, जिसमें डॉ. परमजीत सिंह एवं अन्य के द्वारा लिखित 'संकटग्रस्त मैंग्रोव वनस्पति', डॉ. सुनील कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य के द्वारा लिखित 'केदारघाटी–प्राकृतिक आपदा का वनस्पतियों पर प्रभाव का आंकलन' एवं डॉ प्रतिभा गुप्ता के द्वारा लिखित 'अंटार्कटिका : एक रोमांचक एवं अविस्मरणीय यात्रा' के साथ ही हिप्पोफी, ओरोजाइलम आदि लोकप्रिय विज्ञान लेख पठनीय एवं ज्ञानवर्धक हैं।

इसी परिपाटी पर पिछले वर्ष सितम्बर 2015 में वनस्पति वाणी का 24वां अंक प्रकाशित किया गया था। डॉ. परमजीत सिंह, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के मार्ग निर्देशन में वनस्पति वाणी के वर्तमान सम्पादक मंडल का लक्ष्य राजभाषा हिन्दी में प्रकाशित इस गृह पत्रिका को और भी लोकप्रिय बनाने का है। प्रारम्भ से लेकर अब तक इसका हर अंक 'गागर में सागर' की भांति वनस्पति सर्वेक्षण, शोध और लोक पारम्परिक ज्ञान की अनेक जानकारियों को संजोये हुये है। हमारा उद्देश्य है, विज्ञान को प्रयोगशाला और वैज्ञानिकों तक की सीमित न रख इसे हिन्दी की सरल भाषा का प्रयोग करते हुये आम जनमानस तक पहुँचाना। हमें आशा है कि भविष्य में भी इसी प्रकार हमारे वैज्ञानिक, अधिकारी, कर्मचारी एवं शोधार्थी वनस्पति वाणी को अपनी मौलिक रचनाओं एवं लेखों से समृद्ध बनाने में अपना सहयोग देते रहेंगे।

———

टिहरी जल विद्युत परियोजना के पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन का वानस्पतिक अध्ययन

एस.के. श्रीवास्तव, प्रशान्त के. पुसालकर, [1]अच्युतानंद शुक्ला एवं पुरूषोत्तम डेरोलिया

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

टिहरी गढ़वाल जिले में भागीरथी एवं भिलंगना नदी के संगम पर बना टिहरी बांध एक बहुउद्देशीय, मिट्टी एवं चट्टानों से भरा तटबन्ध है, जो एशिया का दूसरा सबसे बड़ा जल विद्युत बांध है। यह उत्तराखण्ड के टिहरी गढ़वाल जिले में ऊंची–ऊंची पर्वत श्रृंखलाओं के बीच 30°22'44"से 30°37'78" उत्तरी देशान्तर तथा 78°28'50" से 78°48'56" पूर्वी अक्षांश के मध्य 42.5 वर्ग किमी. में फैला हुआ है। उत्तर में जहां भागीरथी घाटी में धरासू तक वहीं दक्षिण में यह कोटेश्वर तक फैला है, जबकि भिलंगना घाटी में यह घनसाली तक फैला हुआ है। टिहरी बांध निर्माण का कार्य टीएचडीसी इंडिया लिमिटेड (पूर्व नाम टिहरी हाइड्रो डेवलपमेंट कार्पोरेशन लिमिटेड) द्वारा 1978 में आरम्भ किया गया था, जो 2006 में सम्पन्न हुआ।

पूर्व जलमग्न परिदृश्य – बांध के निर्माण के समय लगभग 91 गांवों का विशाल भू–भाग, जिसमें 22 गांव एवं टिहरी कस्बा सम्पूर्ण रूप से एवं 69 गांव आंशिक रूप से जल में समा गये। जलमग्न क्षेत्र की वनस्पतियों में मुख्यतः द्वितीयक झाड़ियां थीं। यहां रहने वाले लोगों का मुख्य कार्य कृषि था और रबी एवं खरीफ दो मुख्य फसलें होती थी। इस क्षेत्र की मुख्य फसलें गेंहू, धान, अरहर, झंगोरा, प्याज एवं तिल थी। जलमग्न क्षेत्र के प्राणियों में 9 स्तनधारी जातियां, 2 सरीसृप जातियां एवं 92 पक्षियों की जातियों का वर्णन है।

बांध निर्माण से पूर्व का वानस्पतिक अध्ययन – एक सुस्थापित तथ्य है कि बड़े बांधों का न केवल इनके निकटतम वातावरण के पारितंत्र पर बल्कि सुदूर स्थित क्षेत्रों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए भारत सरकार ने ऐसी विकास परियोजनाओं के लिये "पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन" (ई.आई.ए.) का अध्ययन करना वैधानिक कर दिया है। 1978 में टिहरी बांध का निर्माण कार्य आरंभ होने के बाद, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून के डॉ. यू. सी. भट्टाचार्य एवं डॉ. ए. के. गोयल ने 1978–1980 के दौरान "हर्बेसियस फ्लोरा ऑफ टिहरी डिस्ट्रिक्ट (गढ़वाल)" नामक प्रोजेक्ट के तहत, जल भण्डार एवं इसके आस–पास के वनस्पतिजात का सर्वेक्षण किया। भट्टाचार्य एवं गोयल (1982) ने पूर्व संग्रहण, साहित्य एवं स्वयं के पुष्पीय पादप सर्वेक्षण के आधार पर जलमग्न क्षेत्र में 99 कुलों से सम्बन्धित 462 पादप जातियों का उल्लेख किया। इस रिपोर्ट में 378

1 एवं 2. टिहरी बांध एवं उसके ऊपर बना सम्पर्क मार्ग 3. बांध के किनारे चीड़ वृक्ष का समूह, 4. नया टिहरी शहर

द्विबीजपत्री (86 कुलों के), 73 एकबीजपत्री (13 कुलों के), 4 जिम्नोस्पर्म एवं 7 पर्णांग जातियां भी सम्मिलित थी। इसमें 271 शाक, 80 क्षुप, 48 वृक्ष, 20 वल्लरी, 28 विदेशज, 58 आर्थिक महत्व के पादप तथा 12 विरल जातियों का भी वर्णन किया गया था।

पर्यावरणीय प्रभाव आंकलन के अध्ययन का कार्य भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्रीय केन्द्र, देहरादून को सौंपा गया था। इस केन्द्र के वैज्ञानिकों ने जलमग्न क्षेत्र के आस–पास के क्षेत्र की पादप विविधता का एक सम्पूर्ण विवरण तैयार किया और प्रतिवेदन पर्यावरण एवं वन मंत्रालय को प्रस्तुत किया गया, जो बाद में "टिहरी बांध की जलमग्न क्षेत्र में पादप विविधता" नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया। इस पादप विवरण के अनुसार जलमग्न क्षेत्र की वनस्पतियों में मुख्यतः शुष्कोद्भिद् जातियाँ हैं जिसके अर्न्तगत *केसिया ऑपेका, डोडोनिया विस्कोसा, लेन्टाना कमारा, यूफोर्बिया रॉलियाना, जिजिफस मोरिटियाना* एवं *रस पार्विफ्लोरा* जैसे क्षुप एवं कहीं–कहीं कुछ वृक्ष जातियां जैसे *डलबर्जिया सिस्सु, ग्रेविया ओप्टीवा, मीलिया अजाडिरेक्टा, मेंजिफेरा इण्डिका, फाइकस रेलिजियोसा, फाइकस बेंगालेन्सिस* एवं *बोम्बेक्स सिबा* आदि थी। यह पारितंत्र एस्ट्रेसी एवं पोएसी कुल के पादपों की अधिकता दर्शाता था। कृषि, आवासन ईंधन एवं चारे के लिये अत्यधिक दोहन होने से 52 वृक्ष जातियों को कम कर दिया, बल्कि बेतरतीब कटाई ने इसे एक दुर्बल शाकीय चिरस्थायी पादपजात (फ्लोरा) में बदल दिया।

चिरस्थायी पादप जात में मुख्यतः *स्टीलैरिया, हाइपेंरिकम, रिनवार्शिया, जिरानियम, केम्पेनुला, लिंडनबर्जिया, पोआ, सायप्रस* की जातियां थी। *लेन्टाना कमारा, यूपेटोरियम एडेनोफोरम, जेनथियम स्टुमारियम* और *डाडोनिया विस्कोसा* जैसे विदेशज जातियों ने यहां की स्थानिक जातियों को नदी, नालों एवं ढलान वाले नम स्थानों तक ही सीमित कर दिया था। शुष्क ढलानों पर मिलने वाली सिग्नेचर जातियां जैसे *यूफोर्बिया रॉयलियाना, अगेव केन्टुला, रस पार्विफ्लोरा, सेलास्ट्रस पेनिकुलेटस, केरिसा ओपेका,* और *जिजिफस मोरिटियाना* आदि प्रमुख पादप समुदाय बन गई थी।

इस रिपोर्ट ने न केवल पुरानी सूची में 125 नई जातियां जोड़ी बल्कि वनस्पतियों के आर्थिक एवं उपयोगी पहलुओं पर भी प्रकाश डाला। इस प्रतिवेदन के अनुसार जलमग्न क्षेत्र में न तो स्थानिक और न ही कोई संकटग्रस्त जातियां पाई गई। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने जलमग्न क्षेत्र के महत्वपूर्ण एवं स्थानिक पादपजात के संरक्षण के लिये इस क्षेत्र के पास ही वानस्पतिक उद्यान की स्थापना का सुझाव दिया ताकि स्थानिक पादप सम्पदा की उत्तरजीविता सुनिश्चित की जा सके।

बांध बंधने के बाद पुष्पी पादपीय अध्ययन – *"पोस्ट इम्पाउडमेंट फ्लोरिस्टिक सर्वे एण्ड एनालिसिस ऑफ टिहरी डैम एण्ड इनवायरान्स"* नामक पर्यावरणीय प्रभाव आंकलन का अध्ययन टीएचडीसी इंडिया लिमिटेड के निवेदन पर भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा वर्ष 2009 से 2011 तक किया। इस अध्ययन में वहाँ की वनस्पति, वनों, महत्वपूर्ण पौधों, लोक वनस्पति तथा बांध बनने से बांध के आस–पास के वातावरण एवं पौधों की विविधता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया, जो निम्न तीन विषय वस्तुओं पर केन्द्रित था।

बांध के आस पास की वनस्पतियां– सन् 1882 में ब्रिटिश वनस्पतिज्ञ एटकिन्सन ने टिहरी को उपोष्ण जलवायु में अनाच्छादित पहाड़ियों से घिरा एवं वृक्षविहीन अतिउष्णस्थल के रूप में वर्णित किया था। यहाँ पर खरपतवारों की प्रचुरता, उपोष्णीय झाड़ीनुमा जातियों का बहुलता एवं स्थानिक जातियों की अनुपस्थिति वाली सामान्य वनस्पतियां धरासू एवं देवप्रयाग की ओर भागीरथी घाटी की दूसरी ढलान के समान प्रतीत होती है। पूर्व में किया गया वानस्पतिक अध्ययन भी द्वितीयक क्षुपों एवं पर्णपाती जातियों की अधिकता क्षेत्र की शुष्कता को दर्शाता है।

स्थानीय मौसम के साथ ऊंचाई में भिन्नता, स्थलाकृति, घाटी से सम्बन्धित पहलुओं एवं वहाँ पायी जाने वाली प्रमुख वनस्पतियों के आधार पर जलभरण (कैचमेण्ट) क्षेत्र को तीन उर्ध्वाधर श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) नदी घाटी /नदी बेसिन का निचला भाग (नदी तल से 100–150 मी.) (अब बांध में डूबा हुआ): बहने वाली नदियों की नमी एवं घाटी में इसकी स्थिति के कारण यह क्षेत्र संतुलित सघन वनस्पति वाली नम एवं ठण्डी जलवायु वाला था। यहाँ वनस्पति प्रचुर मात्रा में थी, इसलिये ढलानें हरी–भरी दिखाई देती थी। ठण्डी जलवायु, पर्याप्त नमी और 'वी' आकार के बेसिन की तली के पास की जगह के कारण यहां मुख्यतः सदाबहार वनस्पति, कहीं–कहीं चीड़ के वृक्ष, ब्रायोफाइट्स के साथ–साथ प्रचुर मात्रा में पर्णांग के सघन क्षेत्र पाये जाते थे। छोटी नदियों एवं संगम स्थल में सतत रूप से जल की उपस्थिति बने रहने के कारण ये स्थल दलदली हो गये हैं, जिनमें जलीय एवं अर्द्धजलीय वनस्पति का विकास देखा गया है, ऐसा ही गोमती–ध ाार–घनसाली क्षेत्र में बालगंगा के निकट दिखाई देता है।

(2) मध्यम ढलान (ऊर्ध्वाधर बेल्ट का 150–500 मी.) (बांध में जलमगन/आंशिक जलमगन): इस क्षेत्र में न तो नदियों की नमी है ओर न ही ढलानों के कारण यहां पानी ठहरता है, अतः क्षुपीय वनस्पति एवं कहीं–कहीं वृक्षों वाला यह क्षेत्र अधिक शुष्क है। इन क्षेत्रों में अक्सर पर्णपाती जातियों की अधिकता देखी गयी है और केवल मानसून के दौरान ही जब सतह पर पौधों की वृद्धि होती है। पेड़ों की नई पत्तियां निकलती हैं तो ये हरे दिखाई देते हैं। इसी के साथ उच्च क्षेत्रों में चीड़ जल को अधिक मात्रा में अवशोषित कर लेते हैं जिसके कारण मृदा में जल की कमी होने से इस क्षेत्र में छितरायी वनस्पति मिलती है। ऐसा क्षेत्र भागीरथीपुरम से प्रतापनगर तक मध्य ढलानों पर दिखाई देता है।

(3) उच्च क्षेत्र (500 मी. से अधिक): अपेक्षाकृत अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में ठण्डी जलवायु होने से चीड़ के सघन वन पाये जाते हैं। चीड़ वन के सतही फ्लोरा में जल की कमी एवं चीड़ की पत्तियों की मोटी सतह के कारण कम गहरी जड़ों वाली कुछ गिनी चुनी जातियां ही पायी जाती हैं। यहां कुछ एक झाड़ियां एवं गहरी जड़ों वाले वृक्ष मिल सकते हैं। जिन क्षेत्रों में चीड़ के वृक्ष नहीं है तथा नदी–नालों के आसपास, सदाहरित पादप जातियों के सघन हरे क्षेत्र दिखाई देते हैं। इसी क्षेत्र का एक उदाहरण नई टिहरी में दिखाई देता है।

इस जलाशय की वनस्पति को शुष्क उपोष्ण कटिबन्धीय के रूप में श्रेणीगत किया जाता है जिसमें प्रमुख पादप समुदायों (1) चीड़ वन (2) बांज वन (3) *रस पार्विफ्लोरा* (4) *यूफोर्बिया रोयलियाना* क्षुप (5) *बॉहीनिया* जंगल तथा मिश्रित पादप समुदाय में (क) नम भूमि वाले समतल क्षेत्रों में – *डलबर्जिया – केरिसा – मुराया* – एडाटोडा समुदाय (ख) सड़क के किनारे वाली छायादार ढलानों में *मीलिया – फाइकस* समुदाय (ग) शुष्क ढलानों पर *लेन्टाना – कैरिसा – रस यूफोर्बिया – बाम्बेक्स – पाइरस* समुदाय (घ) सड़क के किनारे *डलबर्जिया – फाइकस ग्रेविया – लेन्टाना – केरिसा* समुदाय (ड़) कस्बे से पहले एवं सड़क के किनारे, अपरदित भूमि पर *फाइकस – डलबर्जिया – ग्रेविया – लेन्टाना* समुदाय (च) अत्यधिक विक्षुब्ध जगहों पर *मीलिया – डलबर्जिया – फाइकस* समुदाय तथा (छ) नदी के किनारों के ढालों पर *सिड्रेला – फाइकस* समुदाय सम्मिलित है।

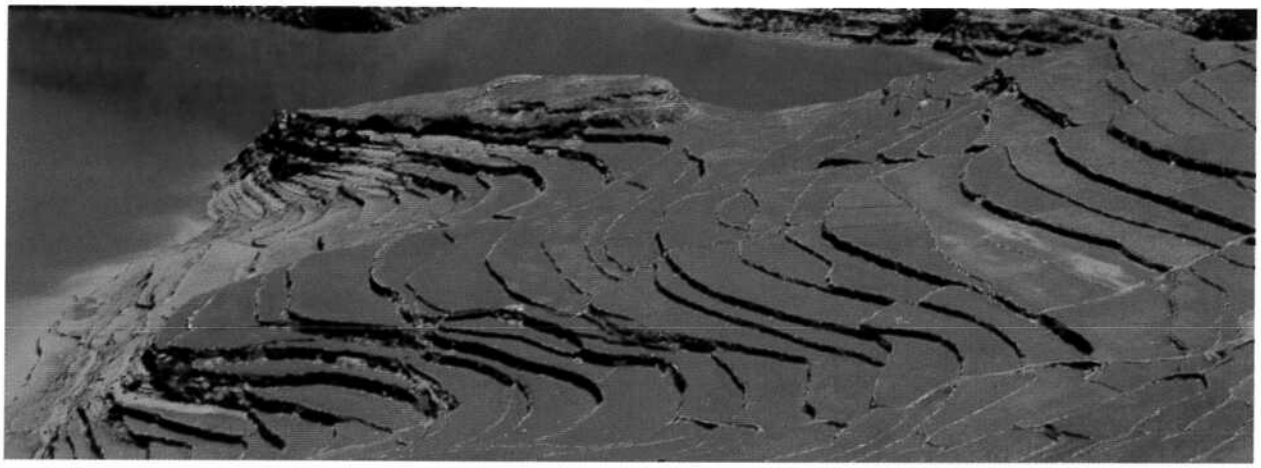

टिहरी बांध क्षेत्र में सीढ़ीनुमा कृषि भूमि का एक दृश्य

टिहरी बांध के जलग्रहण क्षेत्र की पादप विविधता सूक्ष्म जलवायुवीय परिस्थितियों के साथ बदलती रहती है तथा जातिय विविधता शुष्क छायादार ढलानों, चीड़ वन, मिश्रित वनों, झुपीत जंगल, नदी नालों ओर अवनालिकाओं के नमस्थानों, गांवों, अनावृत ढालों, छायादार ढालों, जंगलों के किनारे, त्यजित खेतों और खेतों के आस–पास अत्यधिक भिन्नता दर्शाती है। इस प्रकार से घाटी में सबसे ऊपर चीड़, मध्य ढालों पर क्षुपों के जंगल ओर जलाशय के ढालों पर छुट–पुट गांव एवं खेत दिखाई देते हैं।

समस्त क्षेत्र में चीड़ जहां भिलंगना के ढालों पर चौड़ी पत्तियों वाली वनस्पति जातियों के साथ पाया जाता है, वहीं भागीरथी के ढलानों पर यह प्रचुर मात्रा में विशुद्ध रूप से पाया जाता है। विशुद्ध चीड़ वन में केवल *पाइनस रोक्सब्रघाई* की वृक्ष जाति मिलती है, जबकि मिश्रित चीड़ वन में यह *एनोजीसस, डलबर्जिया, अकेशिया* एवं *बॉहुनिया* के साथ में मिलता है। विरल रूप से साल जहाँ चीड़ की छाया (केनोपी) में अन्तराल है वे *रूबस इलिप्टीकस, बरबेरिस चित्रिया, इण्डिगोफेरा, जिरार्डियाना, एक्मेन्थेरा टोमेन्टोसा* और *यूपेटोरियम* की जातियों से भरे पड़े हैं। जंगल की सतह मुख्यतः घास और नीडल की मोटे स्तर से ढकी रहती है, जिसमें कहीं–कहीं *फ्लेमिंजिया फ्रुटीकोसा* सामान्यतः दिखाई देती है। बांज (*क्वेरकस ल्यूकोट्राइकोफोरा*) छितराये रूप में घाटी व नालों में मिलती है। सामान्य शीतोष्ण जातियां जैसे *हाइपेरीकम ओब्लोंगीफोलियम, सोलिडागो विरगौरिया, एण्ड्रोसेसी लिनुजिनोसा, साल्विया मुकर्जिया, एरीजिरोन बेलिडिओरडिस, ग्नापलियम ल्यूटिओ–एल्बम* आदि ठण्डी वन नम आवासों में मिलती हैं। शीशम बांध के आसपास समस्त क्षेत्र में मिलता है।

फरवरी से मई तक भागीरथी घाटी में जहां पर्णपाती जातियों में अधिकांश आधिक्य में पर्णपात होने के कारण डालियां सूखी दिखाई देती हैं, वहीं *फाइकस ऑरिकुलेटा, फाइकस रेलिजियोसा, फाइकस स्केनडेन्स, साइजिनियम क्यूमिनी, डलबर्जिया सिस्सू* आदि भिलंगना घाटी के ढाल को अपेक्षाकृत अधिक हरा बनाए रखते हैं। दोनों घाटियों के ढालों में *डोडोनिया विस्कोसा, केरिसा ओपेका, सेलास्ट्रस पेनीकुलेटा, लेन्टाना कमारा, रस पार्विफ्लोरा, वुडफोर्डिया फ्रुटिकोसा, यूफोर्बिया रॉयलियाना* आदि झाड़ियों की अधिकता है।

इसी के साथ अत्यधिक हमलावार खरपतवार जैसे *यूपेटोरियम एडिनोफोरम* तथा *पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस* आदि एवं प्रमुख स्थानीय जातियां जैसे *आर्टिमिसिया* जाति, *रुमेक्स हेसटेटस* तथा सामान्य शाकीय जातियों में *एनागेलिस आर्वेन्सिस, एनाफेलिस बुसुआ, यूफोर्बिया हिरटा, आक्जेलिस कोर्निक्यूलेटा, पोर्टूलाका ओलेरेसिया, इन्यूला, सोलेनम, ट्राइडेक्स प्रोकम्बेन्स, रिनवार्शिया इण्डिका, रेननकुलस आर्वेन्सिस, सोंकस ओलेरेसियाना, अर्टिका यूरेन्स* आदि को अक्सर प्राकृतिक रूप में देखा जा सकता है।

घासें, जो चारे का प्रमुख श्रोत हैं, ढालों पर प्रचुर मात्रा में दिखाई देती है, इसकी कई जातियां हैं, जैसे *एप्ल्यूडा म्यूटिका, आर्थ्रेक्सोन लेन्सिफोलियम, बोट्रीओक्लोआ पर्टुसा, सिम्बोपोगॉन ज्वारानक्यूसा, सिम्बोपोगोन मार्टिनी, यूलालिओप्सीस बीनेटा, इम्पेरेटा सिलेन्ड्रीका, निरॉडिया अरूण्डीनेसिया, फैलेरिस माइनर, पोआ, फ्रेग्माइटिस कारका, सिटेरिया, थीमेडा एनाथेरा* आदि पाई जाती हैं। आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण *डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिकट्स* (बांस) भी चट्टानी या आंशिक छायादार ढालों पर कहीं–कहीं दिखाई देता है।

दुर्लभ जातियां जैसे *डलबर्जिया सेरेसिया, इटिया न्यूटेन्स, मार्सडेनिया रॉयली, टायलोफोरा हिर्सुटा, यूरारिया पिक्टा* आदि नम आंशिक छायादार ढालों पर, *प्रिमुला फ्लोरीबन्डा* जलधाराओं के किनारों की नम दीवारों पर तथा *जेस्मीनम मल्टीफ्लोरम* घनसाली की तरफ छायादार जगहों पर *ओसिरिस वाइटियाना* सड़क के किनारे की रेतीली ढालों पर और *डेटिस्का केनाबिना* गडोलिया नामक स्थान की तरफ आंशिक नम चट्टानी ढालों पर दिखाई देती हैं।

भागीरथी और भिलंगना के दोनों किनारों पर गांवों के आस–पास खेती भी की जाती है। यहॉ की मुख्य फसलों में सामान्यतः *एलियम सीपा* (प्याज), *एलियम सेटाइवम* (लहसुन), *ब्रेसिका जुंसीया, ब्रेसिका नाइग्रा* (राई), *केजेनस केजान* (अरहर), *केप्सिकम एनुअम* (मिर्च), *साइसर एरीटीनम* (चना), *कोलोकेसिया एस्कुलेन्टा, कुकरबिटा मेक्सिकाना, कुकरबिटा पीपों* (कद्दू), *होर्डियम वल्गेर* (जौं), *लेंस क्यूलीनेरिस, लुफा एकुटेंगुला, लुफा सिलीन्ड्रीका, लाइकोपर्सिकोन इण्डिकम, मामोर्डिका केरान्टिया, ओराइजा सेटाइवा* (धान), *नेनीकम मिलीआसीयम, फेसिओलस वल्गेरिस, पाइसम सेटाइवम* (मटर), *रेफेनस सेटाइवस* (मूली), *सिसेमम इण्डिकम* (तिल), *ट्राइकोसेन्थिस एंगुइना, ट्राइगोनेला फिनम–ग्रेसीयम, टिट्रीकम एस्टीवम* (गेंहू), *बिग्ना मुंगो* (मूंग), *वि. साइनेन्सिस, जिआ मेज* (मक्का), आदि एवं फलदार वृक्षों में *केरिका पपाया, सिट्रस* प्रजातियाँ, *जुगलेंस रीजिया, मेंजिफेरा इण्डिका, मोरिंगा ओलिफेरा, मूसा पेराडिसीएका, प्रुनस आमिनीएका, प्यूनिका ग्रेनेटम्, सीडीयम गुआजावा* आदि दिखाइ देते हैं।

नदी के दूसरे किनारे पर वनस्पति अपेक्षाकृत अधिक सघन है। *फिनिक्स ह्यूमिलीस* एक शीतोष्ण ताड़, यद्यपि समस्त क्षेत्र में कहीं–कहीं विद्यमान हैं, लेकिन उदग्र ढाल इस जाति का इतना बाहुल्य और कहीं नहीं दिखाई देता। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि कोटेश्वर जलाशय का पानी इन ढलानों को नम बनाए रखता है। लेकिन इसके कारण भविष्य में यहां भूस्खलन भी हो सकता है, जिसके कारण न केवल मिट्टी का कटाव होगा बल्कि इन ढालों पर वनस्पति की सघनता को भी खतरा हो सकता है।

वनस्पतिजात का सांख्यिकीय विश्लेषण : यह वानस्पतिक अध्ययन यहाँ संवहनी पादपों की 718 जातियां की उपस्थिति दर्शाता है। 52 जातियों के अतिरिक्त (जो फसल के रूप में या सड़क के किनारे रोपी गयी हैं) इस क्षेत्र में आवृतबीजी, जिम्नोस्पर्म तथा टेरीडोफाइट से सम्बद्ध 124 कुलों की 666 जातियां पाई जाती हैं, इनमें से 98 कुलों के 429 वंशों की 630 जातियां आवृतबीजियों की जिनमें 90 कुलों के 346 वंशों की 513 जातियां द्विबीजपत्री एवं 18 कुलों से सम्बद्ध 83 वंशों की 117 जातियां एक बीज पत्री की हैं। जिम्नोस्पर्म की केवल दो जातियां *पाइनस रॉक्सब्रघाई* एवं *क्यूप्रेसस टोरूलोसा* ही पाई जाती हैं, जबकि टेरीडोफाइट में 16 कुलों से सम्बद्ध जातियां पाई जाती हैं।

बांध बनने के बाद निम्न 28 जातियां जो पूर्व में नहीं थी जो इस स्थान के पादपजात में नई सम्मिलित हो गयी हैं –

ये जातियां *एलनस नेपालेन्सिस, आर्टिमीसिया इलीगेंटीसीमा, एस्पारेगस एडसेन्डेन्स, बरबेरिस सिस्क्आरिका, बरबेरिस एरिसटाटा, बरबेरिस चित्रिया, कोनिजा स्ट्रीक्टा, इलेटोस्टेमा क्यूनिआटम, यूफोर्बिया हेटरोफिल्ला, फ्लेमिंजिया पेनिकुलेटा, लोट्स कोर्नीक्यूलेटस, पीलिआ अम्ब्रोसा, प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा, क्वेरकस ल्यूकोट्राइकोफोरा, थेलिक्ट्रम फोलिओलोसम, साल्वीया मुकर्जिया, सोरॉइआ नेपालेन्सिस, सेमीकार्पस एनाकार्डियम, सोलेनम वरजिआनम, सोलीडेगा विरगौरिआ, स्पीरिआ बैला, ट्रेगोपोगोन ग्रैसिलीस, सिलेजीनेला क्राइसोकोमा, जिजीफॅस नयूमेलेरिया, जिजीफॅस आक्सीफाइला* आदि जलमग्न पूर्व उपस्थित वनस्पति जात की सूची में नई जोड़ी गई है।

पारिस्थितिकीय एवं वनस्पतिक परिवर्तनों के महत्वपूर्ण अवलोकन :

1. हरियाली के पुर्नस्थापन में बांध की आर्द्रता प्रणाली निश्चित रूप में सकारात्मक प्रभाव डालती है, लेकिन जातियों की संख्या में वृद्धि के लिये केवल झील की आर्द्रता को ही श्रेय नहीं दिया जा सकता, जैसा कि वर्तमान अध्ययन क्षेत्र में पहाड़ी शिखर वन भी सम्मिलित हैं, उनमें मध्य ढालों और जलमग्न क्षेत्र की अपेक्षा अधिक जातीय विविधता है।

2. चोटी के ऊपर की ठण्डी जलवायु में चीड़ का दीर्घकालिक संग्रह है, जो टिहरी बांध के जलीय क्षेत्र की ढालों से अधिक है। नई टिहरी कस्बे के शहरीकरण से अनवृत हो गया है, जबकि यहाँ पूर्व में चीड़ के वन क्षेत्र थे।

3. झील की तरफ के ढलानों पर कई स्थानों पर सड़क कटने से मलवा जम जाता है, जिससे ऊपरी ढलान अस्थिर हो जाते हैं, और भूस्खलन होने से वनस्पति का नुकसान होता है। ऐसे अस्थायी क्षतिग्रस्त/वनस्पति के क्षेत्र कई जगहों पर देखे गये हैं।

4. पुष्पीय पादप विविधता का संख्यात्मक एवं स्तरात्मक विश्लेषण यह दर्शाता है कि कुछ सामान्य जातियां अब विरल हो गयी हैं। यह मुख्यतः ऊंचाई में परिवर्तन के कारण हैं, लेकिन यह ज्यादा ध्यान देने योग्य नहीं है, क्योकि ऐसी जातियां अध्ययन क्षेत्र के बाहर बाहुल्य में हैं।

5. बांध बनने से पूर्व के अध्ययन से पता चलता है कि जो लोग (70 प्रतिशत) कृषिगत गतिविधियों में संलग्न थे, वे नई जगहों पर व्यवसाय में प्रतिस्थापित हो गये हैं। जिसके कारण कृषि के उत्पादन में कमी हुई है, जिससे खाद्य समस्याएं बढ़ी हैं और वनों पर दबाव में वृद्धि हुई है।

6. सड़कों का तंत्र एवं वाहनों की आवाजाही बढ़ने से कुछ हानिकारक जातियों जैसे *पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस, यूपेटोरियम, एडिनोफोरम, लेन्टाना कमारा* आदि में वृद्धि हुयी है। ये जातियां सड़क के दोनों किनारों पर 2–5 मीटर तक के क्षेत्र को घेरे हुए हैं, जो स्थानीय पादप जात पर प्रमुख संकट है। इनका उन्मूलन बहुत जरूरी है।

इस परियोजना के सम्पन्न होने से बांध के आसपास की आर्द्रता प्रणाली सकारात्मक रूप से प्रभावित कर रही है और क्षेत्र में सतत रूप से हरियाली बढ़ रही है। सामुदायिक विकास एक धीमी प्रक्रिया है एवं ये तत्काल नहीं होती है। टीएचडीसी इंडिया लिमिटेड और टिहरी बांध वन प्रभाग पहले से ही संरक्षण के लिये प्रयास कर रहे हैं। इन्हीं के संयुक्त प्रयासों से आने वाले एक दो दशकों में यह हरी–भरी वनस्पति वाली घाटी तथा जलीय प्राणीजात के लिए उपयुक्त आवास की प्रतिपूर्ति करेगी।

सुझाव :

1. प्रत्येक मानसून में सड़कों के टूटने या बन्द होने के परिणाम स्वरूप न केवल ये अस्थायी ढाल बने हैं बल्कि समस्त वानस्पतिक पट्टी के लिये एक गंभीर संकट हो गया है, जिसके फलस्वरूप वनस्पति कम होने से पारिस्थितकीय पतन होगा। ऐसा भी देखा गया है कि अस्थायी रूप से अपरदन रोकने के लिये सड़कों एवं किनारों/बांध के किनारों पर कंक्रीट डाला गया है, लेकिन घास/झाड़ियों का उपयोग करके ऐसे क्षेत्रों में वृक्षारोपण के प्रयास नहीं किये गये हैं, जो अपरदन रोकने में मदद करते और आगे भूस्खलन रोकते। प्रथम बार में तीव्र बढ़ने वाली घास का रोपण तथा दूसरी बार में झाड़ियों /वृक्षों को रोपण ऐसे ढालों के स्थायीकरण में मदद करेंगे।

2. कोठी उद्यान विश्लेषण केन्द्र स्थानीय लोगों को आर्थिक महत्व की स्थानीय जातियों, उनकी लोगों के लिये पर्यावरणीय एवं आर्थिक लाभ में भूमिका के बारे में शिक्षित कर सकता है और पौधशाला से पादपों या बीजों की भी आपूर्ति कर सकता है।

3. जलाशय की आर्द्रता प्रणाली के सकारात्मक सहयोग से अब केवल खोयी हुयी वनस्पति के पुनर्भरण का उद्देश्य ही नहीं होना चाहिये बल्कि शुष्क ढालों पर वृक्षारोपण से घाटी को अधिक हरा–भरा बनाने को प्राथमिकता दी जानी चाहिये।

4. टिहरी जल विकास निगम को प्रत्येक 10 वर्ष के पश्चात् वानस्पतिक/परितंत्र से परिवर्तन के आंकलन के लिय वानस्पतिक सर्वे या परितंत्र स्तर विश्लेषण करवाया जाना चाहिए। ताकि उसके निष्कर्षों के दर्शाये गये पारितंत्र में पतन या सुधार के आधार पर आगे की नीतियों का निर्माण किया जा सके।

हरी भरी हो धरती
ओजोन–परत पूर्ण आकाश ।
निर्मल धारा जल की,
प्राण भरा हो हर श्वांस ।।

कर्नल शेर जंग राष्ट्रीय उद्यान सिम्बलबाड़ा, हिमाचल प्रदेश– एक परिचय

मानस रंजन देबता, पुरूषोत्तम कुमार डेरोलिया, एस. के. श्रीवास्तव एवं अरविन्द कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

कर्नल शेर जंग राष्ट्रीय उद्यान हिमाचल प्रदेश राज्य में सिरमौर जिले की पौंटा साहिब तहसील में स्थित है, जो हरियाणा की सीमा से लगा हुआ है। यह उद्यान 30°24′ से 30°28′ उत्तरी अक्षांश तथा 77°28′ से 77°34′ पूर्वी देशान्तर में स्थित है। इस राष्ट्रीय उद्यान की सीमा दक्षिण में कलेसर राष्ट्रीय उद्यान, हरियाणा से जुड़ी हुयी है। हिमाचल प्रदेश सरकार ने वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के अधीन सन् 1999 में जारी अधिसूचना द्वारा 19.00 वर्ग किलोमीटर में समाविष्ट क्षेत्र सिम्बलबाड़ा को वन्य जीव अभयारण्य के रूप में घोषित किया था। तत्पश्चात इस अभयारण्य की सीमाओं के युक्तिकरण के परिणाम स्वरूप 8.88 वर्ग किलोमीटर का अतिरिक्त क्षेत्र इसमें सम्मिलित किया गया। युक्तिकरण के पश्चात 27.88 वर्ग किलोमीटर के कुल वन क्षेत्र को 7 जून 2013 को वन्य जीव अभयारण्य से राष्ट्रीय उद्यान के रूप में उन्नत (अपग्रेड) किया गया।

दिसम्बर 2013 में हिमाचल प्रदेश के राज्य वन्य जीव सलाहकार बोर्ड की बैठक में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री वीरभद्र सिंह ने सिम्बलबाड़ा राष्ट्रीय उद्यान का नाम परिवर्तित करने के प्रस्ताव को मंजूरी दे दी और सिम्बलबाड़ा राष्ट्रीय उद्यान का नाम महान स्वतंत्रता सेनानी, गुरिल्ला योद्धा, आदमखोर बाघों के शिकारी, वन्यजीव संरक्षणवादी, चित्रकार और लेखक कर्नल शेर जंग (जन्मः नाहन, 1904 – निधनः दिल्ली, 1997) के सम्मान में कर्नल शेर जंग राष्ट्रीय उद्यान कर दिया गया।

इस राष्ट्रीय उद्यान का मुख्यालय अमरगढ़ है, जो पुरूवाला से 1 किमी की दूरी पर स्थित है तथा नाहन राजमार्ग से 10 किमी. की दूरी पर है। यह राष्ट्रीय उद्यान शिवालिक पहाड़ियों में हरियाणा के साथ हिमाचल प्रदेश की दक्षिणी सीमा पर स्थित है। इसकी एक प्राकृतिक सीमा मुख्य शिवालिक रिज जबकि उत्तरी और दक्षिण पूर्व की ओर दक्षिण पश्चिम की शिवालिक पहाड़ियों की उप शाखाएं हैं। उत्तर से दक्षिण का ढलान मुख्य राष्ट्रीय पार्क में शामिल है। यहां की मौसमी जलधाराएं "खाला" (बहुवचन – खाले) के नाम से जानी जाती है। इन शिवालिक पहाड़ियों में जो जल धाराएं बहती हैं, उनमें मुख्यतः गोल पत्थर पाये जाते हैं। इसकी मुख्य धाराएं सिम्बलबाड़ा घाटी के नीम्बूवाला खाला हैं, जबकि अन्य खाले आसारोड़ी खाला, कालूदेव खाला, माढुसिद्ध खाला तथा गडुख खालों के नाम से जानी जाती हैं। यह राष्ट्रीय उद्यान वन्य जीव जातियों के दीर्घावधि संरक्षण के लिये महत्वपूर्ण है। इस राष्ट्रीय उद्यान में दो छोटे मकबरे भी है, जिन्हें माणुसिद्ध की मजार और कालूदेव कहा जाता है।

इस राष्ट्रीय उद्यान की सुन्दर, रमणीय, लुभावनी घाटियां, सुरम्य सदाबहार वन, लहलहाते घास के मैदान और उसके अन्दर बहने वाले खाले देखने योग्य हैं। प्रकृति की गोद में उन्मुक्त विचरण करने वाले दुर्लभ वन्य प्राणी, आर्कषक रंग बिरंगे पक्षी तथा कीट–पतंगे यहां की अमूल्य धरोहर हैं। यहां के साल के वृक्षों की सुन्दरता अद्वितीय है।

कर्नल शेर जंग राष्ट्रीय उद्यान की कालूदेव एवं गडुक रेंज 7 वर्ग किमी की है तथा दाण्डा सुखचेनपुर 2.9 वर्ग किमी., माणुसिद्ध व दाण्डा रेंज 5.8 वर्ग किमी, कालूदेव एवं करवे का खाला रेंज 4.5 वर्ग किमी, कटापत्थर एवं छुट्टनपुर 4.2 वर्ग किमी, कोटेवाली मस्ताली, आमवाली रेंज 4. 9 वर्ग किमी में फैला हुआ है। इस राष्ट्रीय उद्यान को तीन ब्लाकों में बांटा गया है – 1. अमरगढ़ ब्लॉक, 2. सिम्बलबाड़ा ब्लॉक, 3. बेहराल ब्लॉक। अमरगढ़ ब्लॉक को गडुक एवं दाण्डा सुखचेनपुर बीट में बांटा गया है एवं सिम्बलबाड़ा ब्लॉक को माणुसिद्ध और कालूदेव बीट में जबकि बेहराल ब्लॉक को बाटामण्डी तथा बेहराल बीट में विभाजित किया गया है।

इस राष्ट्रीय उद्यान में आवृतबीजी (एंजियोस्पर्म) एवं अपुष्पीय (क्रिप्टोगैम्स) वर्ग के पादपों/वृक्षों की बहुत सी जातियां पायी जाती हैं। यहां साल व पर्णपाती वन प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। इस राष्ट्रीय उद्यान में शाकाहारी जीवों की आहारपूर्ति घास के मैदानों, साल के वृक्षों एवं तरूण पादपों, बांस, तेन्दु, सेमल, आंवला, जामुन, जंगली आम, लसोड़ा तथा कई विभिन्न वनस्पतियों द्वारा होती है। चीतल साल की पत्तियां, फूल एवं तरूण पादपों की पत्तियां काफी मात्रा में खाते हैं। सांभर को घास, शाक, क्षुप, तरूण पादप और बहुत सी वनस्पतियां पसन्द हैं, जो यहां काफी मात्रा में वनों में मिल जाते हैं।

राष्ट्रीय उद्यान में पायी जाने वाली वृक्ष जातियों में *अकेशिया कैटेचू* (खैर), *एगेल मार्मिलोस* (बेल), *एल्बिजिया प्रोसेरा* (सफेद सिरस), *एनोजिइसस लेटीफोलिया* (चाल), *बॉहनिया वेरिगेटा* (कचनार), *केशिया फिस्टुला* (अमलतास), *कार्डिया डाइकोटोमा* (लसोरा), *डलबर्जिया सिस्सु* (शीशम), *डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस* (बांस), *इम्बिलीका ऑफिसिनेलिस* (आंवला), *फाइकस ग्लोमरेटा* (गूलर), *फाइकस राक्सब्रघाई* (टिरमल/फिगूड़ा), *ग्रीविया ऑपोजिटीफोलिया* (धामन/बिहुल), *ग्रीविया इलास्टिका* (बिहुल), *लॉनिया ग्रान्डिस* (झींगन), *मेलोटस फिलीपेन्सिस* (कमेला रोहिणी), *मेन्गीफेरा इन्डिका* (आम), *मीलिया एजेडिरेका* (धरक), *फीनीक्स हयूमिलिस* (खजूर), *टर्मिनेलिया अर्जुना* (अर्जुन), *बॉम्बेक्स सीबा* (सेमल), *शोरिया रोबुस्टा* (साल), *सिजाईजियम क्यूमिनी* (जामुन), *टर्मिनेलिया बेलेरिका* (बहेड़ा), *टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा* (सेन), *टर्मिनेलिया चिबुला* (हरड़), *जिजिफस जुजुबे* (बेर), *सिड्रिला तूना* (तून), *निक्टेन्थस आरबोट्रिस्टिस* (हरसिंगार), *सेमीकार्पस एनाकॉर्डियम* (भीलवा), *उजेनिया ऊजेनेंसिस* (सांदन), *मित्रागाइना पार्विफ्लोरा* (केम्ब) एवं *एडिना कॉर्डिफोलिया* (हल्दू) मुख्य हैं।

राष्ट्रीय उद्यान में पायी जाने वाली झाड़ी एवं क्षुप जातियों में *एडाटोडा वेसिका* (बासुती), *अगेव अमेरिकाना* (रामबान), *केरिसा ओपेका* (करोंदा), *इन्डीगोफेरा जिरारडिना* (केथी), *लेन्टाना कमारा* (फूल लकड़ी), *वाइटेक्स निगुन्डो* (बाना), *वुडवॉर्डिया फ्रुटिकोसा* (धाबी), *मुर्राया कौंइनिगी*(करी पत्ता), *धतुरा सुआविओलेन्स* (धतुरा), *इन्डीगोफेरा हिर्सुटा* (काली कैंथी), *सोलेनम इण्डिकम* (वन तम्बाकू), *सोलेनमएरिएन्थम* (वन तम्बाकू), *जेन्थीयम स्टुमॉरियम* (बोकरू) मुख्य रूप से पायी जाती हैं। आरोही पादपों में प्रमुख रूप से *बॉहनिया वाहलाई* (मालझन), *मिलीशिया ऑरिकुलेटा* (गोंज), *पुईरेरिया ट्यूबरोसा* (सिराली)आदि पायी जाती हैं। घास जातियों में *सायनोडॉन डैक्टीलोन* (दूब), *क्राइसोपोगोन मेन्टस* (धोलू), *इस्चेइमम औगटीफोलिया* (भावर) मुख्य रूप से पायी जाती हैं।

यह राष्ट्रीय उद्यान छायादार आर्द्रता वाली जलवायु एवं खालों में बहती हुए जलधारा के कारण क्रिप्टोगेम्स की वृद्धि के लिए एक अच्छा सूक्ष्म आवास है। यहां बहती हुई जल धाराओं में रोड़ोफायसी, साइनोफायसी आदि कुलों के शैवाल पाये जाते हैं। इस राष्ट्रीय उद्यान में काष्ठ विगलनकारी कवक बहुतायत में पाये जाते हैं जैसे ट्रैमिट्स, गैनोडर्मा इत्यादि। यह कवक वनों के पारितंत्र को सुधारने में अहम भूमिका निभाते हैं। यहां पर कई प्रकार की पर्णांग (फर्न) जातियां पायी जाती हैं जो देखनें में काफी सुन्दर व मनोहारी होती हैं, जैसे *लाइगोडियम,चिलैन्थस, टैरिस, एडिएन्टम, ड्रायोप्टेरिस, पोलीस्टिकम* आदि। यहां कि नदी–नालों के किनारों पर *इक्विसिटम डेबाइल* नामक पर्णांग पायी जाती हैं। सर्वेक्षण के दौरान यहां पर कोई भी अनावृतबीजी (जिम्नोस्पर्म) की जाति देखने को नहीं मिली। इस उद्यान में आवृतबीजी (एन्जीयोस्पर्म) वनस्पतियां प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं। यहां के वनों में मुख्य रूप से दो प्रकार की वनस्पतियां पायी जाती हैं 1. शुष्क पर्णपाती वन 2. नद–तटीय वन।

शुष्क पर्णपाती वन : सिम्बलबाड़ा राष्ट्रीय उद्यान का समस्त विस्तार शिवालिक हिमालय के उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में स्थित है। इस प्रकार के वनों में मुख्यतः *शोरिया रोबुस्टा* (साल) के वृक्ष पाये जाते है। इन वनों में साल के साथ–साथ मुख्य रूप से *टर्मिनेलिया एलिप्टिका, टर्मिनेलिया एलेटा, उजेनिया उजेनेन्सिस, हल्डिना कोर्डिफोलिया, फाइकस सेमिकार्डेटा, लानिया कॉरोमंडेलिका* आदि के वृक्ष पाये जाते है। इनके अलवा कुछ छोटे–छोटे वृक्ष जैसे *मिलीशिया एक्सटेंसा, मित्रागाइना पार्विफ्लोरा, रहेम्नस हिसुड्रिका, केरिसा ऑपेका, मुराया पेनिकुलेटा, ग्रीविया*

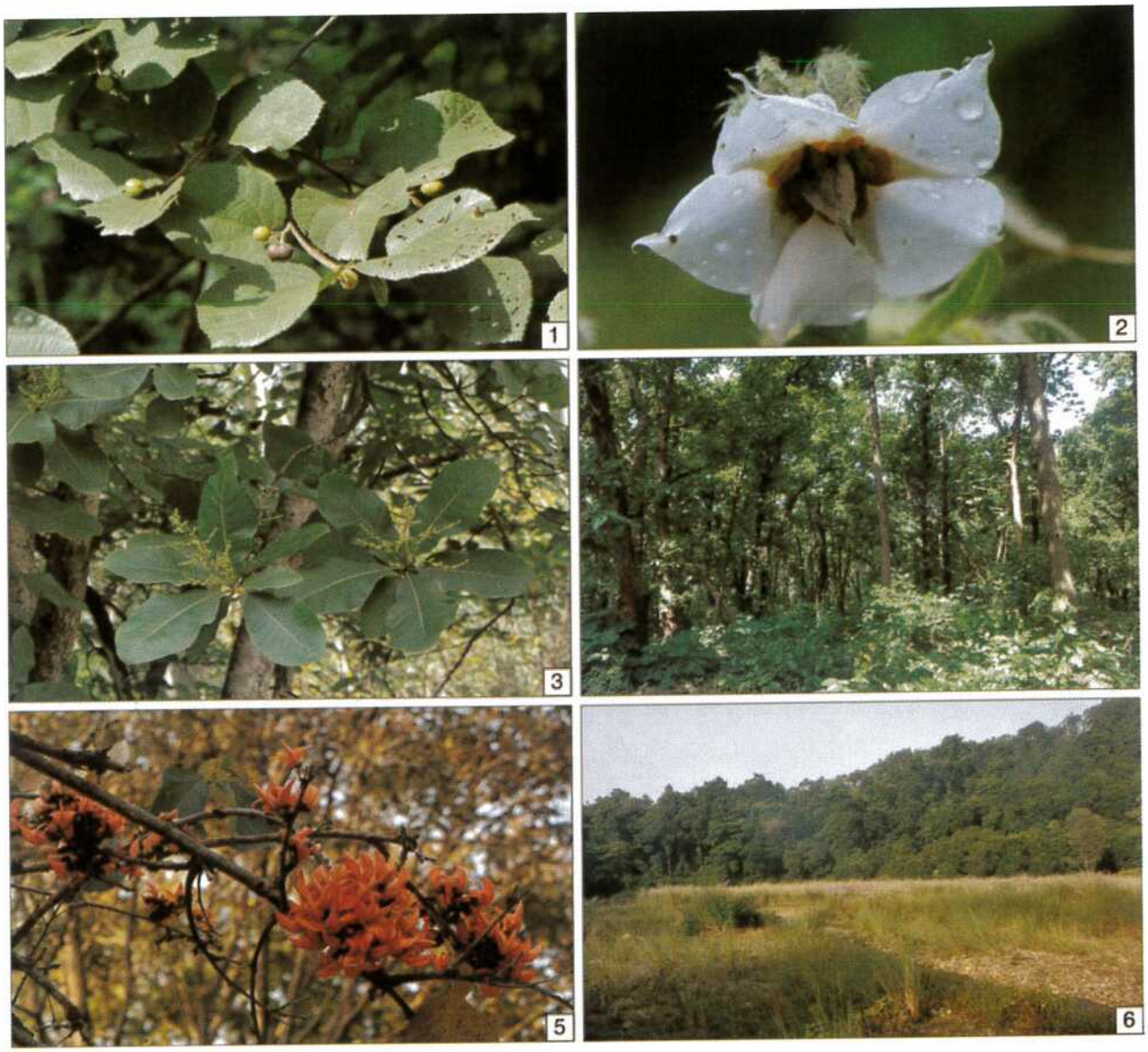

1. *ग्रीविया एशियाटिका*, 2. *ट्राइकोडेस्मा इण्डिका*, 3. *बचनानिया लेंजन*, 4. *शोरिया रोबस्टा* (साल वन), 5. *ब्यूटिया मोनोस्पर्मा*, 6. नदी तटीय घास के मैदान

एशियाटिका और *क्लेरोडेन्ड्रोन विस्कोसम* भी पाये जाते है। *शोरिया रोबस्टा* (साल) और *टर्मिनेलिया एलेटा* (सेंन) के वृक्ष राष्ट्रीय उद्यान में बहुतायत में पाए जाते हैं। लघु पहाड़ी ढलानों पर जल धाराओं के समीप वन विभाग द्वारा *यूकेलिप्टिस ग्लोब्यूलस* का सघन वृक्षारोपण किया गया था जो कि अब राष्ट्रीय उद्यान के पारितंत्र के मुख्य घटक बन गये है। *रावुल्फिया सर्पेन्टाइना* और *हिप्टेज बंगालेन्सिस* जैसी दुर्लभ जातियां भी इन वनों में पाई जाती है।

साल वृक्षों के नीचे अत्यधिक पुआल (लिट्टर) होने के कारण अन्य शाकीय पादप पनप ही नहीं पाते हैं। फिर भी जल धाराओं और नम छायादार क्षेत्रों में एस्ट्रेसी, फेबेसी, पोएसी, यूफोर्बिएसी और अमरेन्थेसी कुलों की सामान्य शाक एवं झाड़ियां पायी जाती है। इन क्षेत्रों में *अर्वा सेंगुइनोलेन्टा, बिडेन्स बाइपिन्नेटा, केरियोप्टेरिस बाइकलर, फ्लोगाकेन्थस थिर्सीफ्लोरस, प्लूचिया लेंसिओलेटा, क्रोटोलेरिया एल्बिडा, डेस्मोडियम पल्चेलम, फ्लेमिंजिया फ्रुटिक्यूलोसा, यूफोर्बिया हिर्टा* आदि जातियां दिखाई देती है।

नदी तटीय वन : इस तरह की वनस्पति नम छायादार और अनाच्छादित क्षेत्रों में जल धाराओं के तटों के आस पास पाई जाती है, जो कि

पर्णांगों एवं शाकीय पादपों की वृद्धि में सहायक होती है। इस तरह की वनस्पति मुख्य रूप से अच्छे मानसून पर निर्भर करती है जिससे कि राष्ट्रीय उद्यान के ऊपरी जलागम क्षेत्रों मे भरपूर बरसात होती है। राष्ट्रीय उद्यान बरसात के बाद सूखा दिखाई देता है लेकिन प्रवाहमान जलधाराएं कहीं कहीं देखी जा सकती है यद्यपि राष्ट्रीय उद्यान के उत्तरी छोर पर वर्षभर प्रवाही नाले–खाले दिखाई देते है। राष्ट्रीय उद्यान क्षेत्र मे आर्द्रता बनाए रखने के लिए जलधाराएं ही जिम्मेदार होती है।

यहां पाई जाने वाली शाकीय जातियों में मुख्यतः *अमानिया बेकिफेरा, रोरिपा मोन्टाना, यूफोर्बिया प्रोस्ट्रेटा, इन्डीगोफेरा लिनिफोलिया, ट्राइडेक्स प्रोकॅमबेंस, बेगोनिया पिक्टा, पोलिगोनम प्लेबिजम, वेरोनिका एग्रेस्टिस, वेरोनिका एनागेलिस–एक्वाटिका, ऑक्जालिस कोरनिक्यूलेटा, बायोफायटम रिनवार्टी* आदि है। *एजिरेटम कोनिजोइडिस, बिडेन्स बाइपिन्नाटा* और *लेन्टाना कमारा* आदि सामान्यतः पाई जाने वाली खरपतवार है। घास में मुख्यतः *सेकेरम बेंगालेन्सीस, सेकेरम स्पोन्टेनियम* और *वेटिवेरिया जिजनोइडिस* पाई जाती है।

वर्तमान में वैश्विक स्तर पर जैव विविधता पर विभिन्न प्रकार के खतरों को ध्यान में रखते हुए यह जरूरी है कि इस राष्ट्रीय उद्यान की जैव विविधता का प्रलेखन/डॉक्यूमेंटेशन किया जाए ताकि दुर्लभ एवं संकटग्रस्त पादप जातियों को संरक्षित करने के लिए उचित कदम उठाए जा सकें। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का उत्तरी क्षेत्रीय केन्द्र कर्नल शेर जंग राष्ट्रीय उद्यान की वानस्पतिक विविधता को पहचानने तथा प्रलेखन का कार्य कर रहा है ताकि विभिन्न वन प्रबन्धन प्राधिकरणों एवं अन्य संबन्धित विभागों द्वारा संरक्षण के क्रियाकलापों के लिए आरंभिक सूचना तैयार की जा सके।

पर्यावरण सुरक्षा का प्रण हमें लेना होगा।
स्वस्थ सुरक्षित हरा भरा जग कल को देना होगा।
पेड़ जमीं के देवता लक्ष्मी के हैं दूत ।
बेटा बेटी की तरह इनसे करो सलूक ।।

पश्चिमी हिमालय की संकटग्रस्त औषधीय वनस्पतियों का संरक्षण – पारम्परिक एवं वर्तमान संग्रहण विधियों की तुलनात्मक विवेचना

बृजेश कुमार, प्रशान्त के. पुसालकर एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

पश्चिमी हिमालय भारत के महत्वपूर्ण पादप–भौगोलिक क्षेत्रों में से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इसका विस्तार उत्तराखण्ड में गढ़वाल–कुमाँऊ से लेकर सुदूर जम्मू एवं कश्मीर तक है। भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु में भिन्नता के कारण यहाँ के उष्णकटिबन्धीय, शीत कटिबन्धीय एवं हिमाद्रि क्षेत्रों में अनुमानित 5500 पुष्पीय पौधों की जातियाँ पायी जाती हैं। उच्च हिमालयी क्षेत्रों के घास के मैदानों (बुग्यालों) में जीवन रक्षक एवं कल्याणकारी जड़ी बूटियों का अद्भुत एवं अतुल्य भण्डार भरा पड़ा है।

हिमालयी क्षेत्रों में निवास करने वाली जनसंख्या प्रमुख रूप से कृषि एवं यहाँ के जटिल पारिस्थितिकीय तंत्र के वनों से प्राप्त प्राकृतिक संसाधनों पर पूर्ण रूप से आश्रित है। यहाँ की जीविकोपार्जन पद्धतियाँ पूर्ण रूप से इनके देशज एवं पारम्परिक ज्ञान पर निर्भर करती हैं, जिसमें इनका औषधीय उपयोग एक प्रमुख ज्ञान है। जटिल एवं असाध्य रोगों का इलाज भी यहाँ मिलने वाली दुर्लभ जड़ी–बूटियों द्वारा सम्भव है। आज भी यहाँ की जनसंख्या का प्रमुख भाग इन पारम्परिक एवं देशज औषधीय ज्ञान पर पूर्णतः आश्रित है। वर्तमान में लगातार बढ़ती जनसंख्या एवं हर्बल दवाईयों की माँग में भारी वृद्धि के परिणामस्वरूप इन औषधियों की वाणिज्यिक आवश्यकताओं में भी भारी वृद्धि देखी गयी है। जिसके फलस्वरूप हिमालयी क्षेत्रों में मिलने वाली प्राकृतिक जड़ी–बूटियों के अनियंत्रित एवं अत्यधिक विदोहन से इनके अस्तित्व पर संकट उत्पन्न हो गया है।

प्राचीन प्रचलित पारम्परिक तरीकों में औषधीय महत्व के पौधों के आवश्यक भागों, जैसे–तना, छाल, पत्ती, पुष्प, फल एवं बीज का उपयोग सीमित मात्रा में किया जाता था। औषधीय पादप का संग्रहण निर्धारित समय पर तथा मुख्यतः इनकी शक्ति सामर्थ्य की प्रधान अवस्था में किया जाता था। अत्यधिक आवश्यकता होने पर वनस्पतियों के छोटे समूहों को सुरक्षित छोड़ा जाता था, जिससे प्रकृति में इनका अस्तित्व बना रहे। पादप की रोग निवारक क्षमता उसके मूल रूप में एक सीमित समय (अधिक से अधिक डेढ़ वर्ष) तक ही होने के कारण इसका अति दोहन एवं अति भण्डारण पूर्णतः बाध्यकारी था। जड़ीबूटियों को सर्वोच्च प्रभावशाली बनाने हेतु उसकी सही पहचान, मिलावट रहित संग्रहण तथा विषाक्त एवं अवांछित भाग को हटाने पर उसका सुयोग्य तरीके से भण्डारण किया जाता था।

प्राचीन समय में वैद्य लोग इन औषधीय महत्व के पौधों की नयी जानकारियों एवं वास स्थानों का पता लगाने के लिए निरन्तर हिमालयी क्षेत्रों का भ्रमण किया करते थे। ऐसे स्थान जहाँ औषधीय पौधे प्रचुर मात्रा में मिलते थे, उन स्थानों को संरक्षित करने के लिए इनका नामकरण वहाँ के स्थानीय देवताओं के क्षेत्र के नाम पर सीमांकित कर दिया करते थे। जिससे आम लोगों द्वारा उनका उपयोग प्रतिबन्धित हो सके। इसके अतिरिक्त आनुवांशिक दृष्टि से अच्छे, मजबूत एवं उच्च कोटि के फल, फूल एवं बीजों वाले पौधों को संरक्षित रखा जाता था, जिससे आने वाली पीढ़ी में प्रभावी गुणों वाले पौधों का विकास हो सके। पौधों की सही पहचान एवं उपयोग का तरीका केवल विशिष्ठ एवं उत्तरदायी लोगों को ही बताया जाता था । साथ ही इनको यहाँ की सांस्कृतिक परम्पराओं एवं धार्मिक मान्यताओं में भी शामिल किया गया था, जिससे इनको संरक्षित किया जा सके।

विगत कुछ वर्षों में हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में मिलने वाले औषधीय पौधों का अत्यधिक दोहन, औद्योगिक एवं वाणिज्यिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में यह पाया गया कि यह दोहन पूर्व में प्रचलित पारम्परिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के विपरीत किया जा रहा है, जिससे इन महत्वपूर्ण पौधों के अस्तित्व पर भयंकर संकट उत्पन्न हो गया है, जिसकी प्रतिपूर्ति आने वाले दशकों में शायद ही की जा सकेगी।

प्रस्तुत लेख में पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में पायी जाने वाली महत्वपूर्ण संकटग्रस्त औषधीय वनस्पतियों का परिचय, उपयोग, पारम्परिक पद्धतियों में संरक्षण एवं संग्रहण के तरीकों एवं वर्तमान समय में प्रचलित तरीकों का एक तुलनात्मक विवरण दिया जा रहा है।

1.*एकोनिट्म हेटरोफिलम* रॉयल (रेननकुलेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : अतीस, बोन्गा, बूआ, मोरी, फातकी, पतीस, बोना कारयो

पुष्पन एवं फलन : जुलाई – सितम्बर

उपयोग में लाया जाने वाला भाग : कन्दिल जडें
वास स्थान : हिमाद्रि क्षेत्रों के घास के मैदान (3500–4500 मी.)
वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड) नेपाल, पाकिस्तान
संरक्षण स्तर : संकटापन्न

उपयोग : एकोनाइट औषधि का प्रयोग उदर, गैस सम्बन्धी समस्याओं एवं तीव्र ज्वर में किया जाता है। इसके कन्द के अर्क से एल्कालायड एकोनिटम एवं एटीसिन प्राप्त किया जाता है। कन्दिल जड़ों का स्वाद तीखा, कड़वा कसैला होता है एवं इसका प्रयोग ज्वर–नाशक, कामोद्दीपक, भूख बढ़ाने, पाचक एवं टॉनिक के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त खाँसी, सर्दी, उल्टी, दस्त पेचिश, पेट दर्द, आंत्रशोध, बवासीर, गठिया, दाँत दर्द एवं कीड़ों को मारने के लिए किया जाता है।

2.*एकोनिट्म लिथल* ग्रिफ. (रेननकुलेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : विख, विष, जहर मीठा, मीटणू, तेलिया
पुष्पन एवं फलन : जुलाई – सितम्बर
उपयोग में लाया जाने वाला भाग : कन्दिल जडें
वास स्थान : हिमाद्रि एवं उप हिमाद्री जंगलों, घास के मैदानों में, नम आंशिक रूप से छायादार ढलानों पर (2700–4000 मी.)
वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय : उत्तराखण्ड) नेपाल।
संरक्षण स्तर : संकटापन्न

उपयोग : इसकी जड़ें जहरीली होती हैं, इसका प्रयोग दर्द, सूजन, लकवा, कुष्ठ रोग एंव सभी प्रकार के गठिया में किया जाता है। कृमिनाशक प्रकृति के कारण इसका प्रयोग बैक्टीरिया, कवक एवं कीड़ों से होने वाले उदर रोगों में भी किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : पारम्परिक दोहन में कुल ज्ञात वास स्थलों में मिलने वाली समस्त पादप आबादी के सामान्यतः एक चौथाई पौधों का चयन जड़ों को निकालने के लिये किया जाता था। प्रकृति में पौधों की सतत् आबादी को सुनिश्चित करने के लिये पहाड़ी ढलानों पर मिलने वाले कुछ पौधों को अछूता ही छोड़ दिया जाता था। पौधे का निष्कर्षण सामान्यतः फूल, फल एवं बीजों के निर्माण के पूरा होने के पश्चात् माह अक्टूबर के अन्त एवं नवम्बर की शुरूआत में किया जाता था। बीजों को पुनः अंकुरण के लिए वहीं पर छोड़ दिया जाता था। कन्दों के निष्कर्षण के लिय पूर्णतः विकसित पौधों अर्थात् जिनमें फूल, फल एवं बीजों का निर्माण पूरा हो गया हो, को उपयोग में लाया जाता था। किसी भी दशा में अपरिपक्व एवं अविकसित पौधों का प्रयोग नहीं किया जाता था। जब तक अति आवश्यक न हो एक ही क्षेत्र से पौधों का निष्कर्षण बार–बार नहीं किया जाता था। इसके लिये कम से कम दो से पांच वर्ष तक का अन्तराल सुनिश्चित था। विशेष दशा में तीक्ष्ण दवा का प्रयोग अति आवश्यक होने पर पुष्पन प्रक्रिया शुरू होने से पूर्व (माह जुलाई–अगस्त में) कन्दों के छोटे से भाग को उपयोग में लिया जाता था। इसके साथ यह भी सुनिश्चित किया जाता था कि बहुतायत आबादी अछूती रहे एवं इनके पुष्पन एवं फलन की प्रक्रिया समय पर पूरी हो।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : वर्तमान में निष्कर्षण के लिये सभी आयु वर्ग के पौधों का उपयोग किया जा रहा है। उच्च सक्रिय घटकों को प्राप्त करने के लिये पुष्पित पौधों एवं अपरिपक्व बीजों वाले पौधों का चयन किया जा रहा है। भविष्य के लिये किसी भी प्रकार की कोई भी आबादी को संरक्षित नहीं किया जा रहा है। एक ही वर्ष में एक ही क्षेत्र कई–2 बार पौधों का निष्कर्षण किया जा रहा है। जिससे इनकी आबादी कम हो रही है। यदि फलन एवं बीज निर्माण के समय पौधों का संग्रहण किया जाता है, तो इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता है कि वातावरण में बीजों का प्रकीर्णन उचित ढंग से हुआ है कि नहीं, साल दर साल नये वास स्थानों की खोज की जाती है, क्योंकि अत्यधिक दोहन से पुराने वास क्षेत्रों की आबादी में कमी हो रही है, और वहाँ इनकी कोई नई पादप वृद्धि नहीं देखी गयी है।

टिप्पणी : उत्तरकाशी, सियान गाड घाटी के स्थानीय निवासियों में यह प्रचलित मान्यता है कि सावन माह के पूर्व यदि पौधों की काट–छांट या उखाड़ा जाये तो उस वर्ष वर्षा की अच्छी सम्भावना होती है।

3.*एलियम कारोलिनिएनम* डीसी., ***एलियम स्ट्रेचियाई*** बेकर, ***एलियम वालीची*** कुन्थ (एलीयेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : फरान, जाम्बू, जंगली प्याज, लेंका, पहाड़ी प्याज।
पुष्पन एवं फलन : जून – सितम्बर

1.*एकोनिट्म हेटरोफिलम*, 2.*एकोनिट्म लिथल*, 3.*डायोस्कोरिया डेल्टॉइडिया*, 4.*नारडोस्टाकिस जटामांसी*,
5. *पिक्रोराइजा कुरूआ*, 6.*सासुरिया ओब्वोलाटा*

उपयोग में लाया जाने वाला भाग : पत्तियां, घनकन्द, फूल एवं बीज

वास स्थान : हिमाद्रि क्षेत्रों में घास के मैदान (बुग्याल) एवं पथरीले घास के ढलानों पर, उच्च हिमालयी क्षेत्रों में (3000–4700 मी.)

वितरण : *ए. कोरोलिनिएनम*– भारत (जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड), अफगानिस्तान, नेपाल एवं पाकिस्तान; *ए.स्ट्रेचियाई* – भारत (जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड), अफगानिस्तान, चीन, नेपाल एवं पाकिस्तान; *ए. वालीची* – भारत (जम्मू एवं कश्मीर से लेकर सिक्किम), भूटान, चीन एवं म्यांमार।

संरक्षण स्तर : संकटग्रस्त

उपयोग : नयी पत्तियों का प्रयोग शाक के रूप में किया जाता है। इनको धूप में सुखाकर रख लिया जाता है, जिसका प्रयोग सर्दियों में करी बनाने में किया जाता है। चोट लगने एवं घाव होने पर पत्तियों का लेप प्रयोग किया जाता है। सूखे कन्द एवं पत्तियों को मसाले के रूप में प्रयोग किया जाता है। पत्तियों से बने काढ़े का प्रयोग मसाज के लिए किया जाता है। कन्द (कार्न) का प्रयोग फेफड़े के रोगों, बवासीर एवं कब्ज रोग में किया जाता है। इसके अतिरिक्त सर्दी, खांसी, गैस, सूजन, शरीर में दर्द में भी इसका उपयोग किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके :

पत्तियों का शाक, मसाले एवं औषधि के रूप में निष्कर्षण हेतु : एक समय में एक पौधे से विकसित एक या दो पत्तियों को निकाला जाता था। साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाता था कि नई पत्तियां पूरी तरह सुरक्षित रहें, जिससे पौधे का विकास भली–भांति हो सके। अत्यधिक आवश्यकता होने पर पत्तियों का संग्रह कई पौधों से किया जाता था तथा यह ध्यान रखा जाता था कि एक ही पौधे की सारी पत्तियाँ न ली जायें। यदि पत्तियों का संग्रहण पुष्पन के दौरान किया जाता था, तो इस बात का ध्यान रखा जाता था कि पुष्पक्रम के साथ लगी 2–3 पत्तियों को अछूता रखा जाये जिससे पुष्पन की प्रक्रिया समय पर हो सके। वास स्थान के कुछ पौधों को बिल्कुल अछूता रखा जाता था, जिससे पादप आबादी बनी रहे।

कन्द का मसाले एवं औषधि के रूप में निष्कर्षण हेतु : कन्द का संग्रहण पौधे में बीजों के विकसित हो जाने के बाद किया जाता था (सितम्बर के अन्त एवं अक्टूबर की शुरूआत में) जिससे अगले वर्ष में बीजों का पूर्ण अंकुरण हो सके एवं उनकी संख्या सतत् रूप से बनी रहे। बीजों एवं फलों (कैप्सूल) का संग्रहण नहीं किया जाता था। यदि किया भी जाता था तो उनके वास स्थानों में पुनः प्रकीर्णित कर दिया जाता था। आनुवांशिक रूप से लम्बे, मजबूत, उच्च क्षमता वाले पौधों को अछूता रखा जाता था तथा उनके बीजों एवं कन्दों का प्रयोग उच्च क्षमता वाले पौधों को विकसित करने के लिए किया जाता था।

पुष्प/कली का शाक एवं औषधि रूप में उपयोग : चयनित पौधे से कुछ फूलों को ही एक समय में चुना जाता था, इसके साथ अधिक मांग होने पर कई पौधों से फूलों का चयन किया जाता था। उच्च क्षमता वाले पौधों के फूलों को संरक्षित रखा जाता था।

बीजों का औषधीय रूप में प्रयोग : विकसित बीजों को कुछ चयनित पौधों से एकत्र किया जाता था। उच्च क्षमता वाले बीजों को पुनः उन्हीं स्थानों पर प्रकीर्णित किया जाता था, जिससे अगली पीढ़ी में प्रभावी गुणों वाले पौधे विकसित हों।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : प्रायः यह देखा गया है कि सभी विकसित पौधों की समस्त पत्तियों का निष्कर्षण कर लिया जाता है। ज्ञात वास स्थानों में मिलने वाली समस्त पौधों से पत्तियों को इकट्ठा कर लिया जाता है। कन्दों को उपयोग हेतु प्रायः पुष्पन एवं फलन की प्रक्रिया के शुरूआती समय में ही कर लिया जाता है जिससे समस्त जाति के एक निश्चित वास स्थल से खत्म होने की सम्भावना बन जाती है।

4.*एन्जलिका ग्लाउका* एडगिव. (एपीयेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : चोरा, चोरू, गन्धरायन

पुष्पन एवं फलन : जून – सितम्बर

उपयोग में लाया जाने वाला भाग : प्रकंद/जड़

वास स्थान : हिमाद्रि क्षेत्रों में बिटुला – सोरबस के जंगलों के किनारों, ढलानों पर, आंशिक रूप से जलीय श्रोतों के समीप (2700–3000 मी.)

संरक्षण स्तर : संकटापन्न

वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड) नेपाल एवं पाकिस्तान

उपयोग : प्रकन्द का उपयोग भूख बढ़ाने, उत्तेजक, वातहर एवं पसीना नियंत्रक के रूप में किया जाता है। इसका प्रयोग अपच, ऐंठन, पेट फूलने, पेट में दर्द कफ की खाँसी में किया जाता है। घावों एवं पेट से सम्बन्धित रोगों में भी इसका प्रयोग करते हैं। स्थानीय लोगों द्वारा इसे करी बनाने में भी प्रयोग करते हैं एवं भोजन में विशेष स्वाद/सुगन्ध के लिए भी प्रयोग किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : प्रकन्द को उपयोग हेतु केवल पौधे के वयस्क भाग से लिया जाता था। प्रकन्द के शीर्ष भाग को जड़ सहित पुनः उत्पन्न होने के लिये छोड़ दिया जाता था। प्रकन्द/जड़ों का निष्कर्षण पादपीय आबादी के चुने हुये भाग से किया जाता था। निष्कर्षण का समय पुष्पन, फलन एवं बीज प्रकीर्णन के बाद किया जाता था जब पौधे का जीवन लगभग समाप्त हो रहा होता था। बीजो एवं फलों को अछूता रखा जाता था। जिससे वास स्थानों में बीजों का प्रकीर्णन एवं संरक्षण होता रहे। नये वास स्थानों एवं अनुकूल स्थानों की खोज हर वर्ष की जाती है।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : वर्तमान में ज्ञात क्षेत्रों में पादप आबादी के सभी पौधों का निष्कर्षण कर लिया जाता है। कायिक भागों (प्रकन्द, जड़) का संग्रहण पुष्पन, फलन एवं बीज निर्माण की प्रक्रिया के पहले ही कर लिया जाता है, जिससे बीजों का प्रकीर्णन नहीं हो पाता है। संग्रहण एवं निष्कर्षण के लिए एक ही वास स्थान का प्रयोग बार–बार करने से आबादी के खत्म होन का खतरा हो गया है। कई स्थानों पर इनकी आबादी पूरे तौर पर खत्म हो गयी है।

5.*डेक्टाइलोराइजा हत्ताजिरिया* (डी. डान) सू. (आर्किडेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : हत्ताजरी, पंजा, पंजा बूटी, सालब, सालिम पंजा, सालेप, सांचू, वॉगुलक।

पुष्पन एवं फलन : जून – अगस्त

उपयोग में लाया जाने वाला भाग : जड़ों के कन्द

वास स्थान : हिमाद्रि क्षेत्रों की ढलानों पर (3000–4500 मी.)

संरक्षण स्तर : संकटापन्न

वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर से लेकर उत्तराखण्ड) भूटान, चीन, नेपाल एवं पाकिस्तान।

उपयोग : प्रकन्द कसैला एवं कफ नाशक होता है, इसका लेप तंत्रिका टॉनिक, कामोद्दीपक, शान्ति प्रदायक एवं पोषक होता है। इसका प्रयोग विभिन्न प्रकार के तंत्रिका सम्बन्धी एवं यौन सम्बन्धी रोगों में किया जाता है। जड़ों से निकलने वाले अर्क का प्रयोग दस्त, पेचिश, हड्डी के टूटने, तीव्र ज्वर एवं किडनी से सम्बन्धित बीमारियों में किया जाता है। लद्दाखी (आमचीस) लोग इसे स्वास्थ्य टानिक के रूप में प्रयोग करते हैं।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : जड़ों, कन्दों को निकालने के लिए निश्चित आबादी के पौधों का ही चयन किया जाता था। सामान्यत निष्कर्षण अक्टूबर से नवम्बर की शुरूआत में बीजों के पकने एवं प्रकीर्णित होने के पश्चात् ही किया जाता था। जिन पौधों में पुष्पन नहीं हुआ हो ऐसे पौधो को छोड़ दिया जाता था। जब तक आवश्यक न हो, सीमा से ज्यादा संग्रहण एक निश्चित क्षेत्र से नहीं किया जाता था। एक क्षेत्र से दुबारा संग्रहण करने की सीमा दो से पांच वर्षों के पश्चात् की होती थी। पूर्ण रूप से विकसित कन्दों का ही संग्रहण किया जाता था। अपरिपक्व/अविकसित (पांच से कम अंगुलियों वाले) का संग्रहण नहीं किया जाता था, बल्कि उन्हें पुनः भूमि में विकसित होने के लिये दबा दिया जाता था। अच्छी आबादी वाले कुछ पहाड़ी ढलानों एवं घास के मैदानों को स्थानीय रूप से संरक्षित कर दिया जाता था। जिससे वहां से किसी प्रकार से पौधों को उखाड़ा न जा सके।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : ज्ञात वास स्थलों से सम्पूर्ण पादप आबादी (नये एवं वयस्क) के पौधों का पूरी तरह से उन्नमूलन किया जा रहा है। जिससे इसके अस्तित्व पर खतरा पैदा हो गया है। एक ही वास स्थान के क्षेत्रों में एक ही समय में अलग समूहों द्वारा इनका संग्रहण किया जाता रहा है। भविष्य के लिए किसी भी प्रकार की पादप आबादी को संरक्षित नहीं किया जाता हैं। बीज बनने के समय जल्दीबाजी में किये गये संग्रहण में सम्पूर्ण पौधे को उखाड़ दिया जाता है, या फिर जड़ों को निकालने के पश्चात बाकी बचे पौधे के भाग को आस–पास की नदियों में फेंक दिया जाता है। इस प्रकार अनियंत्रित संग्रहण से इनकी आबादी पर खतरा उत्पन्न हो गया है।

6.*डायोस्कोरिया डेल्टॉइडिया* वाल. (डायोस्कोरियेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : गेंथी, करीच

पुश्पन एवं फलन : जून – सितम्बर

उपयोग में लाया जाने वाला भाग : कन्दिल जडें

वास स्थान : उप हिमाद्रि वनों के किनारे लगने वाली झाड़ियों में (2500–3200 मी.)

वितरण : भारत (हिमालयी क्षेत्र : जम्मू एवं कश्मीर से लेकर अरूणाचल प्रदेष तक, उत्तर पूर्व में आसाम) अफगानिस्तान, भूटान, चीन, नेपाल एवं पाकिस्तान

संरक्षण स्तर : संकटापन्न

उपयोग : कन्दों को शाक/सब्जी तथा कृमि नाशक के रूप में किया जाता है। कन्दों से डायोस्जेनिन एवं सेयाजिनिन नामक स्टेराइड निकाला जाता है। जिसका प्रयोग खाने वाली गर्भ निरोधक दवाईयों में किया जाता है। कन्दों से निकले अर्क का प्रयोग बाल धोने, सूजन एवं मोच के इलाज में किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : कन्दिल जड़ों का संग्रहण ऐसे आरोही पौधे से किया जाता था जिसमें बीज निर्माण की प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात् (सामान्यतः सितम्बर में अक्टूबर के अंत तक) वह सूख रहा हो। इस प्रकार इसकी जनसंख्या प्रकृति में सतत् रूप से बनी रहती थी। सम्पूर्ण जड़ों को न निकालकर उनके कुछ हिस्से को ही भूमि से निकाला जाता था, जिससे पनपने की संभावना बनी रहती थी। सूखे फल (कैप्सूल) को बीजों के साथ छोड़ दिया जाता था जिससे इसका प्रकीर्णन हो सके। संग्रहण के लिए पूर्ण विकसित आरोही पौधे का ही चयन किया जाता था। नये एवं अपरिपक्व पौधे को अछूता रखा जाता था। कई जगह स्थानीय मान्यताओं में यह पाया गया है यदि जड़ों को निकालने के पश्चात् उसका कुछ हिस्सा वापस भूमि में दबा दिया जाये तो लोगों को पौधे को मारने के अपराध से मुक्ति मिल जाती थी।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : पौधे में पुष्पन एवं फलन के पूर्व ही कन्दों का संग्रहण किया जा रहा है। ऐसे वास स्थान जो आसानी से पहुँच क्षेत्र में है, वहाँ पूरी तरह से खोद कर सारी जड़ों को निकाला जा रहा है, जिससे वहॉ की पादप संख्या खत्म होती जा रही है।

टिप्पणी : खोज यात्राओं के दौरान यह पाया गया है कि ऐसे वास स्थान जहाँ घनी झाड़ियाँ हैं या सीधी खड़ी ढलाने हैं और वहाँ से जड़ों को निकालना असम्भव है। उन वास स्थलों में इस पौधे की आबादी सुरक्षित एवं भली–भांति विकसित हो रही है।

7.डोलोमिया मैक्रोसिफेला रॉयल (एस्टेरेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : धूप, गुग्गल

पुष्पन एवं फलन : जुलाई – सितम्बर

उपयोग में लाया जाने वाला भाग : प्रकन्द

वास स्थान : हिमाद्रि क्षेत्रों में घास के मैदानों एवं पथरीली घासदार ढलानों पर (3400–4500 मी.)

वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड) चीन, नेपाल एवं पाकिस्तान।

संरक्षण स्तर : संकटापन्न

उपयोग : जड़ों को एक अच्छा उत्प्रेरक माना जाता है, इसके काढ़े का प्रयोग प्रसव के बाद होने वाले ज्वर में दिया जाता है। पेट दर्द में भी इसका प्रयोग किया जाता है। जड़ों के अर्क को एन्टीसेप्टिक के रूप में प्रयोग किया जाता है। धार्मिक कार्यों में इसका प्रयोग धूप एवं सुगन्ध के लिए किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : भूस्तरी प्रकन्द एवं जड़ों का संग्रहण पादप आबादी के कुछ हिस्से (लगभग एक चौथाई) से ही किया जाता था। बीजों के परिपक्व एवं प्रकीर्णित होने के पश्चात् ही आवश्यक भाग का निष्कषर्ण किया जाता था। बीजों का संग्रहण नहीं किया जाता था जिससे प्रकृति में पादप आबादी बनी रहती थी। कायिक दशा में पौधे से किसी भी प्रकार का निष्कर्षण नहीं किया जाता था। भूस्तारी तने से निकलने वाली नयी कोंपलों/पौधों को अछूता रखा जाता था, जिससे पादप आबादी सतत् रूप से प्रकृति में बनी रहती थी।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : ज्ञात पादप वासस्थलों में मौजूद लगभग सभी पौधों से प्रकन्दों का निष्कर्षण किया जा रहा है। अपरिपक्व दशा में ही पौधों से जड़ों व प्रकन्दों का संग्रहण किया जा रहा है, जिससे इनके अस्तित्व पर खतरा उत्पन्न हो रहा है।

8.नारडोस्टाकिस जटामांसी (डी.डान) डीसी. (वेलेरियानेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : जटामासी, मांसी

पुष्पन एवं फलन : जुलाई – सितम्बर

उपयोग में लाया जाने वाला भाग : प्रकन्द
वास स्थान : हिमाद्रि क्षेत्रों में घास के मैदान तथा पथरीले घास के ढलान (3000–5000 मी.)
वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड) चीन, नेपाल एवं पाकिस्तान।
संरक्षण स्तर : संकटग्रस्त (CITES सूची–।। में अधिसूचित)

उपयोग : प्रकन्द के अर्क को कई आयुर्वेदिक औषधियों में प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग हृदय रोगों, रक्तचाप, मिर्गी, अनिद्रा एवं पेट दर्द में किया जाता है। इसके काढ़े को उत्तेजक, टॉनिक एवं रेचक के रूप में दिया जाता है। प्रकन्द से निकलने वाले तेल का प्रयोग सुगन्ध, बालों के लिये एवं संदमक के रूप में किया जाता है। धार्मिक कार्यों में इसे धूप एवं सुगन्ध के लिये प्रयोग किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : प्रकन्द/ भूस्तारी तनों को आवश्यकतानुसार निकाला जाता था। नये एवं विकसित प्रकन्दों एवं तनों को अछूता रखा जाता था, जिससे नये पौधों का विकास हो सके, आवश्यकता नहीं होने पर प्रकन्द/तनों का निष्कषर्ण प्रतिवर्ष एक ही क्षेत्र से नहीं किया जाता था, बल्कि यह प्रक्रिया सामान्यतया दो–तीन वर्षों में एक बार ही की जाती थी। प्रकन्दों/तनों के निष्कर्षण में इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता था कि प्रकृति में नैसर्गिक रूप से इसकी जनसंख्या बनी रहे।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : पादप वास स्थानों में मौजूद लगभग सभी पौधों से प्रकन्द/तनों का निष्कषर्ण किया जा रहा है। अपरिपक्व पौधे से प्रकन्दों एवं तनों का संग्रहण करने से इनके अस्तित्व पर खतरा बना हुआ है।

टिप्पणी : सामान्यतः *नारडोस्टाकिस जटामांसी* की आबादी दुर्गम खड़ी ढलानों एवं पत्थरों पर मिलती है। जिसके परिणामस्वरूप यह ऐसे क्षेत्रों में सुरक्षित पाया गया है।

9. *लिलियम पॉलीफिलम* डी. डॉन (लिलियेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : काकोली
पुष्पन एवं फलन : जून – अगस्त
उपयोग में लाया जाने वाला भाग : आभासी बल्ब
वास स्थान : उपहिमाद्रि क्षेत्रों में जंगलों के किनारे पर आंशिक रूप से छायादार स्थानों तथा झाड़ियों में (2500–3200 मी.)
वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर से लेकर उत्तराखण्ड) अफगानिस्तान, नेपाल एवं पाकिस्तान
संरक्षण स्तर : संकटापन्न ।

उपयोग : आयुर्वेदिक अष्टवर्ग औषधि के महत्वपूर्ण घटक के रूप में।

10. *मेलेक्सिस म्युसीफेरा* (लिन्डले.) कुन्थ. (आर्किडेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : रिद्धी
पुष्पन एवं फलन : जून – सितम्बर
उपयोग में लाया जाने वाला भाग : कन्दिल जड़ें
वास स्थान : हिमाद्रि घास के ढलानों पर (2700–4200 मी.)
वितरण : भारत (हिमालयी क्षेत्र : जम्मू एवं कश्मीर से सिक्किम तक) भूटान, चीन, नेपाल एवं पाकिस्तान
संरक्षण स्तर : संकटापन्न

उपयोग : आयुर्वेदिक औषधि अष्टवर्ग का एक महत्वपूर्ण घटक है। इसकी जड़ों का अर्क टॉनिक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : सामान्यतः पौधों का संग्रहण सितम्बर–अक्टूबर माह में बीजों के परिपक्व हो जाने के बाद किया जाता था। फल (कैप्सूल) एवं बीजों का संग्रहण नहीं किया जाता था, उनको पुनः उसी वास स्थल में बिखेर दिया जाता था। इससे सतत रूप से इनकी जनसंख्या बनी रहती थी। लम्बे, मजबूत, अच्छे बीजों एवं उच्च कोटि के आभासी बल्ब वाले पौधों को अछूता रखा जाता था। जिससे उच्च गुणों वाले पौधों का विकास होता रहता था।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : सामान्य तौर पर *मेलेक्सिस म्यूसीफेरा* एवं *लिलिएम पॉलिफिल्लम* को घास के मैदानों में झाडियों के बीच ढूंढ पाना मुश्किल होता है। इसलिए इसका संग्रहण पुष्पन के समय किया जाता है। जिससे दोहरी क्षति पहुंचती है। आभासी बल्बों को निकालने के लिये पूरे पौधे को उखाड़ना पड़ता है, जिसमें इस तथ्य का ध्यान ही नहीं रखा जाता है कि इनमें फूल, फल बीज आदि का विकास हुआ है कि नहीं, अत्यधिक मांग की वजह से ज्ञात क्षेत्रों की पूरी पादप आबादी को खत्म कर दिया जाता है। इस तरह एक ही वास स्थान से बार–बार संग्रहण करने से इनके विलुप्त होने का खतरा बढ़ गया है।

11. *पिक्रोराइजा कुरूआ* रॉयल एवं ***प्रिकोराइजा स्क्रोफुलेरीफ्लोरा*** पेनेल (ओरोबेंकेसी – स्क्रोफुलेरियेसी लि.)

प्रचलित सामान्य नाम : कड़वी, कार्बी करू, कुटकी
पुष्पन एवं फलन : जुलाई – सितम्बर
उपयोग में लाया जाने वाला भाग : कन्दिल जड़ें
वास स्थान : हिमाद्रि पथरीले घास मैदानों में, पानी के श्रोतों के समीप (3600–4800 मी.)
वितरण : *पि. कुरूआ* (भारत : पश्चिमी हिमालय – जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड) पाकिस्तान; *पि. स्क्रोफुलेरीफ्लोरा* (भारत : उत्तराखण्ड एवं सिक्किम), भूटान, चीन एवं नेपाल।
संरक्षण स्तर : संकटापन्न

उपयोग : इसके कड़वे प्रकन्द से एल्कॉलायड जैसे पिक्रोराइजिन, कुटकिन एवं कुटकीसॉयड आदि निकाले जाते हैं। जड़ों से निकलने वाले अर्क का उपयोग टानिक, पीलिया, लीवर सम्बन्धी बीमारियों, पेट के रोगों, श्वांस सम्बन्धी बीमारी, एलर्जी आदि के उपचार में दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक आयुर्वेदिक औषधियों में यह एक घटक के रूप में उपयोग किया जाता है।

12. *जिनसियाना कुरूआ* रॉयल (जिंसिनेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : कमल फूल, कटकी, कारू, नीलकंठ
पुष्पन एवं फलन : जुलाई – सितम्बर
उपयोग में लाया जाने वाला भाग : प्रकन्द एवं जड़ें
वास स्थान : हिमाद्रि एवं उपहिमाद्रि, ऊपरी शीतोष्ण क्षेत्रों में पथरीली छायादार एवं खुली घास की ढलानों पर (2500–3600 मी.)
वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड), अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान।
संरक्षण स्तर : संकटग्रस्त

उपयोग : जड़ों से निकलने वाला रस कड़वा होता है, जिसका प्रयोग, बुखार, रक्त शोधक, वातहर एवं पेट दर्द में किया जाता है। इसे पाचन क्रिया बढ़ाने, भूख बढ़ाने एवं उदर स्राव को बढ़ाने में भी किया जाता है। अस्थमा एवं मूत्र सम्बन्धी रोगों में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : प्रकन्द, भूस्तारी तनों, जड़ों का निष्कर्षण, पादप आबादी की केवल एक निश्चित सीमा से किया जाता था। निष्कर्षण की प्रक्रिया पुष्पन, फलन एवं बीज निर्माण के बाद जब पौधा सूखने की स्थिति में होता था, तब की जाती थी बीजों का निष्कर्षण न करके उन्हें वापस वहीं पर बिखेर दिया जाता था। नयी पनप रही कलियों, प्रकन्दों एवं भूस्तरी तनों का निष्कर्षण नहीं किया जाता एवं इससे लगे मात्र पौधे को भी अछूता रखा जाता था। प्रकन्द एवं भूस्तरी के आवश्यक भागों को ही जरूरत के हिसाब से लिया जाता था, शेष भाग को वैसा ही भूमि में छोड़ दिया जाता था। प्रतिवर्ष एक क्षेत्र से लगातार निष्कर्षण नहीं किया जाता था, यह प्रक्रिया दो–तीन वर्षों में एक बार की जाती थी। *पिक्रोराइजा* जातियों में अक्सर पुराने भाग या दो पौधों को जोड़ने वाले प्रकन्द के बीच के हिस्से को काट कर उपयोग में लाया जाता था। जिससे विकसित जड़ों वाले पौधे को कोई नुकसान न पहुँचे। *पिक्रोराइजा* की जातियाँ घास के मैदानों में भूस्तारी तनों के कारण बड़े–बड़े समूहों में वृद्धि करती है, जिनकी चयनात्मक कटाई द्वारा इनकी आबादी को नियंत्रित एवं संरक्षित किया जाता था। इसी प्रकार *जिनसियाना कुरूआ* की गुच्छेदार प्रकन्दों में से कुछ ही प्रकन्दों को प्रयोग किया जाता था एवं इनके अग्रभाग को पुनः पनपने के लिये भूमि में दबा दिया जाता था।

संग्रहण के वर्तमान तरीके: अत्यधिक मांग होने के कारण एक क्षेत्र की सारी जनसंख्या का प्रतिवर्ष पूर्ण रूप से दोहन कर लिया जाता है। संग्रहण के समय पौधे की परिपक्वता का ध्यान नहीं रखा जाता है। एक समय में सभी आयुवर्ग के पौधों का दोहन कर लिया जाता हैं। साथ ही थोड़े समयान्तराल में एक ही स्थान से बार–बार संग्रहण की यह प्रक्रिया अपनायी जा रही है। जिससे यह जातियाँ पूरे तौर पर इन स्थानों से खत्म हो रही

हैं। *जिनसियाना* के सन्दर्भ मे यह पाया गया है कि इसक गुच्छेदार प्रकन्द को बिना उपयोग के पूरा निकाल कर फेंक दिया जाता है जिससे यह प्रजाति तेजी से घट रही है।

टिप्पणी : हाल के वर्षों में शोधकताओं द्वारा यह पाया गया है कि प्रिक्रोसाइड एल्कॉलायड को प्राप्त करने के लिए प्रकन्दों के स्थान पर पत्तियों का प्रयोग किया जा सकता है। जिसके परिणाम स्वरूप भूमिगत पादप भाग संरक्षित रहेगा एवं नयी पीढ़ी के पौधों का विकास हो सकेगा। हिमालयी क्षेत्रों में की गयी खोज यात्राओं में यह पाया गया है कि इन पादप जातियों की आबादी ऐसे स्थानों में सुरक्षित है, जहाँ पर पहुँच पाना नामुमकिन है।

13. *पारिस पॉलिफिला* स्मिथ. (लिलिऐसी)

प्रचलित सामान्य नाम : दूधिया वच, सतवा, सत्तू

पुष्पन एवं फलन : जून – अगस्त

उपयोग में लाया जाने वाला भाग : प्रकन्द

वास स्थान : उपहिमाद्रि क्षेत्रों में (2200–3000 मी.)

वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर से लेकर सिक्किम तक); भूटान, चीन, नेपाल एवं पाकिस्तान।

संरक्षण स्तर : संकटग्रस्त

उपयोग : इसका प्रयोग अस्थमा, ब्रोनकाइटिस एवं हृदय रोगों में किया जाता है। इसे टॉनिक एवं कृमि नाशक के रूप में भी प्रयोग करते हैं।

14. *ट्रीलिएम गोवानिएनम* डी.डॉन (*टीलिडियम गोवानिएनम* (डी.डान) कुन्थ.) लिलियेसी

प्रचलित सामान्य नाम : छोटा सतवा, छोटा सत्तू, सतवा, सत्तू

पुश्पन एवं फलन : जून – अगस्त

उपयोग में लाया जाने वाला भाग : प्रकन्द

वास स्थान : उप हिमाद्रि वनों में छायादार नम स्थानों पर (2200–3200 मी.)

वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर से सिक्किम); भूटान, चीन, नेपाल एवं पाकिस्तान

संरक्षण स्तर : संकटग्रस्त

उपयोग : इसका प्रयोग अस्थमा, ब्रोन्काइटिस एवं हृदय रोगों में किया जाता है। इसे टॉनिक, कृमि नाशक एवं दस्त में भी प्रयोग करते हैं।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : प्रकन्द का संग्रहण केवल पादप आबादी के एक हिस्से से किया जाता था। आवश्यकतानुसार पुराने प्रकन्द के हिस्सों को निकाला जाता था, शीर्ष भाग को भूमि में फैलने के लिए छोड़ दिया जाता था। बीज निर्माण के बाद जब पौधा सूखने की स्थिति में होता था, तब उपयोगी भागों का निष्कर्षण किया जाता था। सामान्यतः बीजों का संग्रहण नहीं किया जाता था, बल्कि उनका प्रकीर्णन सुनिश्चित किया जाता था, जिससे भविष्य में पादप आबादी बनी रहे। अविकसित पौधे से किसी प्रकार का निष्कर्षण नहीं किया जाता था तथा निष्कर्षण वर्ष में एक बार ही किया जाता था।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : इन पौधों की पहचान तने पर शीर्ष पर चक्रित पत्तियों की उपस्थिति से आसानी से हो जाती है, जिसके कारण इसका संग्रहण अवयस्क अवस्था में ही कर लिया जाता है। खोज यात्राओं में यह पाया गया है कि सम्पूर्ण प्रकन्द इकठ्ठा कर लिया जाता है, भूमि के कोई अवशेष नहीं छोड़ा जाता है। संग्रहण करने के लिए पौधों को बीज एवं फल निर्माण से पहले पौधों का चयन कर लिया जाता है। एक समय में कई बार संग्रहण करने से इनकी आबादी खत्म होने की कगार पर पहुंच गयी है।

15. *पॉलीगोनेटम सिरहीफोलियम* (वाल.) रॉयल, ***पॉलीगोनेटम मल्टीफ्लोरम*** (लिन.) आल एवं ***पॉलीगोनेटम वर्टीसिलेटम*** (लिन.) आल, कॉनवालेरियेसी (लिलियेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : जितोरा, खारियाल, मेदा, महामेदा, मीठा दुधिया, सालेम दाना, सालेम मिश्री

पुष्पन एवं फलन : जून – अगस्त

उपयोग में लाया जाने वाला भाग : प्रकन्द

वास स्थान : उप हिमाद्रि वनों की आंशिक छायादार ढलानों पर (2000–3000 मी.)

वितरण : *पॉलीगोनेटम सिरहीफोलियम* (भारत (हिमाचल प्रदेश से सिक्किम तक); भूटान, चीन एवं नेपाल; *पॉलीगोनेटम मल्टीफ्लोरम* (भारत (पश्चिमी हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर से उत्तराखण्ड); नेपाल; *पॉलीगोनेटम वर्टीसिलेटम* (भारत (हिमालय : जम्मू एवं कश्मीर से सिक्किम तक) अफगानिस्तान, भूटान, चीन, नेपाल एवं पाकिस्तान।
संरक्षण स्तर : संकटग्रस्त।

उपयोग : इनका प्रयोग आयुर्वेदिक औषधि अष्टवर्ग के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में किया जाता है। इनका प्रयोग सूजन, पेट फूलना, जोड़ों में तरल का जमना, ट्यूमर, अल्सर, बवासीर, टीबी, ब्रोंकाइटिस, मासिक धर्म समस्याओं, शुष्क खांसी, गले की खराश में किया जाता है। इसके अतिरिक्त वातहर, कासरोधक, क्षुधावर्धक, रक्त शोधक कामोद्दीपक एवं जोशवर्धक के रूप में भी किया जाता है। इसके अर्क को *बर्जीनिया सिलियेटा* के अर्क के साथ मिलाकर मूत्रजनन सम्बन्धी एवं किडनी के रोगों में किया जाता है। इसके लेप को चोट, उतकों की मरम्मत करने हेतु प्लास्टर की तरह प्रयोग किया जाता है। इनकी जड़ों का अर्क दूघ के साथ स्वास्थ्य टानिक, तंन्त्रिका टानिक के रूप में किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : प्रकन्दों का निष्कर्षण पादप आबादी के कुछ चयनित हिस्से से ही किया जाता था, सारी आबादी से नहीं। पुष्पन, फलन एवं बीज निर्माण के पश्चात् ही निष्कर्षण की प्रक्रिया पूरी की जाती थी, तथा बीजों को उनके वास स्थान पर बिखेर दिया जाता था। कायिक अवस्था में पौधे को किसी प्रकार से उपयोग नहीं किया जाता था। प्रकन्दों को आवश्यकतानुसार ही लिया जाता था, लेकिन इनके शीर्षस्थ भाग को भूमि में दबा कर छोड़ दिया जाता था, जिससे नयी पीढ़ी का विकास सतत रूप से हो सके। जब तक बहुत ही आवश्यक न हो लगातार तथा प्रतिवर्ष निष्कर्षण नहीं किया जाता था, इसके लिये न्यूनतम दो–तीन वर्षों का समय अन्तराल रखा जाता था।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : निष्कर्षण की प्रक्रिया सभी ज्ञात पादप आबादी से पूरी की जा रही है, तथा प्रकन्द के सम्पूर्ण भाग को भूमि से निकाल लिया जा रहा है। इस प्रकार भविष्य के लिये किसी प्रकार का श्रोत नहीं रखा जा रहा है। ज्ञात वास स्थानों से एक बार ही समूह या अन्य समूहों द्वारा बार–बार निश्कर्शण की प्रक्रिया को दोहराया जा रहा है, जिससे इनके सम्पूर्ण रूप से खत्म होने का खतरा बढ़ गया है। पुष्पन एवं फलन की प्रक्रिया से पहले ही अपरिपक्व पौधों का निष्कर्षण किया जा रहा है, जिससे पुनः विकसित होने की सम्भावना पीढ़ी दर पीढ़ी कम हो रही है।

16. *सासुरिया ओब्वोलाटा* (डीसी.)शुल्ज.–बीप (एस्टेरेसी)

प्रचलित सामान्य नाम : ब्रहमकमल (उत्तराखण्ड का राज्य पुष्प)
पुश्पन एवं फलन : जुलाई – सितम्बर
उपयोग में लाया जाने वाला भाग : पुष्प
वास स्थान : उच्च पर्वतीय क्षेत्रों, हिमाद्रि क्षेत्रों के घास के मैदानों में पथरीले स्थानों पर एवं हिमनदों के किनारे पर (3400–4800 मी.)
वितरण : भारत (हिमालय) : जम्मू एवं कश्मीर से अरूणाचल प्रदेष तक); भूटान, चीन नेपाल एवं पाकिस्तान।
संरक्षण स्तर : संकटग्रस्त ।

उपयोग : फूलों का उपयोग व्यापक रूप से धार्मिक कार्यों में किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : ब्रहमकमल को बहुत ही प्रवित्र फूल माना जाता था, इसका संग्रहण केवल धार्मिक कार्यों के लिए, देवताओं को अर्पित करने के लिये चयनित त्योहारों विशेषकर, सावन अष्टमी को किया जाता था। मारटोली एवं जौहर घाटी में ब्रहमकमल के फूल को संग्रहित करने का समय नन्दा अष्टमी (अगस्त माह के अन्त में जब फूलों का विकास हो चुका होता है, बीजों का प्रकीर्णन भी पूरा हो गया होता है) के समय ही निर्धारित किया गया था। संग्रहण करने के लिये केवल मात्र दो चयनित व्यक्तियों को ही इसकी अनुमति दी जाती थी एवं संग्रहण से पहले कुछ विकसित फूलों को वहां के स्थानीय देवता को अर्पित किया जाता था। अपरिपक्व फूलों/कलियों को इकठ्ठा नहीं किया जाता था। इसके वास स्थानों को अत्यधिक पवित्र माना जाता था एवं वहां से कुछ फूल चुनने के पश्चात् कभी इन क्षेत्रों में दुबारा नहीं जाया जाता था। विशेष त्योहारों एवं स्थानीय देवताओं पर अर्पित करने के लिये इन फूलों का उपयोग किया जाता था, इसके अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिये फूलों का संग्रहण पूर्णतः वर्जित था।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : यह पाया गया है कि फूलों का संग्रहण अपरिपक्व अवस्था में, जुलाई माह में ही किया जा रहा है, यहाँ तक कि युवा एवं अविकसित फूलों का भी संग्रहण काफी मात्रा में किया जा रहा है। स्थानीय परम्पराओं के प्रति किसी प्रकार का आदर नहीं किया जा रहा है। वास स्थलों में मिलने वाले सभी फूलों का संग्रहण किया जा रहा है एवं यह प्रक्रिया पूरे सीजन में बार–बार लगातार होती रहती है, जिससे इसे गम्भीर नुकसान हो रहा है।

टिप्पणी : यद्यपि यह पाया गया है कि यह जाति बहुवर्षीय है एवं इसका प्रसार इसकी जड़ों के द्वारा होता है। इसके फूलों को युवावस्था (फल, बीज निर्माण से पूर्व) में किया संग्रहण, इसकी अगली पीढ़ी के विकास को प्रभावित कर रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप इसकी आबादी स्थिर बनी है या फिर घट रही है। हालांकि फूलों का चयन केवल धार्मिक कार्यों के लिये व्यक्तिगत रूप से किया जाता है। लेकिन इसका संचयी प्रभाव जबरदस्त रूप से हानिकारक पाया गया है। चन्दोला एवं सिंह (2003) ने एक अध्ययन में पाया कि बद्रीनाथ धाम में व्यक्तिगत रूप एक व्यक्ति द्वारा एक ही फूल अर्पित किया जाता है, परन्तु यदि हम पूरे दिन में चढ़ाये गये फूलों की संख्या की गणना करें तो यह 300–400 के बीच आंकी गयी है। इसका तात्पर्य यह है कि धीरे–धीरे ही सही इनका खात्मा तेजी से हो रहा है।

17. *टैक्सस वालिचियाना* जुक (टैक्सेसी)

शंकु निर्माण : नर शंकु : मार्च –जून; मादा शंकु : मई–जुलाई, बीज प्रकीर्णन : जून – नवम्बर।
उपयोग में लाया जाने वाला भाग : छाल एवं पत्तियां
वास स्थान : उप हिमाद्रि क्षेत्रों की उपरी सीमा एवं हिमाद्री क्षेत्रों की निचली सीमा (1800–3365 मी)
वितरण : भारत (पश्चिमी हिमालय) : जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड); नेपाल एवं पाकिस्तान
संरक्षण स्तर : संकटापन्न।

उपयोग : इसकी पत्तियों एवं छाल से "टैक्सीरेजिनाल" नामक एल्कालायड प्राप्त किया जाता था। इसका प्रयोग कैंसर रोधी, मुख्यतः उदर, यकृत गर्भाशय एवं स्तन कैंसर दवा के निर्माण में व्यापक रूप से किया जा रहा है। इसकी छाल को पानी में उबालकर हर्बल चाय के रूप में सर्दी, जुकाम, खॉसी, अपच एवं मिर्गी के उपचार में किया जाता है। पारम्परिक रूप से इसका प्रयोग तीव्र ज्वर एवं संक्रमण से होने वाले दर्द के उपचार में किया जाता है। इसकी छाल का पेस्ट फ्रैक्चर एवं सिरदर्द में उपयुक्त है। साथ ही इसकी छाल से बने काढ़े का प्रयोग तपेदिक के इलाज में किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसके पके फलों को खानें में, लकड़ी को फर्नीचर बनाने, नक्काषी करने में, ईंधन के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। उत्तराखण्ड के कुमांऊ क्षेत्रों में ये देखा गया है कि इसका प्रयोग धार्मिक उत्सवों में सुगन्ध, धूप के रूप में किया जाता है।

संग्रहण के पारम्परिक प्रचलित तरीके : छाल का निष्कर्षण वृक्ष की सहायक शाखाओं से किया जाता था। छाल का केवल कुछ हिस्सा ही उपयोग में लाया जाता था, एक वृक्ष से बार–बार एवं लगातार छाल का निष्कर्षण नहीं किया जाता था।पुराने एवं अच्छी वृद्धि वाले पौधों को अछूता रखा जाता था, जिससे प्रकृति में आनुवांशिक दृष्टि से उच्च कोटि के पौधों का विकास हो सके। अच्छे सबसे बड़े एवं पुराने वृक्षों को पवित्र वृक्ष मानकर सुरक्षित रखा जाता था।

संग्रहण के वर्तमान तरीके : इसकी छाल का निष्कर्षण मुख्य एवं सहायक दोनों शाखाओं से किया जा रहा है। कहीं–कहीं मुख्य तना तथा पूरी–पूरी सहायक शाखाओं को काटकर उपयोग लाया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वृक्षों की वृद्धि स्तर कम हो गया है और उनमें कवकों के संक्रमण की सम्भावना बढ़ गयी है। ज्ञात पादप आबादी से एक वर्ष में लगातार कई–कई बार संग्रहण करने से उनकी आबादी एवं वृद्धि काफी प्रभावित हो रही है।

इस लेख द्वारा पर उपरोक्त तथ्यों की विवेचना करने पर यह ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में सीमित संसाधनों के बावजूद लोगों की प्रकृति से संसाधनों के दोहन एवं उनके संरक्षण का तकनीकी एवं व्यावहारिक ज्ञान व्यापक रूप से बड़ा ही समृद्ध था। उस समय जितना आवश्यक हो उतना ही प्रकृति से ग्रहण करना प्रक्रियाओं को सतत रूप से (सस्टेनेबल यूटिलाईजेशन) क्रियान्वित किया जाता था। वर्तमान समय में जनसंख्या वृद्धि आधुनिकीकरण एवं संसाधन प्राप्ति की अन्धी दौड़ में हम अपने पूर्वजों द्वारा विकसित व्यावहारिक ज्ञान की समृद्धि परम्परा को सम्भाल नहीं पाये हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि इस व्यावहारिक ज्ञान को प्रलेखित किया जाये इन पौधों का संरक्षण सुनिश्चित किया जाये। इसके लिये शासन स्तर पर नीतियों को बनाने से लेकर उसके सही ढंग से क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

उत्तराखण्ड की पारम्परिक फसलों का महत्व एवं संरक्षण

कुमार अम्बरीश एवं एस. के. श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण,देहरादून

पारम्परिक जीवनदायनी फसलें विश्व के सभी कृषि क्षेत्रों में अति महत्वपूर्ण एवं प्रचुरता में उगाई जाती हैं। इन्हें चीन, जापान, अफ्रीका, एशिया एवं अमेरिका में भी प्रचुर मात्रा में उगाया जाता है। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में उत्तर में जम्मू कश्मीर से लेकर पूर्व में अरूणाचल प्रदेश तक यह फसलें एक बड़े भू–भाग में सदियों से उगायी जाती रही हैं।

उत्तराखण्ड में पारम्परिक कृषि जीवन–यापन हेतु एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिस पर यहाँ के कृषकों की आजीविका निर्भर है। गढ़वाल हिमालय में कृषि प्रमुखतः महिलाओं पर निर्भर है, यहाँ के सीमित कृषि संसाधनों एवं भौगोलिक परिस्थितियों में केवल यह ही ऐसी फसलें हैं, जो सदियों से यहाँ की पीढ़ियों का भरण पोषण करती आ रही हैं। ये फसलें असिंचित भूमि एवं रासायनिक खादों के अभाव में सुगमता से उत्पादन देती हैं एवं इनमें से कुछ लेग्यूमिनस फसलें मिट्टी की उर्वरकता को भी बनाये रखती हैं। शोध–सर्वेक्षणों में पाया गया है कि इन फसलों में से 7 प्रकार की फसलें क्रमशः मडवाँ (फिंगर मिलेट), झंगोरा (बार्नयार्ड मिलेट), कोणी (फाक्सटेल मिलेट), गहत (हार्स ग्राम), चौलाई (एमेरेन्थस) एवं कुट्टू यहाँ के विभिन्न जिलों जैसे पौड़ी, रूद्रप्रयाग, चमोली, टिहरी, देहरादून एवं उत्तरकाशी में प्रचुरता से उगायी जाती हैं। ये फसलें विटामिन्स एवं खनिज लवणों से भरपूर होती हैं एवं बच्चों को कुपोषण से बचाती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों की विषम जीवन शैली के निर्वाह में भी यह फसलें यहाँ के निवासियों को भरपूर ऊर्जा प्रदान करती हैं और अपनी चार विशेषताओं के फलस्वरूप आज भी हिमालयी क्षेत्रों में जीवन यापन का मूलभूत आधार हैं।

1. रोग प्रतिरोधक क्षमता, 2. सूखा प्रतिरोधक क्षमता, 3. कार्बनिक उत्पाद (आर्गेनिक प्राड्यूस), 4. सुगम उत्पादन क्षमता ।

फसलों के प्रकार एवं उपयोग :

1. मंडुवा (फिंगर मिलेट) : पोएसी कुल की इस फसल के पौधे का अंग्रेजी नाम फिंगर मिलेट एवं वैज्ञानिक नाम *इल्यूसिने कोराकैना* (लिन.) गैरटन (*Elusine coracana* (L.) Gaertn.) भारत के अन्य हिमालयी एवं मैदानी क्षेत्रों में इसे कोदू, मरूआ, रागी आदि नामों से भी जाना जाता है।

इल्यूसिने कोराकैना (मँडवा/फिंगर मिलेट),

यह पौधा एक वर्षीय शाक है, जिसकी लम्बाई 60–100 सेमी. के मध्य होती है। पत्तियां घनी एवं चपटी–नुकीली होती हैं, जिस पर हाथ की उंगलियों के आकार में पुष्पन एवं फलन की बालियाँ आती हैं। इसके बीज गोलाकार, काले, भूरे अथवा लाल रंग के होते हैं, जो उत्तराखण्ड में स्टैपल फूड के रूप में भी प्रयोग किये जाते हैं। इसका प्रयोग आटा, बाड़ी, रोटी एवं अनेक प्रकार के व्यंजन बनाने में होता है। मंडुवे में प्रोटीन, खनिज लवणों एवं विटामिनों की प्रचुर मात्रा होने के कारण इसे गरीबों का दूध भी कहा जाता है। इसकी खेती गढ़वाल में मई–जून के महीने में की जाती है एवं यह पूर्णतः वर्षा पर निर्भर होती है। इसका कृषिकरण 800 मीटर से 2300 मीटर के मध्य सुगमता से किया जाता है। अक्टूबर माह में फसल पक कर कटाई एवं मढ़ाई के लिए तैयार हो जाती है। उत्तराखंड में इसका उत्पादन लगभग 12–15 क्विंटल/हेक्टेयर आंका गया है। उत्तराखण्ड में इसे भोजन, स्थानीय पेय, चारे आदि के उपयोग में लाया जाता है।

2. झंगोरा (बार्नयार्ड मिलेट) : पोएसी कुल की इस फसल के पौधे वनस्पति विज्ञान में *इकाईनोक्लोआ क्रस–गाली* (लिन.) पी.बीव. के नाम से जाना जाता है। इस एक वर्षीय पौधे की लम्बाई 40–80 सें.मी. तक होती है। तना सीधे या झुके हुए एवं लम्बी पत्तियों से ढ़के हुए होते हैं। जिस पर 10–15 सें.मी. लम्बी बालियां में भूरे रंग के अर्धगोलाकार या अंडाकार बीज आते हैं। कुमांऊ व गढ़वाल में इन्हीं बीजों को कूटकर चावल के रूप में प्रयोग किया जाता है, इनसे पहाड़ी क्षेत्रों में खीर, छंछेरू एवं अन्य पारम्परिक व्यंजन बनाये जाते हैं। झंगोरा खनिज लवणों एवं ऊर्जा का अच्छा श्रोत है एवं सुपाच्य होने के कारण इसे वृद्धावस्था में अधिक पसंद किया जाता है। इसके प्रयोग से ब्लड शूगर भी नियंत्रण में रहता है। झंगोरे की खेती भी वर्षा ऋतु में ही की जाती है, जिसे जून से अक्टूबर में तैयार किया जाता है। यह 1000 मीटर से 2200 मीटर के मध्य सुगमता

इकाईनोक्लोआ क्रस–गाली (झंगोरा)

से अच्छा उत्पादन देती है। उत्तराखंड में इसका उत्पादन 10–12 क्विंटल/हेक्टेयर आंका गया है। स्थानीय लोग इस फसल का उपयोग भोजन, पशुओं के चारे आदि में करते हैं।

3. कोणी (फाक्सटेल मिलेट) : पोएसी कुल की इस फसल के पौधे को अंग्रेजी में फाक्सटेल मिलेट एवं वनस्पति विज्ञान में *स्टेरिया इटेलिका* (लि.) पी. ब्यूव (*Setaria italica* (L.) P. Beauv.) के नाम से जाना जाता है। स्थानीय भाषा में इसे कोणी, चिंका, कंगनी आदि नामों से भी जाना जाता है।

स्टेरिया इटेलिका (कोणी/फाक्सटेल मिलेट)

इस एक वर्षीय पौधे की लम्बाई एक मीटर से 1.5 मीटर के मध्य तक होती है, इसकी पत्तियाँ संकरी एवं नुकीली व लम्बी होती है। इस पर 20–30 सें.मी. लम्बी बालियाँ आती हैं, जिनमें हल्के पीले रंग के दाने पाये जाते हैं। इन्हीं दाने रूपी बीजों को कूटकर चावल की तरह उपयोग किया जाता है, जो काफी पौष्टिक एवं स्वादिष्ट होता है। वर्तमान में कोणी की फसल का क्षेत्रफल घटता जा रहा है एवं ये प्रमुखतः उत्तराखण्ड के दो जिलों टिहरी एवं उत्तरकाशी में ही सिमट कर रह गया है। कोणी की फसल मार्च से अप्रैल माह में बोई जाती है जो सितम्बर माह में पककर तैयार हो जाती है इसे 1500 से 2400 मीटर के मध्य सुगमता से उगाया जा सकता है। उत्तराखंड में इसका उत्पादन 10 से 11 क्विंटल प्रति हेक्टर पाया गया है। फसल के दाने का उपयोग चावल की तरह एवं पशुचारा व स्थानीय पेय पदार्थ बनाने में होता है।

4. नौरंगी (राइस बीन) : फैबेसी कुल की इस फसल के पौधे को अंग्रेजी में राइस बीन एवं वनस्पति विज्ञान में *विग्ना अम्बेलाटा* (थुंब.) ओहवी एवं ओहासी (*Vigna umbellata* (Thunb.) Ohwi & Ohashi) के नाम से जाना जाता है। नौ विविध रंग के दानों की उपस्थिति के कारण इसे स्थानीय भाषा में नौरंगी, भोटिया दाल, सूत्री आदि नामों से पुकारा जाता है।

विग्ना अम्बेलाटा (नौरंगी/राइस बीन)

इस एक वर्षीय पौधे की लम्बाई 60–120 सें.मी. के मध्य होती है, इसकी पत्तियाँ 3–फोलिओलेट एवं अंडाकार होती हैं। पौधे पर पीले रंग के पुष्प व 5–8 सें.मी. लम्बी फलियाँ आती हैं। इसके बीज प्रायः नौ रंगों के होते हैं एवं एक फली में 8–12 तक बीज आते हैं। इन्हीं बीजों को उत्तराखण्ड के शीतोष्ण क्षेत्रों में दाल के रूप में प्रयोग किया जाता है। नौरंगी की फसल भी वर्षा ऋतु पर निर्भर करती हैं एवं किसान इसे मई व जून के माह में बोते हैं। फसल 3 से 4 माह में पककर तैयार हो जाती है। इसे 1800 से 2600 मीटर के मध्य सुगमता से उगाया जा सकता है। यह फसल मक्का एवं चौलाई के साथ मिश्रित फसल के रूप में उगायी जाती है, इसका उत्पादन गढ़वाल हिमालय के पौड़ी, चमोली, रूद्रप्रयाग, टिहरी एवं उत्तरकाशी जिलों के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में किया जाता है। उत्तराखण्ड में इसका उत्पादन औसतन 5–7 क्विंटल के मध्य पाया गया है। फसल के बीजों का उपयोग दाल बनाने में, कच्ची फलियों का प्रयोग सब्जी एवं पत्तियों का प्रयोग पशुओं हेतु चारे में किया जाता है।

5. गहत (हार्स ग्राम) : फैबेसी कुल की इस फसल के पौधे को अंग्रेजी में हार्स ग्राम एवं वनस्पति विज्ञान में *मैक्रोटाइलोमा यूनीफ्लोरम* (लैम.) वर्डक्स. (*Macrotyloma uniflorum* (Lam.) Verdc.) के नाम से जाना जाता है। स्थानीय भाषा में इसे गहत, कुलथ, कुल्थी आदि नामों से पुकारा जाता है।

मैक्रोटाइलोमा यूनीफ्लोरम (गहत/हार्स ग्राम)

इस एक वर्षीय पौधे की लम्बाई 50–100 सें.मी. के मध्य होती है, इसकी पत्तियाँ अर्धअंडाकार व 3–फोलिओलेट एवं अंडाकार होती हैं। पौधे के परिपक्व होने पर हल्के पीले रंग के चितकबरे पुष्प आते हैं इसकी फलियां मुड़ी हुई 4–6 सेमी. लम्बी होती हैं जिनमें 4–6 गहरे भूरे रंग के चपटे चमकीले बीज पाये जाते हैं। इन बीजों का उपयोग स्थानीय लोग दाल बनाने में करते हैं अपने औषधीय गुणों के लिये विख्यात ये दाल पथरी निवारक, शूगर नियंत्रक एवं गैस्ट्रिक की समस्याओं में निदान हेतु अति लाभकारी है एवं बाजार में 200 रूपये किलो के मूल्य पर बिकती है जो स्थानीय लोगों की आय का अच्छा साधन है। यह फसल भी वर्षा पर आश्रित है। इसकी बुआई अप्रैल माह में की जाती है, फसल 4–5 माह में पककर तैयार हो जाती है। इसे 800 से 2000 मीटर के मध्य आसानी से उगाया जाता है। इसका उत्पादन उत्तराखण्ड के कुमाऊं हिमालय एवं गढ़वाल हिमालय

के मध्य हिमालयी क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में किया जाता है। उत्तराखंड में इस फसल का उत्पादन 5–7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर के मध्य आंका गया है। फसल के बीजों का उपयोग दाल के रूप में एवं पत्तियों का प्रयोग चारे के रूप में किया जाता है।

6. चौलाई (एमेरैंथ) – एमारेन्थेसी कुल के इस पौधे को अंग्रेजी मेंएमारेन्थस एवं वनस्पति विज्ञान में *एमेरैंथस क्रुनटस* लिन. (*Amaranthus cruentus* L.) के नाम से जाना जाता है। स्थानीय भाषा में इसे चौलाई, चूआ एवं मरसू या मारछा कहा जाता है।

एमेरैंथस क्रुनटस (चौलाई/एमेरैंथस)

इस एक वर्षीय पौधे की लम्बाई आधा मीटर से ढाई मीटर के मध्य तक होती है। इसके तने सीधे एवं मांसल होते हैं। पत्तियां अड़ाकार एवं भालेनुमा होती हैं। पौधे के परिपक्व होने पर गहरे लाल एवं घानी पीले रंग की बालिया आती हैं। बालियों की लम्बाई 15–30 सें.मी. लम्बी होती हैं। जिनमें बड़ी मात्रा में गोल दाने रूपी बीज आते हैं। इन्हीं बीजों का उपयोग स्थानीय लोग भूनकर लड्डू खीर एवं अन्य स्थानीय व्यंजन बनाने में करते हैं। यह फसल यहाँ के किसानों के लिए प्रमुख नकदी फसलों में आती है और आय के प्रमुख साधनों में से एक है। इस फसल को किसान मिश्रित खेती के रूप में राजमा व अन्य दलहनी फसलों के साथ बोकर अच्छी आय करते हैं। चौलाई की फसल भी वर्षा पर आधारित है। इसकी बुआई किसान अप्रैल एवं मई माह में करते हैं फसल 4 महीनों में पककर सितम्बर–अक्टूबर में तैयार हो जाती है। इसे 1000 से 2500 मीटर के मध्य आसानी से उगाया जाता है। इसका उत्पादन उत्तराखण्ड के लगभग सभी जिलों में किया जाता है। गढ़वाल एवं कुमांऊ मंडलों में इसका उत्पादन 13–15 क्विंटल/हेक्टेयर पाया जाता है। फसल के बीजों का उपयोग विभिन्न खाद्य पदार्थों एवं पशुओं के चारे में किया जाता है। छोटे पौधों की पत्तियों को सब्जी के रूप में खाया जाता है।

7. कुट्टू (ओगल) – पोलीगोनेसी कुल के इस पौधे को अंग्रेजी में बक व्हीट एवं वनस्पति विज्ञान में *फैगोपाइरम एसकुलेन्टम* (लिन.) मोंच (*Fagopyrum esculentum* (L.) Moench) के नाम से जाना जाता है। उत्तराखण्ड में इसे विभिन्न नामों जैसे कोट्टू, ओगल, फाफर आदि से जाना जाता है।

फैगोपाइरम एसकुलेन्टम (कुट्टू/ओगल)

इस एक वर्षीय पौधे की लम्बाई 40–80 सेंमी. के मध्य तक होती है। इसके तने झुके हुए एवं जमीन पर फैलने वाले होते हैं। पत्तियां तिकोनी, हृदय के आकार की एवं लाल वृंतों वाली होती हैं। पौधे के परिपक्व होने पर हल्के गुलाबी रंग के पुष्प आते हैं। पुष्प गुच्छों की लम्बाई 10–20 सें.मी. तक होती है, जिनमें काले–भूरे रंग के तिकोने बीज आते हैं। इन्हीं बीजों को स्थानीय निवासी पीसकर आटे एवं अन्य व्यंजनों में प्रयोग करते हैं। कुट्टू की बाजार में अच्छी मांग होने के कारण यह फसल मध्य हिमालय के कृषकों के लिए वरदान साबित हो रही है। इसके आटे की कीमत बाजार में 300 से 400 रू. प्रति किलोग्राम होती है। इसके आटे को उपवास में भी प्रयुक्त किया जाता है। यह फसल मुख्यतः एकल रूप में उगायी जाती है। पहले यदा कदा इसे चमोली जिले के जनजातिय क्षेत्रों में आलू की फसल के साथ मिश्रित अवस्था में भी देखा गया था। वर्षा पर आधारित इस फसल को कृषक मई व जून माह में बोते हैं एवं अक्टूबर व नवम्बर में काट लेते हैं। यह फसल 1800 मीटर से 2800 मीटर के मध्य उगायी जाती है। इसका उत्पादन उत्तराखण्ड के चमोली, पौड़ी, उत्तरकाशी, टिहरी, रूद्रप्रयाग, पिथौरागढ़, अल्मोड़ा एवं बागेश्वर जिलों में प्रचुरता से किया जाता है। शिशु अवस्था में फसल का उपयोग सब्जी बनाने एवं बीजों का प्रयोग आटा बनाने में किया जाता हैं।

संरक्षण – पारम्परिक कृषि किसी क्षेत्र की पारिस्थितिकी, आर्थिकी एवं सामाजिक उत्थान में अमूल्य योगदान प्रदान करती है। पर्वतीय क्षेत्रों में पारम्परिक फसलें स्थानीय निवासियों की खाद्य आवश्यकताओं के साथ–साथ उनके स्वास्थ्य हेतु भी अति उपयोगी होती हैं। अनेक विशेषताओं के उपरान्त भी उत्तराखण्ड में इन फसलों का उत्पादन दिनों–दिन घटता जा रहा है। पिछले तीन से चार दशकों में धान व गेहूं ने इन पारम्परिक फसलों का 50 प्रतिशत से अधिक स्थान ले लिया है। वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए आज इनके क्षेत्रफल एवं उत्पादन को बढ़ाने की आवश्यकता है। इन फसलों के पारम्परिक एवं आधुनिक उत्पाद जैसे चौलाई के लड्डू, मंडुवे के बिस्कुट, कोणी एवं झंगोरे की खीर एवं कुट्टू के आटे के विभिन्न व्यंजन आदि को खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने एवं बाजार उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। पर्वतीय क्षेत्रों में कृषकों को इन फसलों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी हेतु प्रोत्साहन देने की भी आवश्यकता है, जिससे उत्पादन बढ़ने के साथ इनका संरक्षण भी सुनिश्चित हो सके।

हिमाचल प्रदेश के कुछ चयनित उच्चपर्वतीय पौधों के औषधीय गुण तथा संरक्षण की स्थिति –एक संक्षिप्त विश्लेषण

पुनीत कुमार, आर.मणिकंदन, जी.एस. पंवार और संजय उनियाल
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

हिमाचल प्रदेश भारत के उत्तरी भाग में स्थित है। यह 30°22'40''–33°12'20''उत्तर 75°45'55''–79°04'20'' पूर्व में स्थित है। यह 55,673 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। इसकी सीमायें उत्तर में जम्मू–कश्मीर, पश्चिम में पंजाब, दक्षिण–पश्चिम में हरियाणा, दक्षिण–पूर्व में उत्तराखंड से और पूर्व में तिब्बत क्षेत्र से लगती हैं। हिमाचल प्रदेश एक विस्तृत पर्वत श्रृंखला (300–7,000 मीटर, समुद्रतल से उंचाई) के साथ साथ विविध आवासीय स्थान, प्रजाति, आबादी, समुदाय एवं पारिस्थितिक तन्त्र युक्त राज्य है। वर्तमान में, राज्य में कुल 37 संरक्षित क्षेत्र हैं जिनमें 1 रामसर वेटलैंड साइट, 5 राष्ट्रीय उद्यान और 31 वन्यजीव अभयारण्य शामिल हैं।

हिमाचल प्रदेश पश्चिमी हिमालय में स्थित है, और मुख्य रूप से एक पहाड़ी क्षेत्र है। इस प्रदेश में भौगोलिक विविधता के साथ साथ जैव विविधता भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यह विशिष्ट हिमालयी राज्य अपनी भौगोलिक स्थिति, वनस्पतियों और औषधीय पौधों से भरपूर है, जिसके कारण यहां की जोखिम भरी परिवहन व्यवस्था, संचार में सुगमता न होना, यहां के लोगों में अंधविश्वास, पूर्वजों के पारम्परिक ज्ञान और पुरानी सभ्यता है। यहां की जलवायु में बहुत विविधता है, जिसका मुख्य कारण यहां की भौगोलिक स्थिति एवं भिन्न–भिन्न ऊंचाई वाले क्षेत्रों का पाया जाना है। हिमाचल प्रदेश में चार ऋतुएं बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, सर्दी मुख्य हैं। प्रदेश के दक्षिणी भाग में मौसम गर्म और उष्णकटिबंधीय नम रहता है और अधिक ऊंचाई वाली उत्तरी और पूर्वी पर्वत श्रृंखलाओं में सर्दियों में बहुत ठंडा होता है। धर्मशाला जैसे क्षेत्र में भारी वर्षा होती है और लाहौल–स्पीति क्षेत्र शीत मरूस्थल का प्रतिनिधित्व करता है। गर्मियों में औसत तापमान 28° सेल्सियस से 32° सेल्सियस के बीच रहता है। सर्दियां नवम्बर के मध्य से मार्च तक रहती है और इस समय में एल्पाइन क्षेत्रों में बर्फबारी होती है तथा तापमान शून्य से काफी नीचे चला जाता है।

गत वर्ष की वन रिपोर्ट के अनुसार हिमाचल प्रदेश का 28 प्रतिशत क्षेत्र वन आच्छादित है। हालांकि वन आवरण केवल 4.9 प्रतिशत क्षेत्र में ही विद्यमान है। सिरमौर जिले में (49 प्रतिशत) सबसे ज्यादा वन क्षेत्र है, जबकि लाहौल–स्पीति में (1.4 प्रतिशत) सबसे कम वन क्षेत्र है। हिमाचल प्रदेश देश के कुल वन क्षेत्र में 1.95 प्रतिशत का योगदान देता है। राज्य में सर्वाधिक वन 2,000–3,000 मी. ऊंचाई वाले क्षेत्रों के बीच (5047 वर्ग किमी) पाये जाते हैं, जबकि न्यूनतम वन क्षेत्र (27 वर्ग किमी.) बहुत ऊंचाई वाले क्षेत्रों में 4,000 मीटर तक पाये जाते हैं। राज्य में वनस्पति का निर्धारण ऊंचाई और वर्षा से होता है। राज्य में 20 विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां पायी जाती हैं, जिनमें एल्पाइन घास का मैदान, एल्पाइन झाड़ी, चीड़, देवदार, ब्लू पाइन, देवदार, शुष्क पर्णपाती, भोजपत्र, बुरांस, जूनिपर, मिश्रित शंकुवृक्ष, नम पर्णपाती, एफिड्रा, ओक, साल, झाड़ी, शीतोष्ण चौड़ीपत्ती, शीतोष्ण घास के मैदान, शीतोष्ण झाड़ी आदि मुख्य हैं।

पारंम्परिक औषधीय पौधे : प्राचीन काल से ही यहां के निवासी/जनजाति समुदाय अपने पोषण के लिए आस–पास की प्राकृतिक संपदा पर निर्भर हैं। आज प्रयोग होने वाली बहुत सी दवायें जिनकी उत्पत्ति पौधों से हुई है अधिकांश तौर पर पारंपरिक औषधीय ज्ञान पर ही निर्भर रही हैं। कुछ कृत्रिम दवाईयों का आधार भी यही पारम्परिक औषधियाँ ही रही हैं। हर्बल उत्पाद आज रासायनिक उत्पादों की तुलना में पर्यावरण के लिए भी सुरक्षित हैं। हालांकि जड़ी बूटियां उनके औषधीय एवं खुशबूदार लक्षणों के लिए प्रचलित हैं, फिर भी कृत्रिम रासायनिक उत्पादों को आधुनिक युग में कहीं न कहीं ज्यादा महत्व मिलता नजर आ रहा है। वर्तमान समय में रासायनिक उत्पाद भले ही बहुत प्रचलित हैं किन्तु उनके पार्श्व प्रभावों को देखते हुए धीरे–धीरे लोग वानस्पतिक औषधियों के प्रयोग की तरफ लौट रहें हैं।

प्राचीन मूल निवासियों ने अनेक प्रकार की बिमारियों के लिए पौधों के लाभप्रद और औषधीय गुणों को विभिन्न रूपों में इस्तेमाल किया है, जो कि किसी भी नकारात्मक परिणाम से विहीन हैं। इन औषधीयों का निर्माण वे अपने आस–पास मौजूद औशधीय पौधों से ही करते आ रहे हैं। वर्तमान समय में भी देष के ग्रामीण क्षेत्र के लोग विभिन्न रोगों के उपचार के लिए स्थानीय जड़ी–बूटियों संसाधनों पर मुख्य रूप से निर्भर हैं।

हिमालयी क्षेत्र अपनी बुलंद एवं व्यापक पर्वत श्रृंखलाओं के लिए जाना जाता है और साथ ही साथ यह क्षेत्र औषधीय पौधों का खजाना है। यह क्षेत्र प्रागैतिहासिक काल से संतों और ऋषियों का निवास स्थान रहा है, जिसका वर्णन वैदिक ग्रन्थों में भी पाया जाता है। जंगली पौधों की 8000

से अधिक जातियों का प्रयोग विभिन्न रोगों के इलाज के लिए इस्तेमाल किया जाता है। हिमालय क्षेत्र को मुख्य रूप से औषधीय पौधों की जातियों का उपहार मिला है। इन विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधों का इस क्षेत्र में होने का मुख्य कारण यहाँ की विविध जलवायु एवं अद्भुत भौगोलिक परिस्थिति है। राज्य के उत्तर–पश्चिम में शुष्क पर्णपाती जंगल और अल्पाइन घास के मैदान हैं और उत्तर–पूर्व में वर्षा वाले वन हैं। हालांकि हिमालय क्षेत्र देश के भौगोलिक क्षेत्र का केवल 15 प्रतिशत ही है । परन्तु यहाँ भारतीय उप–महाद्वीप में पायी जाने वाली स्थानिक जातियों का लगभग 30 प्रतिशत है। इसके अलावा, हिमालयी क्षेत्रों में पाये जाने वाले औषधीय पौधों में मुख्य रूप से उच्च औषधीय मूल्य की जातिया भी शामिल हैं। हिमालय प्रकृति प्रदत्त औषधीय पौधों और पारंपरिक औषधीय ज्ञान का एक विशाल भण्डार है।

हिमाचल राज्य की अधिकतम आबादी (92 प्रतिशत) गांवों में निवास करती है जो विविध संस्कृतियों और समुदायों से हैं। ये समुदाय गुर्जर, गद्दी, लाहोली, स्पितियन, पंगवाल, और किन्नौरी जनजातियों में बंटे हुये है जो चम्बा, लाहौल और किन्नौर जिलों में स्थायी रूप से निवास करती हैं। इनमें से अधिकांश लोग खेतीहर हैं। राज्य के दूरदराज के क्षेत्रों में, विशेष रूप से, उच्च पर्वतीय क्षेत्र आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं से रहित हैं और इसलिए ग्रामीण और आदिवासी लोग मुख्य रूप से स्थानीय औषधीय पौधों पर निर्भर रहते हैं। प्राचीन काल से ही स्थानीय समुदाय दवा, भोजन, ईंधन, चारा, कृषि उपकरण और धार्मिक कार्यों के लिए पौधों का इस्तेमाल करते आ रहे हैं। स्थानीय लोग अपनी आय के लिए उच्च मूल्य औषधीय पौधों का व्यापार भी करते हैं। इन सभी बातों का ध्यान रखते हुए हम इस शोध पत्र में उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में उपयोग किए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण पौधों का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयास कर रहे हैं।

वानस्पतिक सम्पदा

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण (बी.एस.आई.), देहरादून, वन अनुसंधान संस्थान (एफ.आर.आई.), देहरादून, राज्य विश्वविद्यालयों और अन्य अनुसंधान संस्थानों द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार हिमाचल प्रदेश की विविधात्मक कृषि जलवायु में वनस्पतियों की लगभग 3400 विभिन्न जातियां उल्लेखित की गयी हैं। राज्य में 100 से अधिक जातियों के औषधीय और सुगन्धित पौधे शिवालिक पर्वतमाला में होने वाली उष्णकटिबंधीय (500–1,800 मीटर), शीतोष्ण वन (1,800–2,800 मीटर), उप अल्पाइन (2800–3800 मीटर) और अल्पाइन घास के मैदान वाले क्षेत्रों से दर्ज की गयी हैं। इनमें से करीब 150 जाति के पौधों को आयुर्वेदिक औषधियों सहित कई हर्बल उत्पादों में बुनियादी कच्चे माल के रूप में जड़, तना, छाल, पत्ते, फूल, फल, बीजों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। सुगंधित पौधों से वाष्पशील तेल निकाले जाते हैं और इनका प्रयोग सौंदर्य प्रसाधन, फार्मास्यूटिकल्स और मिठाईयाँ आदि बनाने में किया जाता है।

संकटग्रस्त औषधीय पौधों के संरक्षण का कारण : अंतर्राष्ट्रीय शोधकर्ताओं के अनुसार 60000 से अधिक जातियों का मूल्यांकन किया गया है जिनमें से 34,000 जातियां विलुप्त होने की कगार पर हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा प्रकाशित की गयी पुस्तकों में 633 संकटग्रस्त पौधों की जानकारी दी गयी है। इन संकटग्रस्त पौधों का संरक्षण आवश्यक हो गया है। इसके अलावा संवहनीय पौधों की 1255 जातियां भारत में विभिन्न खतरों के तहत हैं। वर्ष 2000 में, आईयूसीएन परिषद जाति जीवन रक्षा आयोग (एसएससी) की 51 वीं बैठक जो ग्लैण्ड, स्विट्जरलैंड में आयोजित की गयी, इस सम्मेलन के दौरान रेड लिस्ट श्रेणियों और मानदंडों का संस्करण 3.1 प्रकाशित किया गया है। इस सूची के अनुसार पौधों के लिए विभिन्न श्रेणियाँ बनायी गयी हैं। जो कि निर्भर करता है कि उनकी जनसंख्या में कितनी कमी आयी है, जातियाँ कितने क्षेत्र में मौजूद है, और कितना क्षेत्र जाति ने घेरा है। हिमाचल प्रदेश में 58 लाल सूचीबद्ध औषधीय पौधों की जातियों की सूचना दी गई है। 17 जातियों को भारतीय हिमालयी क्षेत्र की स्थानीय जाति पाया गया है जबकि 131 जातियों का वितरण स्थानीय जातियों के समीप है। इस शोधपत्र में हिमाचल प्रदेश के कुछ उच्च पर्वतीय क्षेत्रों के स्थानीय, संकटग्रस्तऔषधीय पौधों को तालिका में सूचीबद्ध किया गया हैं।

जैव विविधता के क्षरण के कारण : हिमाचल प्रदेश के लिए तत्काल चिंता का विषय यह भी है कि इसे प्राकृतिक और मानव निर्मित खतरों का अक्सर ही सामना करना पड़ता है। राज्य की वनस्पतियों के क्षरण के मुख्य कारण जनसंख्या दबाव, मानवजनित कारक, वनों की कटाई, पशु चराई, ईंधन के लिए लकड़ी, मिट्टी का कटाव, निर्माण योजनाएं, पादप संग्रह, वनाग्नि, पर्यटकों की बढ़ती संख्या का दबाव और आक्रामक प्रजातियां हैं। इसके अलावा, भूकंपीय गतिविधि और बाढ़ आदि भी वनस्पति को नष्ट करते हैं। प्राकृतिक सुंदरता और जैव विविधता का संरक्षण हिमाचल प्रदेश में आवश्यक है क्योंकि यहां बहुत स्थानीय पौधे हैं जो कि आनुवांशिक विविधता को बनाए रखने में मदद करते हैं।

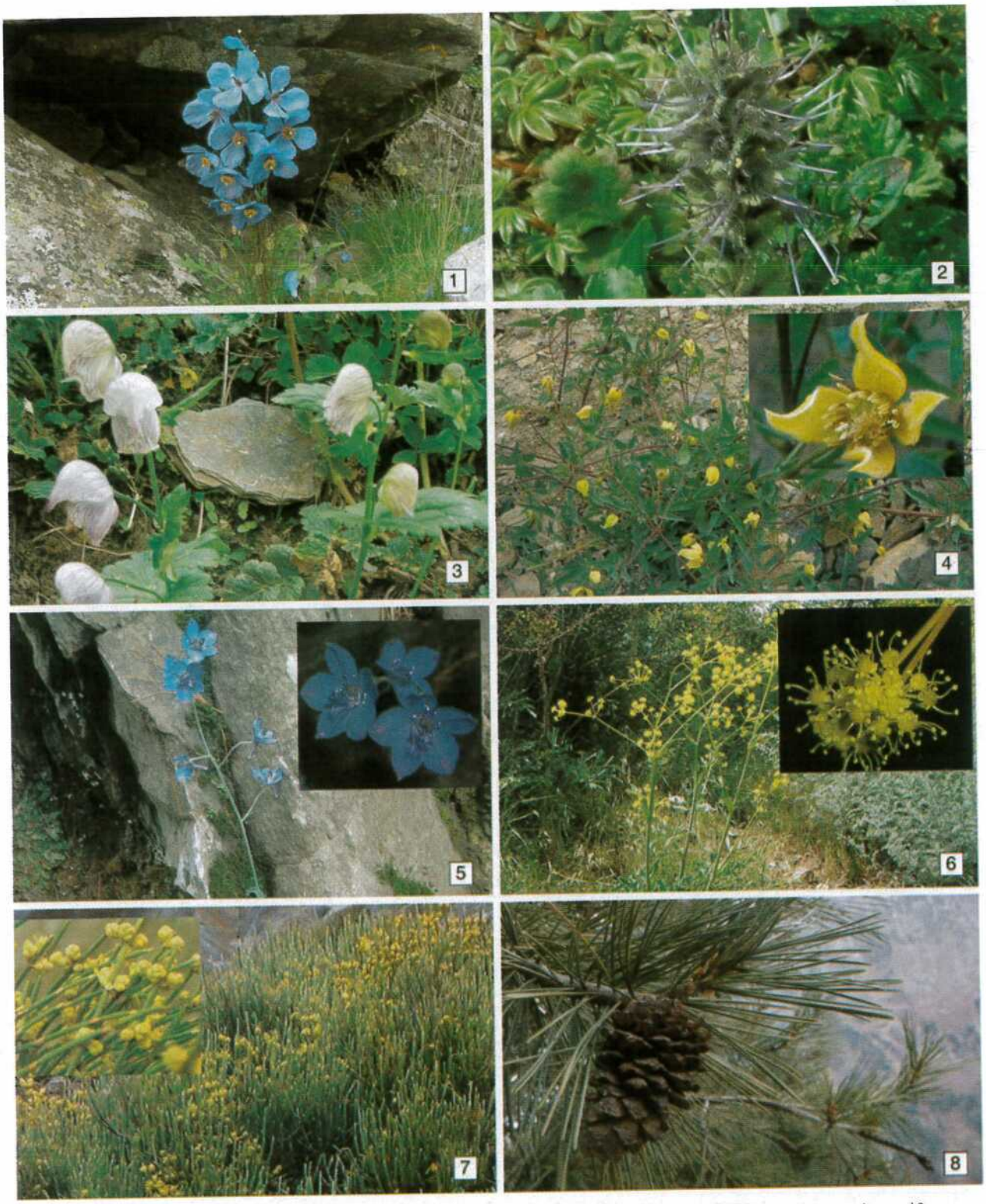

1. *मैकोनॉप्सिस एक्यूलिएटा* 2. *पिक्रोराइजा कुर्रूआ* , 3. *एकोनिटम हैटरोफिल्लम*, 4. *क्लैमैटिस ओरिण्टेलिस*, 5. *डेल्फिनियम डेन्यूडेटम*, 6. *फेरूला जैस्कियाना*, 7. *इफिड्रा जीरारडीयाना*, 8. *पाइनस जिरारडीयाना* ।

संरक्षण के उपाय : आरईटी(RET) श्रेणी में आने वाले पौधों को विलुप्त होने से बचाने के लिए कई प्रयास चल रहे हैं। इन उपायों में सर्वेक्षण, लिपिकरण, पादप संसाधनों की योजना बनाना और निगरानी के लिए एक उपयुक्त डेटाबेस विकसित करने की आवश्यकता है। किसी विशिष्ट क्षेत्र या पारिस्थितिकी में उगने वाली जातियों को उनके प्राकृतिक आवास में संरक्षण के लिए संरक्षित क्षेत्र तंत्र की स्थापना की गयी है। जैव विविधता कानून, 2002 के अन्तर्गत दुर्लभ, लुप्तप्राय, संकटग्रस्त और स्थानीय जातियों को उनके प्राकृतिक आवास से दूर वनस्पति उद्यान, बीज/जीन बैंक आदि की सहायता से संरक्षित किया जाता है। उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में होने वाली आरईटी श्रेणी की जातियों का संरक्षण वहां ही निर्मित वनस्पति उद्यान में होना चाहिए ताकि इनको वैसा ही वातावरण उपलब्ध कराया जाए जिसमें ये प्राकृतिक रूप से पायी जाती हैं।

हिमाचल प्रदेश में उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाने वाले औषधीय पौधों की विविधता, उपयोग एवं संरक्षण स्थिति

क्रम सं.	वानस्पतिक नाम/प्राकृतवास	कुल	ऊंचाई	स्थानीय नाम	उपयोगी भाग	उपयोग	संरक्षण स्थिति
1.	*एकोनिटम हैटरोफिल्लम* वाल एक्स रॉयल –शाक	रैननकुलेसी	3200–4500	अतीस	जड़	ज्वर एवं पेट दर्द	स्थानिक, लुप्तप्राय
2.	*ए. वायोलेसियम* जैक एक्स स्टैफ –शाक	रैननकुलेसी	3600–4800	पतीस, मोरी	जड़	पायरिया, पेट दर्द, जलन रोधक	स्थानिक, संकटग्रस्त
3.	*एंजीलिका ग्लाउका* एडज्यू –शाक	एपीएसी	2000–3800	चेरा, चूरा	जड़	दस्त, उल्टी एवं दमा	संकटग्रस्त
4.	*एक्वीलिजिया फ्रेगरेन्स* बैथ –शाक	रैननकुलेसी	2900–3500	लैण्डे, कुमुक	पूरा पौधा	फेफड़ों की सूजन, बुखार, सिरदर्द, बाल झड़ना, संक्रमण	स्थानिक
6.	*बर्बेरिस लाइसियम* रॉयल –झाड़ी	बर्बिरिडिएसी	1200–3000	काशमबल	जड़ एवं तना	पीलिया, खांसी, त्वचा रोग, क्षार, कुश्ठ रोग	स्थानिक
7.	*बूप्लेरियम फाल्केटम* एल. –शाक	एपीएसी	2130–3500		जड़	यकृत विकार	स्थानिक
8.	*क्लैमैटिस ओरिण्टेलिस* एल. –लता	रैननकुलेसी	34–5200		पूरा पौधा	जोड़ों के दर्द में एवं एण्टीसैप्टिक	स्थानिक
9.	*कौरीडेलिस क्रैसिफोलिया* रॉयल –झाड़ी	फ्यूमेरेसी	3000–4200	चागपा, मेन्सा	पूरा पौधा	विपुल मासिकधर्म में रक्तस्राव को कम करने में	स्थानिक
10.	*कोराइलस जैकोमोन्टाई* डेन्स – पेड़	कोराईलेसी	2000–3300	थांगी, थंगोली	बीज	मांसपेषियों के दर्द में	स्थानिक
11.	*डैक्टाइलोराइजा हत्थाजीरिया* डी.डॉन –शाक	आर्किडेसी	3000–3800	हाथपंजा	प्रकंद	जीर्ण ज्वर, खांसी, पेट की बिमारी, घाव आदि	अतिसंकटग्रस्त

12.	*डेल्फिनियम कशमैरिएनम* रॉयल –झाड़ी	रैननकुलेसी	3000–5000	खीगा दवाई	पत्तियां	खांसी और ठंड	स्थानिक
13.	*डे. डेन्यूडेटम* वॉल एक्स हूक. एफ एण्ड थामसन –शाक	रैननकुलेसी	2000–2800	–	जड़	दांतदर्द	स्थानिक
14.	*डेस्मोडियम एलीगेन्स* डीसी –झाड़ी	लेग्यूमिनोसी	2000–4000	खाती	पत्तियां	बुखार, खांसी, उल्टी, अस्थमा, सांप के काटने पर	स्थानिक
15.	*डायोस्कोरिया डेल्टोयडिया* वॉल एक्स कुंथ –लता	डायोस्कोरिएसी	2000–2800	–	कंद	कृमिनाशक, जीवन रक्षक दवाई बनाने में	अतिसंवेदनशील
16.	*इफिड्रा जीरारडीयाना* वॉल एक्स स्टैफ–झाड़ी	इफिड्रेसी	2800–4000		जड़	दमा, रक्तशोधक, सिरदर्द	स्थानिक
17.	*फेरूला जैस्कियाना* वाटके –शाक	एपीएसी	2600–3000	कुराश	कंद	घाव, कटना–जलना	अतिसंवेदनशील
18.	*जैन्शियाना ल्यूकोमिलिना* मैक्सिम एक्स कूष्न –शाक	जैन्सियानेसी	2500–5000	बुकसुक शिपो	पूरा पोधा	पिलिया	अतिसंवेदनशील
19.	*हिरैक्लियम कैण्डीकैन्स* एल –शाक	एपीएसी	1800–4000	पाडियाला, पोराल	पत्तियां, तना, जड़	ल्यूकोडर्मा, यौन सम्बन्धी समस्या	अतिसंवेदनशील
20.	*हिप्पोफी रहैम्नॉयडिस* एल –झाड़ी	इलियाजिनेसी	2600–3500	हिप्पोफी, सिरमंग	फल, तना	विटामिन सी	अतिसंवेदनशील
21.	*हिप्पोफी सैल्सीफोलिया* डी. डॉन –झाड़ी	इलियाजिनेसी	2800–3500	हिप्पोफी	फल	खांसी, बुखार, त्वचा रोग, स्वास्थ्यवर्धक चटनी	स्थानिक
22.	*हाईपेरिकम पर्फोरेटम* एल. –शाक	हाईपरिकेसी	1800–2800	शिन चाई	फूल	डिप्रेशन, नसों में परेषानी	अतिसंवेदनशील
23.	*जुगलैन्स रेजिया* एल – पेड़	जुगलानडिएसी	1000–3300	अखरोट	पत्ते, बीज	पेट के कीड़ों, दस्त	स्थानिक, खतरे के पास
24.	*जूरीनिया डोलोमाई* बाएस –शाक	एस्ट्रेसी	3000–4000	धूप	जड़	त्वचा रोग, कटने पर	अतिसंवेदनशील
25.	*मैकोनॉप्सिस*	पापावरेसी	2400–4200	तिसे मण्डोक	पूरा पौधा	पैरों में सूजन,	स्थानिक

	एक्यूलिएटा रॉयल –शाक			चारमैन		शरीर में दर्द हेतु	
26.	*मोरिना कॉउल्टिरियाना* रॉयल–शाक	मोरिनिएसी	3000–3700	तिंगला	फूल	आखों की बिमारी में	स्थानिक
27.	*मौरस सिरेटा* रॉक्सब – पेड़	मोरेसी	2000–2300	कुरूम	पत्ते, फल	पत्ते चारे के रूप में, फल खाने योग्य	स्थानिक
28.	*नारडोस्टैकिस ग्रेण्डीफ्लोरा* डीसी. –शाक	कैर्प्रीफोलिएसी	3600–4800	मासी	कंद	दिल के दर्द, मूत्र विर्सजन, मासिकधर्म में	अतिसंकटग्रस्त
29.	*नेपेटा इरेक्टा* (रॉयल एक्स बैन्थ) बैन्थ –शाक	लैमिएसी	2500–3200		पत्ते	रक्तचाप, ठंड, खांसी, बुखार, एन्फलूएंजा	स्थानिक
30.	*पेडीकुलेरिस बाईकोरनेटा* कोलाट्ज –शाक	स्क्रोफुलेरिएसी	2700–4300	पियासैंग	पत्ते	छाती के दर्द, पीठ दर्द, मुंह से खून आना	स्थानिक
31.	*फाइसोक्लेनिया प्रेइलेटा* (डेकन) मिर्स –शाक	सोलेनेसी	3500–4600		पूरा पौधा	गुर्दे की परेशानी, अल्सर, मिर्गी	सुभेद्य
32.	*पिक्रोराइजा कुर्रूआ* रॉयल एक्स बेंथ –शाक	स्क्रोफुलेरिएसी	3000–4000	कारू, कौर	जड़	दस्त, रक्तहीनता दमा, डायरिया	स्थानिक
33.	*पाइनस जीरारडीयाना* वाल एक्स लम्बर्ट – पेड़	पाइनेसी	2500–3000	चिलगोजा	फल	बलगम निस्तारक, पाचन में सहायक	संकटग्रस्त होने के कगार पर
34.	*प्लूरोस्पर्मम ब्रूनोनिस* बेंथ एक्स सी.बी. क्लार्क –शाक	एपीऐसी	3000–4000		पत्ते	पत्तों का रस ठंड लगने पर, चेचक में	स्थानिक
35.	*पोडोफिल्लम हेक्जेन्ड्रम* रॉयल –शाक	पोडोफिल्लेसी	2600–3800	बनककरी, जड़, फल ओमो–षे		रेचक, खांसी, जोड़ों के दर्द में, दमा	स्थानिक
36.	*रिह्यूम आस्ट्रेली* डी. डॉन –शाक	पौलिगोनेसी	3300–5200	चूकरी	जड़	मांसपेषियों का दर्द, चेचक, दांत साफ करने में	अतिसंवेदनशील
37.	*रोहडोडेन्ड्रौन एन्थोपोगोन* डी.डॉन –झाड़ी	इरिकेसी	3200–4500	मोरूआ, तालिस्पत्रा	पत्ते	लगातार छींक आने पर	अतिसंवेदनशील

38.	*रो. कैमपैन्यूलेटम* डी. डॉन –झाड़ी	इरिकेसी	3000–4300	शेरगल	पत्ते	चेचक व खुजली में	अतिसंवेदनशील
39.	*ससूरिया कोस्टस* (फैल्क) लिप्च –शाक	एस्ट्रेसी	2600–4000	कुथ	जड़	गठिया, मूत्रवर्धक	स्थानिक, अतिसंकटग्रस्त
40.	*सैलिनियम वैजिनेटम* सी.बी. क्लार्क –शाक	एपीएसी	2700–3800	माथोसाल, भूतकेशी	जड़	धूप बनाने में	स्थानिक
41.	*सै. टैनियूफोलियम* वॉल एक्स सी.बी. क्लार्क	एपीएसी	2600–3900	मूरामानसी	जड़, फूल	सूजन व घूटनों के दर्द में	स्थानिक
42.	*स्टीलेरिया मिडिया* (एल) विल –शाक	कैरियोफिल्लेसी	2600–3000	कोकुवा	पत्ते	जले–कटे, हड्डी के टूटने पर	स्थानिक
43.	*स्वैर्सिया चिरायता* (रॉक्सब एक्स फ्लैमिंग) कर्स्ट – जड़ी	जैन्सियानेसी	1500–3000	चिरायता, किराता–टिका	पूरा पौधा	फंगस रोग, ज्वरनाषक, जीवाणुरोधी	अतिसंकटग्रस्त
44.	*अल्मस वॉलिचियाना* प्लैन्च – पेड़	अलमेसी	2200–3000	मंधु	पत्ते, छाल, तना	हड्डी टूटने व जोड़ों के खिसकने में	अतिसंवेदनशील
45.	*वैलेरियाना जटामांसी* जोन्स –शाक	वैलेरियानेसी	1500–3600	निहानू	जड़	पेट की बिमारी	अतिसंवेदनशील

नीला नभ हो, निर्मल नीर,
धरा हरी हो, स्वच्छ समीर ।।

उत्तर–पश्चिमी हिमालय : घास की आनुवांशिक विविधता का भंडार

हरमिन्दर सिंह और पुनीत कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

आदिकाल से ही मानव और वनस्पति का अटूट सम्बंध रहा है जिसमें भी विशेषकर घास ने मानवजाति के विकास में प्रमुख भूमिका निभाई है। घास वनस्पतियों के एकबीज पत्री वर्ग के अंतर्गत आती है। घास कई प्रकार की होती हैं जैसे की छोटी हरी–भरी जड़ी बूटियों की तरह या बड़े पेड़ रुपी बांस की तरह, वार्षिक या बहुवर्षीय। घास प्रकृति में विश्वव्यापी हैं जिसकी संसार में लगभग 650 वंशों से सम्बन्धित 11000 जातियाँ पाई जाती हैं । भारत में घास की 250 वंशों से सम्बन्धित 1200 जातियाँ पाई जाती हैं। घास के तने को 'कल्म' कहते हैं, जो गोलाकार होता है तथा पर्व और पर्वसन्धियों में विभाजित होता है। जो अंदर से खोखला (केवल पर्वसन्धि वाले भाग को छोड़कर) होता हैं जिस पर पत्तियां संकीर्ण तथा एकान्तरित रूप में व्यवस्थित होती हैं। पुष्पक्रम, कणिश या पुष्पगुच्छ प्रकार का होता है।

इलामस न्यूटेन्स

हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, उत्तराखंड जैसे पहाड़ी राज्यों सहित उत्तर–पश्चिम हिमालय के ऊंचाई वाले क्षेत्रों में कई प्रकार की घास पायी जाती हैं। यहाँ घास की जातियाँ एल्पाइन घास के मैदानों, मध्य वानि चले हिमालय की हरी भरी घाटियों और उत्तरी हिमालय के शीत मरुस्थल में वितरित हैं। हिमालय के ऊंचाई (1500–5000 मीटर) वाले क्षेत्रों में लगभग 272 प्रकार की घास की जातियाँ पाई जाती हैं।

घास, उत्तर–पश्चिम हिमालय की वनस्पति का एक महत्वपूर्ण भाग है जो कि पारिस्थितिकी के साथ–साथ आर्थिक रूप में भी महत्वपूर्ण है। अत्यधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में स्थानीय लोगों की जीवन शैली में घास महत्वपूर्ण संसाधन है। जहाँ मौसम अपनी चरम सीमा पर रहता है और भौगोलिक परिस्थितियां बदलती रहती हैं। ऊँचे पेड़ों की संख्या आमतौर पर ऊंचाई में वृद्धि के साथ–साथ कम होती जाती है और घास का आवरण उच्च ढलानों पर हरियाली के रूप में दिखाई देता है। इस प्रकार के वातावरण में जहां तापमान शून्य से भी नीचे गिर जाता है, जहां भौगोलिक परिस्थितियां एक चुनौती हैं, वहां पाई जाने वाली घास की जातियों में भी कुछ महत्पूर्ण बदलाव आए हैं ताकि वह इन कठिन परिस्थितियों में भी जीवित रह सकें जैसे पादप की लघु प्रवृत्ति अर्थात जमीन पर दिखने वाले पौधे का आकार काफी छोटा होना, किन्तु उसकी जड़ें जमीन में काफी गहरी होती हैं जो बहुवर्षीय होती है उनमें से प्रत्येक वर्ष नयी कोपलें अंकुरित होती है। घास घने,कलंगीदार होते हैं। सारे पौधों पर सघन रोम होते हैं जो उसे ऊष्मीय विकिरणों से बचाते हैं और तापमान को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बदलावों में छोटा जीवन चक्र (3 से 6 माह की ग्रीष्म ऋतु) और अलैंगिक प्रजनन है।

घास आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। इनका प्रयोग भोजन, चारा, दवाइयों, कागज, कपडे, चरागाह, खेल मैदानों और निर्माण आदि में होता है। यह मानव और अन्य प्राणियों के लिए एक वरदान की तरह है। भारत को फसलों की खेती का एक महत्वपूर्ण केन्द्र माना गया है। पश्चिमी हिमालय में आनुवंशिक विविधता का अथाह भंडार है। इसमें कोई दो राय नहीं की इन ऊंचाई वाले दुर्गम क्षेत्रों में आज भी हमे ऐसी घास की जातियाँ मिल सकती हैं जो कि दुनिया के लिए नयी हों या हमारी फसलों की वन्य कुटुम्बी हों। ये नई जातियां हमें अपनी खेती और फसलों की उपज को सुधारने एवं बढ़ाने में आगे चल कर सहायक साबित हो सकती हैं। इस प्रकार की कुछ घास जातियां जिनका इस संदर्भ में उल्लेख किया जा सकता हैं ।इस प्रकार हैं– *होर्डियम मुनराई, होर्डियम अजेरिसिरस, होर्डियम ब्रेविसुबुलेटम, एलाईमस दहौरिकस, एलाईमस न्यूटेन्स, पॅनिसिटम ओरिएंटेल, सकिल सिरेले, ब्रोमसकैल्मो ग्रोस्ट्रिस* एवं *पैनिकम, ट्रिटिकम, अग्रोस्टिस* की जातियाँ।

घास पोलीप्लॉइड होते है अर्थात पोलीप्लॉइडी एक विकासवादी प्रक्रिया है जिसमें दो से अधिक जीनोम, संकरण द्वारा आमतौर पर एक साथ आ जाते हैं। जिसके बाद गुणसूत्र दोहरीकरण हो जाता है। घास में अधिक पोलीप्लॉइड होने का मुख्य कारण अलैंगिक प्रजनन का होना भी है।

तालिका में हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, उत्तराखंड में पाये जाने वाली घास की जातियों और उनके उपयोग को दर्शाया गया है।

घास की जातियां	ऊंचाई अधिकतम	गुणसूत्र संख्या (2n),आधार गुणसूत्र संख्या,पोलीप्लॉइड स्तर	उपयोग
एग्रोस्टिस मुन्रोन	4200 मीटर	2n = 14–42 x = 7 2x,4x,6x)	पशुओं के लिए चारा
अरूण्डो डोनक्स	4300मीटर	2n = 24–112 x = 8 (2x,4x,5x,6x,3x,9x)	चटाई बनाने, झोपडियों की दीवारों के निर्माण, आयुर्वेदिक गुणवत्ता–जड़ों के काढ़े को कैंसर के इलाज में इस्तेमाल किया जाता है।
होर्डियम वल्गेर	4300 मीटर	2n = 14–28 x = 7 (2x,4x,)	खाद्यान्न फसल
ट्रिटिकम एस्टिवम	3300 मीटर	2n = 14–42 x = 7 (2x,3x,4xए6x)	खाद्यान्न फसल, औषधीय महत्व
औप्लीमेंसिस कम्पोजीटस	3000 मीटर	2n = 18–72 x = 9 (2x,4x,5x,6x,8x)	चारे के रूप में
सिकल सिरल	3300 मीटर	2n = 14–28 x = 7 (2x,4x)	खेती की फसल
स्पोरोबोलुस डायंडर	1700 मीटर	2n = 24–54 x = 9,12 (2x,4x,6x,)	चारे के रूप में, झाड़ू बनाने में, आयुर्वेदिक गुणवत्ता–बर्न्स एंड पिंपल्स
पोआ अल्पीना	5000 मीटर	2n = 14–63 x = 7 (2x,3x,4x,6x,8x,9x)	चारे के रूप में,
पोआ ऐनुआ	3500 मीटर	2n = 14–56 x = 7 (2x,4x,6x,8x)	चारे के रूप में,
फिलेरस माइनर	2500 मीटर	2n = 14–28 x = 7 (2x,4x,6x)	चारे के रूप में,
मुलनबर्जिया हिमालेन्सिस	4500 मीटर	2n = 40	चारे के रूप में

		x = 10 (4x)	
फेस्टुका रुब्रा	4700 मीटर	2n = 14–70 x = 7 (2x,4x,6x,7x,8x,9x,10x)	चारे के रूप में
डीजीटैरिया सलियारिस	3700 मीटर	2n = 18–108 x = 9 (2x,3x,4x,6x,8x,12x)	चारे के रूप में
क्राएसोपोगन फुलवस	2000 मीटर	2n = 20–80 x = 10 (2x, 4x, 8x)	चारे के रूप में
सायनोडन डिक्टायलोन	3600 मीटर	2n = 16–72 x = 8,9 (2x,4x,6x,8x)	चारे के रूप में, औषधीय महत्व– घाव पर लागू, ब्रोंकाइटिस, नेत्र विकारों में उपयोगी, बवासीर, माउथ फ्रेशनर, अस्थमा, ट्यूमर, में उपयोगी
अविना फतुआ	4000 मीटर	2n = 14–42 x = 7 (2x,4x,6x)	चारे के रूप में, आयुर्वेदिक गुणवत्ता–उदर विकार, बुखार
फ्रैग्माटिस करका	4000 मीटर	2n = 24–48 x = 12 (2x,3x,4x)	आयुर्वेदिक गुणवत्ता–दृक्षाघात, हृदय रोग, मूत्र रोग
इलामस न्यूटेन्स	4500मीटर	2n = 21–42 x = 7 (3x,4x,6x)	चारे के रूप में

प्रदूषण फैलाना महा कुकर्म ।
पर्यावरण की रक्षा मानव धर्म ।।

पालकोट वन्य–जीव अभयारण्य (झारखंड) की वनस्पति विविधता– एक परिचय

विजय कुमार मासतकर[1] पी. लक्ष्मीनरसिम्हन[2] एवं माधुरी मोढ़क[3]

[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता,

[2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पुणे,

[3]शासकीय विज्ञान महाविद्यालय, भोपाल

झारखंड एक ऐसा राज्य हैं, जो वनों–जंगलों और खनिज सम्पदा से समृद्ध है, वर्ष 2000 में बिहार राज्य के विभाजन के बाद एक अलग राज्य के रूप में गठित इसके दो प्रमुख क्षेत्र हैं जिसमें छोटा नागपुर और संथाल परगना शामिल हैं। यह क्षेत्र प्राचीन काल में मुंडा और उरांव जनजाति के कब्जे में था। इस राज्य में पालकोट वन्यजीव अभयारण्य, 1990 में अधिसूचित किया गया, जो झारखंड राज्य के गुमला एवं सिमडेगा जिले में 22°45'और 23° उत्तरी देशान्तर और 84°30' से 84°45' पूर्वी अक्षांश में भारत– मलेशिया के क्षेत्र के डेक्कन प्रायद्वीप के जैव– भौगोलिक क्षेत्र में दक्षिण झारखंड के छोटा नागपुर पठार के बीच में स्थित हैं। अभयारण्य क्षेत्र 760.948 वर्ग कि.मी. के एक भौगोलिक क्षेत्र में फैला हुआ है, जिसमें से वनों का क्षेत्र केवल 182.83 वर्ग किलोमीटर (आरक्षित वन 12.27 वर्ग कि.मी. , संरक्षित वन 170.56 वर्ग कि.मी.) है।

पालकोट अभयारण्य का तीन क्षेत्रों में सीमांकन किया गया है अर्थात, कोर क्षेत्र 24.26 वर्ग कि.मी., बफर क्षेत्र 157.57 वर्ग कि.मी. और पर्यटन क्षेत्र 25.50 वर्ग कि.मी. (बफर क्षेत्र के साथ ऊपरी आवरण)। यह अभयारण्य क्षेत्र तीन प्रखंड में बंटा हैं जो कि गुमला व सिमडेगा जिले में स्थित हैं पालकोट, रेडीह (गुमला) एवं सिमडेगा का भाग। इस रेंज को तीन वर्गो में विभाजित किया गया हैं, जो क्रमशः पालकोट, रेडीह एवं कोचेडेगा हैं, प्रत्येक वर्ग को पुनः दस अनुभागो में बांटा गया हैं, जिसका उद्देश्य अनियंत्रित कटाई सहित अवैध गतिविधियो पर रोक, अवैध शिकार को नियंत्रित करने और विकास के लक्ष्य को पूरा करना हैं । पालकोट वन्यजीव अभयारण्य में मुख्य रूप से उरांव, खरिया, मुंडा, रोहितास और बिरहोर आदिम जनजातियाँ निवास करती हैं। आदिवासी समूहों को खनिज संपन्न क्षेत्रों में निवास करते हुये एवं लाख उत्पादन /कृषि और पशुपालन/खानों में श्रमिकों के रूप में लगे हुए देखा जाता है। पालकोट अभयारण्य के जंगलों के दो प्रमुख प्रकार का समर्थन करता है अर्थात् उत्तरी उष्णकटिबंधीय शुष्क

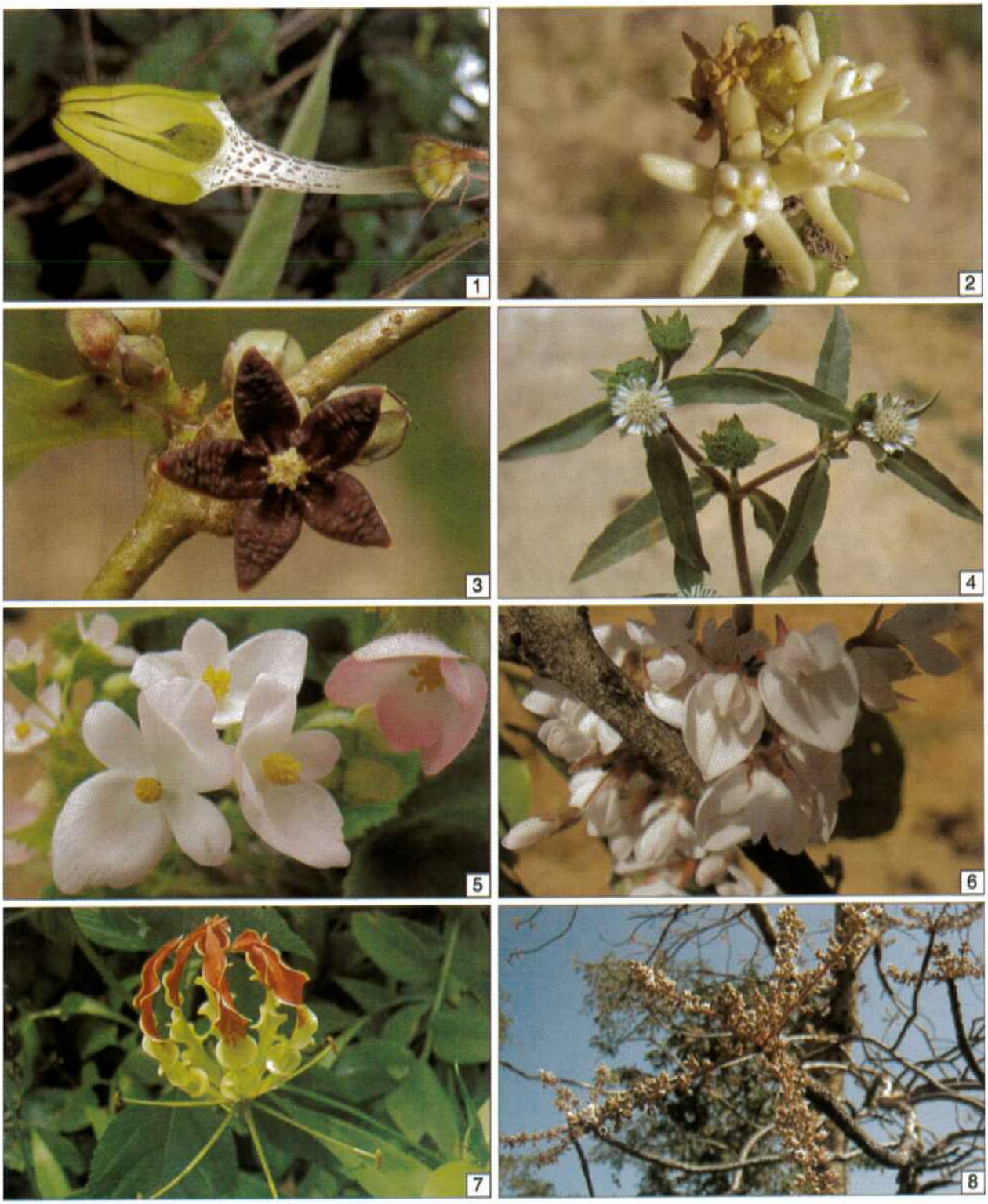

1. *सिरोपेजिआ हिरसुटा* , 2. *सिनांकम विमिनाले,* 3. *हेमिडेसमस इंडिकस,* 4. *इक्लिप्टा प्रोस्टेटा,* 5. *बिगोनिआ पिक्टा,* 6. *डेस्मोडियम ऊजेनेंसे,* 7. *ग्लोरियोसा सुपर्बा,* 8. *बोसवेलिआ सिरेटा.*

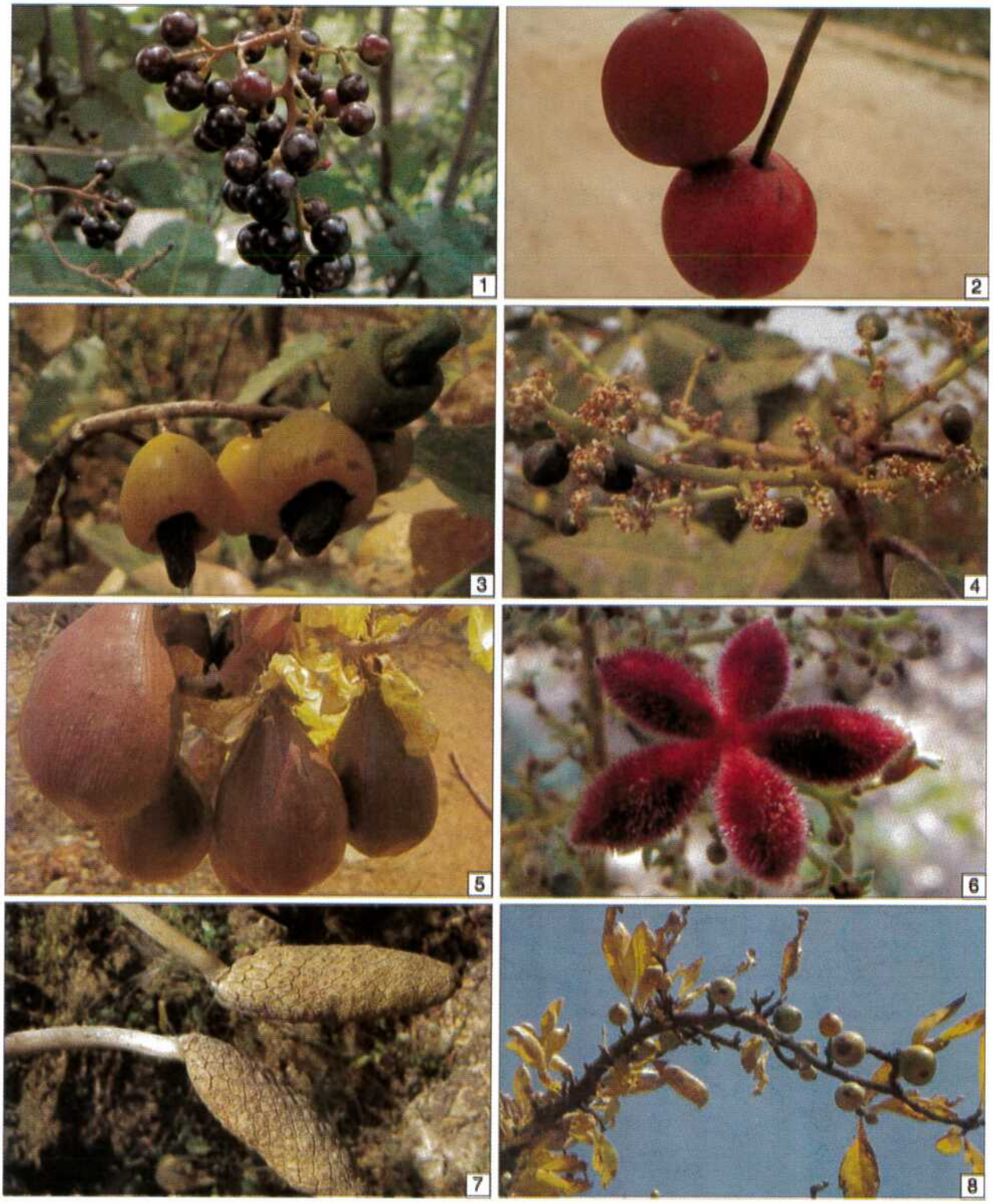

1. *एम्पेलोसिसस लेटिफोलिआ,* 2.*केपारिस जेलिनिका,* 3.*सेमेकार्पस एनाकार्डियम,* 4. *बुकनानिया कोचिंचिनेंसिस,* 5.*कोक्लोस्पर्मम रेलिजियोसम,* 6. *स्टर्कुलिआ युरेंस,* 7.*सिंडाप्सस ओफिसिनेलिस,* 8.*तमिलनाडिया उलिजिनोसा.*

पर्णपाती वन (शुष्क प्रायद्वीपीय साल वन) और उत्तरी शुष्क मिश्रित पर्णपाती वन हैं । वन्य जीव अभयारण्य में पाई जाने वाले वनों एवम वनस्पतियों का विवरण निम्न प्रकार हैं –

शुष्क प्रायद्वीपीय साल वन –साल सूखा क्षेत्रों में सबसे महत्वपूर्ण और प्रमुख जाति है और दोनों क्षेत्रों अर्थात् अभयारण्य के पहाड़ी इलाकों व मैदानों में अच्छी तरह से होती है। वन के प्रथम आवरण में शुष्क पर्णपाती साल वन के साथ *अल्बिजिया लेबेक, एनोजिएसस लेटिफोलिया, बुकनानिया कोचिनचाईनेंसिस, ब्युटिया सुपर्बा, हल्दिना कोर्डिफोलिआ, लेजर्स्त्रोमिआ पर्विफ्लोरा, लेनिआ कोरोमंड़िलका, मधुका लोंगिफोलिआ* (महुआ), *टेरोकार्पस मार्सुपिउम, स्क्लेकेरा ऑलेओसा, सेमेकार्पस अनाकाडिएम* (भिलावाँ), *सिजाईजियम क्युमिनि* (जामुन), *टर्मिनेलिया बेलेरिका* (बहेड़ा), *टर्मिनेलिया चेबुला* और *टर्मिनेलिया टोमेंटोसा* एवं दूसरे आवरण में *बोहिनिया वेरिगेटा* (कचनार), *केरिया अर्बोरिया* (कुंबी), *कसेरिया टोमेंटोसा, केसिआ फिस्टुला* (अमलतास), *क्रोटन पर्सिमिलिस, डिओस्पय्रोस मेलनोजायलोन* (तेन्दु), *फ्लेकोर्सिआ इंडिका, गार्डेनिया लातिफोलिया, गरुगा पिन्नाटा, ग्युडिनिया टोमेंटोसा, होलेर्निया पुबेसेंस, डेस्मोडिएम उजेंसिस, फिलेंथस इम्ब्लिका* (आँवला), *तमिलनाडिया उलिजिनोसा* और *जिझिफस जुजुबा* के होते हैं। तृतीय आवरण में *ग्रेविया हिर्सुटा, इंडिगोफेरा केसिओडेस, मेलोटस फिलिपेंसिस* और *वुड्फोर्डिया फ्रुटिकोसा* (गुलधावी) के होते हैं। जंगल में शामिल *कटुनारेगम इस्पाइनोसा, क्लेरोडेन्ड्रम इंफोर्टुनेटम* (भांट), *डेस्मोडियम पल्चेलम, फ्लेमिंजिया चापर, लैंटाना कमारा, फीनिक्स अकौलिस, थेस्पेसिआ लेम्पास*और *झिझिफस ओनोप्लिया* भी शामिल है। शाकिय व शाखिय लताओं में*सिलस्ट्रस पेनिकुलेटस, काम्ब्रेटम एल्बम, क्रिप्टोलेपिस डुबिया, डायोस्कोरिया ब्लबिफेरा, मिलेशिया एक्स्टेंसा, स्माइलैक्स ओवेलिफोलिआ* और *स्माइलैक्स जायलेनिका* हैं। कुछ दुर्लभ ऑर्किड में*डेंड्रोबियम फिम्ब्रियटम, लुसिया ब्रेकिस्टिकिस, वान्डा टेसेलाटा* और *वान्डा टेस्टेसिआ* । वन में तीन मृदा ऑर्किड भी पाये गये हैं जिनमें *जिओडोरम डेंसिफ्लोरम, हबेनारिया कामेलिनिफोलिया* और *हबेनारिया मार्जिनाटा*। परजीवी पादप अभयारण्य में पाए जाने वाले कुछ परजीवी पादप,*कस्क्युटा रेफ्लेक्सा* (अमरबेल), *केसिथा फिलिफोर्मिस, डेंड्रोफ्थि फल्केटा, स्क्रुला पैरसिटिका* और *विसकम अर्टिकुलेटम* शामिल हैं।

उत्तरी शुष्क मिश्रित पर्णपाती वन–ऐसे वन जिनमें वार्षिक वर्षा 350 और 400 के बीच मि.मी और औसत तापमान नमी के साथ 25 और 27 डिग्री सेल्सियस के बीच में रहता है। इसमें *अर्टोकार्पस लकुचा, चिओनेंथस रेमिफ्लोरस, डल्बर्जिया लेंसिओलेरिआ, डिलेनिया पेंटाग्ग्ना, ईम्बेलिआ ट्स्जेरिआम–कोटम, फाईकस सेमिकोर्डेता, गरुगा पिन्नाटा, लिट्सियाग्लुटिनोसा, पेटालिडियम बार्लेरिओइडेस, शोरिआ रोबस्टा, स्टेकिटार्फेटा केयेनेंसिस, स्टेकिटार्फेटा ज्मैकेंसिस* और *स्टेकिटार्फेटा मुटाबिलिस, सिजाईजियम क्युमिनि* (जामुन), *टर्मिनेलिया बेलेरिका* (बहेड़ा) और *वाईटेक्स नेगुंडो* हैं, प्रथम आवरण में प्रमुख जातियों में से कुछ हैं। दूसरे आवरण में *एग्ले मर्मोलोस* (बेल), *बोहिनिया रेसिमोसा, बुकनानिया कोचिनचाईनेंसिस, केरिया अर्बोरिया* (कुंबी), *कसेरिआ टोमेंटोसा, केसिआ फिस्टुला* (अमलतास), *क्रोटन पर्सिमिलिस, मेलोटस फिलिपेंसिस, निक्टेनथिस अर्बोरट्रीस* और *डेस्मोडिएम उजेंसिस* के होते हैं। तीसरे आवरण में*कटुनारेगम इस्पाइनोसा, फ्लेमिंजिया चापर, ग्रेविया हिर्सुटा, इंडिगोफेरा केसिओडेस, लैंटाना कमारा* और *वुड्फोर्डिया फ्रुटिकोसा* (गुलधावी) के होते हैं। कुछ अन्य वनस्पतियों में *अल्टर्नेंथेरा सेसिलिस, ब्रेकिआरिआ रेप्टेंस,कोमेलिना एटेनुअटा, कर्कुलिगो ओर्किओडेस, ईलुय्साईन कोरिकाना* (रागी), फिम्ब्रिईस्टिल्स ओवाटा, पेंटानेमा ईंडिकम (कुल्फा), *फिलेंथस रेटिकुलेट्स, सीडा हॉम्बिफोलिआ, टेफ्रोसिआ पर्पुरिआ* और *थेमेडा ट्राईएंड्रा* शामिल हैं। सामान्य लताओं में *बोहिनिया वेहलाई, सेलस्ट्रस् पेनिकुलेटस, साफोस्टेम्मा ओरिकुलेटा,डायोस्कोरिआ बल्बिफेरा* और *ईरिसिबे पेनिकुलेटा* हैं। टेरिडोफाइट (अपुष्पीय पादप) में *एडियेन्टम लुनुलेटम, ब्रयोडेस्मा ईंडिकम, ब्रयोडेस्मा वाइटियाई, चिलोसोरिया टेन्युफोलिआ, लाईगोडियम फ्लेक्सिओसम, सिलाजिनेला ब्यॉप्टेरिस, सिलाजिनेला रेपेंडा, सिलाजिनेला वेजिनेटा, ओफियोग्लोसम कोस्टेटम, ओफियोग्लोसम रेटिकुलेटम, पैराहेमिनिओटिस कोर्डेटा* और *टेरिस बाईओरिटा* उप– प्रजाति *वाल्केरियना* सम्मिलित हैं। पालकोट वन्य जीव अभयारण्य में वर्ष 2010 से 2014 के मध्य किये गये वानस्पतिक सर्वेक्षण के आधार पर पेड़–पौधों के अध्ययन के द्वारा एक अनुमानित संख्या के आंकलन से एक ब्यौरा दर्ज किया गया है, जिनका विश्लेषण नीचे दर्शायी गयी तालिका में दिया हैं।

कुलों, वशों एवं जातियों की संख्या का विवरण

वर्ग		कुल संख्या	वंश	जातियाँ	उपजाति	प्रभेद
आवृत्तबीजी	द्विबीजपत्री	74	263	370	02	02
	एकबीजपत्री	19	56	86	01	01
पर्णांग		05	08	11	01	–
योग		**98**	**327**	**467**	**04**	**03**

राजस्थान की महत्वपूर्ण औषधीय वन–सम्पदा : संक्षिप्त वर्णन

चन्दन सिंह पुरोहित, रमेश कुमार एवं विनोद मैना
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर

भारतीय मरूस्थल की रेतीली मिट्टी में अधिक घुलनशील लवणों की अधिक मात्रा, अधिक पी. एच. तथा कम कार्बनिक पदार्थ होते हैं। विभिन्न परिस्थितियों में कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा भिन्न–भिन्न होती है, फॉस्फेट तथा नाइट्रोजन की पर्याप्त मात्रा से मृदा उपजाऊ रहती है। यहाँ लवणीय तथा क्षारीय क्षेत्र भी पाए जाते हैं। यहाँ का तापमान सर्दियों में (90 से. से 170 से.) तथा गर्मियों में (340 से. – 450 से.) के मध्य रहता है जो कभी–कभी 48 डिग्री. से. तक भी पहुंच जाता हैं। मरूस्थल में 90–95 प्रतिशत वर्षा मानसून के रूप में जून और सितम्बर के मध्य होती है। औसत वार्षिक वर्षा (300–500 मि.मी.) अरावली के तटीय क्षेत्र, कच्छ तथा दक्षिणी–पश्चिमी सौराष्ट्र में होती हैं, जबकि पश्चिमी राजस्थान में औसत वार्षिक वर्षा (200 से 360 मि.मी.) हो पाती है। सम्पूर्ण मरूस्थल में सापेक्षिक आर्द्रता वर्षा ऋतु में 75 प्रतिशत से 90 प्रतिशत तथा शरद ऋतु में 40 प्रतिशत से 60 प्रतिशत रहती है।

राजस्थान में वनस्पति विविधता पूरे भारत की वनस्पति की तुलना में बहुत कम है। यहाँ पाये जाने वाली 1911 पादप जातियां, 780 वंशों और 154 कुलों के अंतर्गत आती हैं। जिनमें 63 पादप जाति विलुप्त प्रायः हैं, जिनका संरक्षण करना आवश्यक है। भारत की 33 प्रतिशत स्थानिक जातियों में से 3 प्रतिशत जातियां (44) मरूस्थलीय क्षेत्र में पाई जाती है। ये संख्या में कम या लुप्तप्रायः हैं। ये मुख्यतः *सेन्क्रस राजस्थानेन्सिस, कोन्चोलवुलस ऑरीकोमस* प्र. *फेरूगिनोसुस, कोन्चोल्वुलस ब्लेट्टेराई, फारसेटिया माइक्रेन्था, पुलिकेरिया राजपुताना, जिजिफस ट्रन्केटा, पेवोनिया अरेबिका* प्र. *ग्लुटीनोसा* तथा प्र. *मेसुरिएन्सिस* हैं। राजस्थान की वनस्पतियों में से कुछ वनस्पतियों का उपयोग दैनिक जीवन की वस्तुओं में, औषधीय महत्व में एवं आर्थिक उपयोग में लिए जाते हैं। इनमें से 26 पादपों के वैज्ञानिक नाम, सामान्य प्रचलित नाम, वितरण (राजस्थान में) एवं उपयोग का वर्णन नीचे दिया गया है–

(1) जाल (*सालवेडोरा परसिका*)

सामान्य नाम : छोटा पीलू, झाक, जाल (हिन्दी), पीलू, पीलूह (संस्कृत), ढ़ालू, खारा जाल (राजस्थानी), मस्टर्ड ट्री (अंग्रेजी), इत्यादि। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में लगने वाले इस फल को 'रेगिस्तान के रसाल' के रूप में जाना जाता हैं।

वितरण : जालोर, बांसवाड़ा (लोहारिया), बिकानेर (शिव बाड़ी), जयपुर (आमेर), कोटा (बारां), सिरोही (माउन्ट आबु), जोधपुर (भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण उद्यान)इत्यादि।

उपयोग– फल ताजगी, स्फूर्ति एवं शीतलतादायक है जिसका प्रयोग लू–प्रकोप, अतिसार, गर्भाशय शोध, बवासीर, खुजली एवं अन्य चर्म रोगों में लाभप्रद है। जड़ की छाल घाव भरने में, अनियमित मासिक धर्म, तिल्ली के दर्द, गोनोरिया मेंय तने की छाल उदर विकारों मे तथा शाखाएं दातून के रूप में प्रयोग की जाती है।

(2) गुग्गुल (*कोमिफोरा वाइटाई*)

सामान्य नाम : गुग्गुल, कौशिकहा, देवधुपा, देवष्टा, महीशाक्षा, (संस्कृत), मुकुल, गुगल (हिन्दी) इत्यादि।

वितरण : जालोर, जोधपुर, जैसलमेर, नागोर, पाली, अजमेर इत्यादि। इसके औषधीय गुणों का अथर्ववेद, चरकसहिंता, सुश्रुता संहिता, अष्टांग हदे, भाव प्रकाश, योगरत्नाकर इत्यादि में भी वर्णन है। आयुर्वेद में गुग्गल को पांच प्रकार का (महिपाक्ष, महानील, कुमुद, पदमा और कनक) बताया गया है । जिनमें कनक गुगल को सर्वाधिक औषधीय माना गया हैं।

उपयोग– इसका उपयोग असथिवात, मूत्र रोग, मोटापन, गठिया इत्यादि में किया जाता हैं। यह यकृत उत्तेजक, वसा को घटाने में एवे हृदय रोग के लिये अत्यधिक लाभदायक हैं। इसके अर्क का उपयोग कोस्मेटिक के रूप, पिगमेंटिंग एजेंट, मिलेनोसाइट संवर्धक एजेंट के रूप में किया जाता है।

(3) सरगुड़ा (*मोरिन्गा कोन्कानेन्सिस*)

सामान्य नाम : सरगुड़ा।

वितरण : जोधपुर (डेचु), बाड़मेर (पथरीले इलाकों), चुरू (गोपालपुरा), जैसलमेर (कुरी), पाली (पीपरोली) तथा टोंक (मयोला जंगल), इत्यादि।

उपयोग– छाल बिच्छू के काटने पर घिसकर लगाते हैं। लकड़ी कृषि उकरणों, बैलगाड़ी के विभिन्न भागों तथा भवन के निर्माण में, फलियां तथा ताजी–हरी पतियों को खाने से पशुओं की दूध देने की क्षमता में वृद्धि होती है।

(10) अपामार्ग (*काइरेन्थस एस्पेरा*)

सामान्य नाम : अपामार्ग, मयूरक(संस्कृत), आधीझाड़ा, लटजीरा, चिरचिटा (हिन्दी), अघेड़ो (गुजराती), अंपाग (बंगाली), इत्यादि।

वितरण : जालोर, जोधपुर, बिकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, पाली इत्यादि।

उपयोग– इसका उपयोग वमनकारक, रक्त–विकार, रक्तातिसार को नष्ट करने वाला है। यह दीपन, पाचन, रोचक, शूल उदर, अपचीनाशक, कफनाशक, खाज–खुजली, स्वप्नदोष, अर्शनाशक, हृदयशूल इत्यादि में काम आता हैं।

(11) आक (*केलोट्रोपिस प्रोसेरा*)

सामान्य नाम : अर्क (संस्कृत), मदार, मन्दार (हिन्दी), आक, आकड़ा (राजस्थानी), इत्यादि।

वितरण : यह पूरे भारत में मुख्यतः शुष्क व ऊसर भूमि पर मिलते हैं।

उपयोग– इसका उपयोग वामन, विरेचक, सारक, वातशूल, कुष्ठ, कण्डू, विष, प्लीहा, उदररोग, शोथ, रक्तपितनाशक तथा कृमिनाशक में होता हैं।

(12) सत्यानाशी(*आर्जिमोन मेक्सिकाना*)

सामान्य नाम : स्वर्णक्षीरी, शैलकंटा, (संस्कृत), पीली–कंटेली (राजस्थानी), सत्यानाशी, कंटेली (हिन्दी), कांटेधोत्रा (मराठी), दारूडा (गुजराती), इत्यादि।

वितरण : जालोर, जोधपुर, पाली, बिकानेर, चुरू इत्यादि।

उपयोग– जड़ अव्यवसथित पोषण एवं शारीरिक तंत्रो की कार्यप्रणाली में सुधार तथा त्वचा रोगों में दूध एवं बीज तेल घाव व चर्म रोगों में जड़ का लेप सूजन व विषैले जानवरों के काटने के स्थान पर तथा बीज स्नेहक, उल्टी पैदा करने, कफ एवं बलगम निष्कासन, त्वचा व श्लेष्म झिल्ली को शान्त करने में प्रयोग करते हैं।

(13)घृतकुमारी (*एलोय विरा*)

सामान्य नाम : कुमारी, घृतकुमारिका (संस्कृत), घी कुवार, ग्वारपाठा (हिन्दी), कुंवार पाठा (गुजराती), कोरकांटा (मराठी), घृतकुमारी (बंगला), गुवांरपाठो (राजस्थानी), इत्यादि।

वितरण– जालोर, जोधपुर, अजमेर, पाली, जयपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, नागोर इत्यादि।

उपयोग– छिलका दंतविकारों में, गूद्दा सौदर्य प्रसाधन में, आंखो की जलन में, कड़ा पेट नरम करने में तथा रस चर्मरोग में लाभदायक है। उदरशूल में इसकी सब्जी बनाकर खाने से आराम मिलता है।

(14) छोटा गोखरू (*ट्रिबुलस टेरेस्ट्रिस*)

सामान्य नाम : गोक्षुर, चणद्रुम, गोखरू (संस्कृत), छोटा गोखरू (हिन्दी), गोखरी (मराठी), गोखरू (राजस्थानी), इत्यादि।

वितरण : जालोर, जोधुपर, नागोर, बिकानेर, पाली, अजमेर, जैसलमेर, बाड़मेर इत्यादि।

उपयोग– फल का प्रयोग गुर्दो के विकार में, पत्थरी, नेफ्राइटिस तथा प्रोस्टेट की सूजन को कम करनें में किया जाता है।

(15) जंगली प्याज(*अर्जिनिया इण्डिका*)

सामान्य नाम : कोलकन्द (संस्कृत), जंगली प्याज, कनरी (हिन्दी), जोंगली पेयाजा (बंगाली), इत्यादि ।

वितरण : जालोर, जोधपुर, जैसलमेर इत्यादि।

उपयोग– इसका उपयोग कफनाशक व पाचक में लेते हैं। यह खांसी, दमा, हृदय रोग, दमा, आम वात की बीमारी में लेते हैं। इसके कंद का उपयोग दाद, खाज व खुजली में करते हैं।

(16) पुनर्नवा (*बोरहाविया डिफ्यूजा*)

सामान्य नाम : पुनर्नवा (संस्कृत), साठे (हिन्दी), राती साटोडी, बसेडो (गुजराती), खापरा (मराठी), गदापुष्पा (बंगला) इत्यादि।

वितरण : जालोर, बिकानेर, जोधपुर, नागोर, पाली, चुरू, गंगानगर इत्यादि।

उपयोग– जड़ खून साफ करने, मूत्र बढ़ाने में, भूख बढ़ाने में, विष का प्रभाव दूर करने में, हृदय रोग, बेरी–बेरी, यकृत रोग, खांसी दूर करने के लिए किया जाता है।

(17) भृंगराज (*इक्लिप्टा एल्बा*)

सामान्य नाम : भृंगराज, केशराज (संस्कृत), भांगरा (हिन्दी), केसुरिया(बंगला), माका (मराठी), भांगरो (गुजराती) इत्यादि।

वितरण : जालोर, जोधपुर, बिकानेर, नागोर, हनुमानगढ़ इत्यादि।

उपयोग– इसका उपयोग कुष्ठ, सफेद दाग, उच्च रक्तचाप, मूत्ररोग, खांसी तथा दमा रोग में करते हैं। पीलिया रोग, पेट का दर्द, यकृत वृद्धि, अजीर्ण, भूख न लगना, सिर दर्द व चक्कर आना में करते हैं तथा असमय बालों का सफेद होना व बालों के झड़ने से रोकने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

(18) ऊँट–कंटिली (*इकाइनोप्स इकाइनेटस*)

सामान्य नाम : कंटालू, उष्ट्रकंटक (संस्कृत), भांगरा (हिन्दी)।

वितरण : जालोर, बिकानेर, जोधपुर, पाली, नागोर, चुरू इत्यादि।

उपयोग–इसका प्रयोग कफ, मूत्र रोग, आंखों की बीमारी में एवं घाव लगने पर तथा बालों में जूंए मारने में इसकी जड़ का चूर्ण उपयोग करते है। इसे बलवर्धक दवाई में भी उपयोग लेते हैं। इसके बीज शरीर को ठण्डक पहुंचाते हैं।

(19) शंख–पुष्पी (*कनवोल्वुलस माइक्रोफिलस*)

सामान्य नाम :शंखपुष्पी (संस्कृत), शंखाहुली (हिन्दी) इत्यादि।

वितरण : जालोर, जोधपुर, बिकानेर, नागोर, पाली इत्यादि।

उपयोग– इसे अनिद्रा, रक्त वृद्धि, चिन्ता, मानसिक विकारों की दवाईयों के निर्माण में प्रयोग किया जाता है।

(20) डंडा–थोर (*यूफोर्बिया केडुसिफोलिया*)

सामान्य नाम : स्नुही (संस्कृत), डंडा–थोर (हिन्दी), थोर (गुजराती), जकूम (अंग्रेजी), इत्यादि।

वितरण : जालोर, जोधुपर, बिकानेर, अजमेर, जैसलमेर, बाड़मेर, नागोर इत्यादि।

उपयोग– इसके दूध (लेटेक्स) का उपयोग खांसी, त्वचा के छालों व बड़ी हुई प्लीहा के ईलाज में तथा मस्सों को हटाने में भी करते हैं। पत्तियों का उपयोग सब्जी बनाने में करते हैं।

(21) धतूरा (*धतूरा इनोक्सिया*)

सामान्य नाम : कनक, शिवशेखर, हरप्रिय (संस्कृत), धतूरा (हिन्दी), धोत्रा (मराठी), धतूरो (गुजराती), धतूर (पंजाबी), थॉर्न एप्पल (अंग्रेजी), इत्यादि।

वितरण : जोधपुर, पाली, अजमेर, बिकानेर, जैसलमेर, नागोर, चुरू इत्यादि।

उपयोग– यह कुष्ठ ज्वर, कृमि, श्वांस, उदरशूल और वृक्कशूल में लाभदायक है।

(22) दूर्वा (*साइनोडोन डेक्टाइलोन*)

सामान्य नाम : दूर्वा, शतपर्वा (संस्कृत), दूब (हिन्दी), दूर्वाघास(बंगाली), हरली, दूर्वा (मराठी), दुबड़ी, दोबड़ी (राजस्थानी), इत्यादि।

वितरण : यह राजस्थान के सभी जिलों मे जलाशयों व नमी के पास वाले स्थानों में पाई जाती है।

उपयोग– इसका लेप शरीर में ठंडक पहुंचाने में प्रयुक्त होता है, जो जलने पर व घावों पर भी करते हैं। कफ, पित्त, उल्टी, दस्त, मिर्गी, इत्यादि रोगों में इसको उपयोग में लेते हैं।

(23) सालर (*बोसवेलिया सिर्राटा*)

सामान्य नाम : शल्लकी, गजभक्ष्या (संस्कृत), सलई, सालर (हिन्दी), सालई (मराठी), सालेडो (गुजराती), इण्डियन ऑलीबेनम (अंग्रेजी) इत्यादि।

वितरण : जालोर, जोधपुर, अजमेर, उदयपुर इत्यादि।

उपयोग– इसका चूर्ण नकसीर, मस्सा, मुख दुर्गन्ध आदि रोगों में तथा गोंद का लेप गण्डमाला, अस्थिशोथ, संधिवात, इत्यादि में किया जाता हैं।

(24) नीम–गिलोय (*टिनोस्पोरा कॉर्डीफोलिया*)

सामान्य नाम : गुडूची, अमवल्लरी (संस्कृत), अमृत गिलोय (हिन्दी), गुलबेल (मराठी), गिलोय, गिलव (राजस्थानी), गलो (गुजराती), इत्यादि।

वितरण : जालोर, बिकानेर, जोधपुर, पाली, अजमेर इत्यादि।

उपयोग– आयुर्वेद में गिलोय को शीतलक माना जाता है। इसका उपयोग पुरानी खांसी, बुखार, पित्त–विकार इत्यादि में काम में लेते हैं। मूत्र–विकार में गिलोय का उपयोग बंग भस्म व आंवले के रस के साथ किया जाता है। हथेली व पैरो के तलवों की जलन में गिलोय का उपयोग सितोपलादि चूर्ण, प्रवाल पिर्ष्ठी मिलाकर चंदन के शरबत के साथ करते हैं। यह सभी प्रकार के ज्वर जैसे मंद ज्वर, जीर्ण ज्वर, टायफाइड, मलेरिया के उपचार में प्रयुक्त करते हैं।

(25) सोनामुखी (*केसिया आंगस्टीफोलिया*)

सामान्य नाम : सेना, सनाय (हिन्दी), सोनामुखी (राजस्थानी), मार्कण्डी (संस्कृत), इंडियन सेन्ना (अंग्रेजी), नट की सेना (गुजराती), इत्यादि।

वितरण : जालोर, जोधुपर, अजमेर, बिकानेर, पाली, नागोर इत्यादि।

उपयोग–पत्तियों को सिरका के साथ मिलाकर त्वचा रोग में, हीना के साथ मिलाकर बालों की काली डाई में तथा विभिन्न बीमारियों जैसे पीलिया, अस्थमा, मलेरिया, बुखार, अपच, इत्यादि बीमारियों में प्रयोग करते है।

(26) सतावर (*स्पेरेगस रेसीमोसस*)

सामान्य नाम : शतावरी (संस्कृत), बहुसुता, इन्दवरी (हिन्दी), सतावर (सतावर), एसपेरेगस(अंग्रेजी) इत्यादि।

वितरण : जालोर, बाड़मेर, जोधपुर, पाली, सिरोही, अजमेर इत्यादि।

उपयोग– जड़ें मेधाकारक, जठराग्निवर्धक, पुष्टिदायक, नेत्रों के लिए हितकर, दूध बढ़ाने वाली, बलकारक एवं अतिसार, वात, पित्तरक्त तथा शोध दूर करने वाली तथा बलवर्धक टॉनिक, सेक्स टॉनिक, सत्रियों के लिए टॉनिक, ल्यूकोरिया तथा अनीमिया के उपचार हेतु दवाइयां, भूख न लगने तथा पाचन सुधारने हेतु टॉनिक, मानसिक तनाव से मुक्ति हेतु दवाइयों के निर्माण में प्रयोग किया जाता है।

मनुष्य की निरन्तर आवश्यकता बढ़ने जैसे ईंधन के लिए लकड़ी, तेल प्राप्त करने के लिए बीजों का उपयोग, गोंद प्राप्त करना, औषधीय व आर्थिक इत्यादि उपयोग के कारण पौधों की निरन्तर कटाई की जा रही है। इस लिए प्रकृति में इनकी संख्या निरंतर कम होती जा रही है एवं इनमें से कुछ जातियां विलुप्त प्रायः स्थिति में आ गई है। अतः इन पादपों को बचाने के लिए इनके संरक्षण के साथ–साथ नई पौध तैयार कर प्रकृति में पुररूस्थापित किया जाना चाहिए।

अचानकमार टाइगर रिजर्व की वनस्पति विविधता : संक्षिप्त परिचय

नितिषा श्रीवास्तव, अच्युता नन्द शुक्ला एवं अर्जुन प्रसाद तिवारी
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

अचानकमार टाइगर रिजर्व का नाम, अचानकमार वन्यजीव अभयारण्य के कोर जोन में स्थित एक गाँव के नाम पर पड़ा है। इस अभयारण्य की स्थापना वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972 के तहत सन 1975 में हुई। सन 2009 में इसे प्रोजेक्ट टाइगर रिजर्व के अंतर्गत टाइगर रिजर्व घोषित किया गया। अचानकमार टाइगर रिजर्व में बिलासपुर, मुंगेली और मरवाही के वन क्षेत्र शामिल हैं। अचानकमार टाइगर रिजर्व के मूल क्षेत्र में अचानकमार वन्य जीव अभयारण्य तथा बिलासपुर और मरवाही वन प्रभागों के कुछ क्षेत्र सम्मिलित है। अचानकमार टाइगर रिजर्व का कुल क्षेत्रफल 914.017 वर्ग किलोमीटर है। जिसमें से 626.195 वर्ग किलोमीटर कोर क्षेत्र तथा 287.822 वर्ग कि.मी. का बफर जोन शामिल है। कोर क्षेत्र के 629. 195 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को अचानकमार वन्य जीव अभयारण्य (551.552 वर्ग किमी) एवं बिलासपुर एवं मरवाही वन्य प्रभागों के आरक्षित क्षेत्रों (74. 63 वर्ग किमी) में पुनः विभाजित किया जा सकता है। अचानकमार वन्य जीव अभयारण्य का कोर क्षेत्र छत्तीसगढ़ के बिलासपुर जिले और बिलासपुर वन्य प्रभाग में आता है, ये सतपुड़ा पहाड़ियों के माइका रेंज में है। यह अमरकंटक का दक्षिणी क्षेत्र है जो नर्मदा और सोन नदियों का उद्गम स्थल है। यह हिंदुओं के लिए एक धार्मिक स्थान भी है। यह अभयारण्य मध्य प्रदेश के कान्हा टाइगर रिजर्व, बांधवगढ़ टाइगर रिजर्व, पेंच टाइगर रिजर्व, संजय नेशनल पार्क और फेन अभयारण्य एवं तदोबा अंधारी नेशनल पार्क, नवेगांव नेशनल पार्क, पेंच नेशनल पार्क, महाराष्ट्र और गुरु घासीदास नेशनल पार्क से जुड़ा हुआ है।

अचानकमार टाइगर रिजर्व सैलानियों के लिए हमेशा से एक आकर्षण का केंद्र रहा है। अमरकंटक, बांधवगढ़ आने वाले सैलानी अचानकमार टाइगर रिजर्व की सैर करना अवश्य पसंद करते है।

अचानकमार टाइगर रिजर्व जीव जंतुओं एवं वनस्पतियों से परिपूर्ण और समृद्ध हैं। यहाँ पर मुख्यतः साल (*सोरिया रोबुस्टा*), साजा (*टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा*), बीजा (*टेरोकार्पस मासूर्पियम*), धौड़ा (*एन्गीयोसिस लेटिफोलिया*), कुसुम (*सेलिकेरा ओलियोसा*), पदौर (*स्टीरियोस्पर्मम क्लेनॉयडिस*), कसई (*ब्रिडेलिया रेट्यूसा*), लेंडिया (*लेजरस्ट्रोइमिया पार्विफ्लोरा*), जामुन (*सिजाईजियम क्यूमिनी*), महुआ (*मधुका लोन्गिफोलिया* प्रभेद *लेटिफोलिया*), हल्दू (*हल्डिना कार्डिफोलिया*), और मूढ़ी (*मित्रागायना पार्विफ्लोरा*) आदि के वृक्ष पाये जाते है। वन्य जीवों में मुख्यतः बाघ, भालू, बार्किंग डीयर, चित्तीदार हिरण, गौर, तेंदुए, जंगली बिल्ली, जंगली कुत्ते, हाइना, साही, सियार, चार सींग वाले मृग और माउस हिरण आदि पाये जाते है। यद्यपि इनमें से कुछ जानवर अभी यहां दिखाई नहीं देते है, फिर भी यहाँ के घने जंगल बाघ के लिए एक आदर्श वासस्थान प्रस्तुत करते है। गिद्ध और माउस डियर जो समान्यतः अन्य अभयारण्यों या संरक्षित क्षेत्रों में देखने को नहीं मिलते है यहा आसानी से देखे जा सकते है। हालांकि यहाँ पर भी इनके आवास संकुचित होते जा रहे हैं। जिसका मुख्य कारण बढ़ती जनसंख्या की बढ़ती हुई मांग है। वे मांगे जो मुख्यतः इन्हें प्रभावित करती है वे है– लकड़ियाँ, चरागाह, ईंधन आदि।

अचानकमार टाइगर रिजर्व के कोर क्षेत्र में बसे गावों को अन्यत्र बसाने की आवश्यकता है। अचानकमार टाइगर रिजर्व अचानकमार–अमरकंटक बायोस्फियर रिजर्व का भाग है। अचानकमार टाइगर रिजर्व एक प्रस्तावित टाइगर रिजर्व–गुरुघासी दास राष्ट्रीय उद्यान से भी जुड़ा है। भिन्न–भिन्न संरक्षित क्षेत्रों के आपस में जुड़े होने का सबसे बड़ा लाभ जीन तथा जीन समूहों की अदला–बदली है। जो की उत्तम कोटि के गुणों वाली नस्लों के उत्पादन में सहायक है। ये नयी पीढ़ी अपने जनकों से कई मामलो में बेहतर सिद्ध हो सकते है।

अचानकमार टाइगर रिजर्व में औषधीय पेड़–पौधों की बहुत सी प्रजातियाँ पायी जाती है। जैसे – बैचंडी, तीखुर, काली हल्दी, सफेद और काली मूसली, वान हल्दी, किओकन्द, जंगली प्याज, चित्रक, सटवारी, आदि। यहाँ से इन औषधियों का संग्रह प्रतिबंधित है।

अचानकमार टाइगर रिजर्व में मुख्यतः तीन प्रकार के वन पाए जाते हैं –

(अ) साल वन – यह कम लहरदार पहाड़ियों, पहाड़ियों के निचले हिस्सों, ढलानों और समतल क्षेत्रों में फैले होते है। साल वनो के शीर्ष मंजिले में पाये जाने वाली वनस्पतियाँ है – साजा (टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा), बीजा (टेरोकार्पस मार्सुपियम), धौड़ा (*एन्गीयोसिस लेटिफोलिया*), कुसुम (*सेलिकेरा ओलियोसा*), पदौर (*स्टीरियोस्पर्मम क्लेनॉयडिस*), कसई (*ब्रिडेलिया रेट्यूसा*), लेंडिया (*लेजरस्ट्रोइमिया पार्विफ्लोरा*), जामुन (*सिजाईजियम क्यूमिनी*), महुआ (*मधुका लोन्गिफोलिया* प्रभेद *लेटिफोलिया*)आदि

• मध्य स्तर में पाई जाने वाली वनस्पतियाँ – आंवला (*फायलेन्थस इम्बिलिका*), तिनसा (*डेस्मोडियम ओझेनेन्से*), बरंगा (*केडिया कैलिसिना*), अचार (*बुचानानिया लेन्जन*), तेंदु (*डायोस्पोरस मिलानोजाइलोन*), तोंदरी (*कैसेरिया टोमेनटोसा*), शेहरा (*बाहुनिया डायवेरिकाटा*), अमता (*बाहुनिया मालाबारिका*), रोली (*माल्लोटस फिलिपेन्सिस*), बेल (*ऐजेल मारमेलोस*), धामन (*ग्रीविया टिलिफोलिया*), गरारी (*क्लिसेन्थस कोल्लिनस*), जमरासी (*कैसिनी ग्लूका*), कारी (*सैकोपिटेलम टोमेन्टोसम*), करोंदा (*कैरिसा स्पाइनेरम*), गमरी (*गैमिलिना अरबोरिया*), फेटरा काला(*तमिलनाडिया उलिगीनोसा*), सलाई (*बोसवेल्लिया सेर्राटा*) इनके अतिरिक्त कुछ अन्य पादप जातियां।

• सबसे निचले स्तर में पाये जाने वाले पौधे – बन–रहर (*फ्लेमिन्गीया सेमिअलाटा*), चिंड (*फोनिक्स एक्वालिस*), धवई (*वुडफोर्डिया फ्रुटिकोसा*), नील (*इंडिगोफेरा कैसियोडिस*), मरोड़फली (*हेलिक्टेरस आईसोरा*), हरसिंगार (*निक्टेन्थस अरबोर ट्रिस्टीस*), कुरची (*होलारेह्ना प्यूबेसेन्स*), मोहती(*एकिलेप्सीस एस्परा*), और सतावर (*एस्परेगस रेसिमोस्स*), कालबांसा (*कोलिब्रोकिया अपोजिटिफोलिया*), चीरा (*थिमिडा क्वाडरिवेल्वीस*), कुसुल (*हेटरोपोगोन कोन्टार्टस*), चीर (*इम्पेराटा सिलेन्ड्रीका*), (*यूलालियोप्सीस बाइनाटा*) और भरभूसी (*इराग्रास्टिस अमाबिलिस*), (*डेन्ड्रोकैलेमस स्ट्रीक्टस*) माहुल (*बाहुनिया वाहली*), पलासबेल (*ब्यूटिया सुपर्बा*), रामदातुन (*स्माइलैक्स ग्वानेन्सिस*),पैनर (*कोम्बीरेटम डिकैन्ड्रम*), केओन्ती (*वेन्टीलागो माडरास्पाटाना*)।

(ब) मिश्रित वन – साल, साजा, धौड़ा, तेंदु, कर्रा, आंवला, बेल, अचार, बीजा, बिरंगा, तिनसा, धोमन, कसाई, रोहन, गरारी, धोबिन जामुन, महुआ, मोखा, कलाम, गमरी, जमरासी, अमता, केओलरी, कचनार, थौर, लेंडीया, भौरमल, केकेस, सलाई, कुल्लू, मनीफल, बेल, खुरची, मैदालकरी, पलास, हरसिंगार, कसाई, अमलतास, खैर, घोंट, भिलवा, फेटरा, करोंदा, धवई, हरसिंगार, मरोड़फल, गुरशुखरी, चिंड, पलसबेल, नसबेल, रामदातुन, दूधी, अमरबेल, गुरार, कुसल, भारभूसी, चिरा, चिर, आदि।

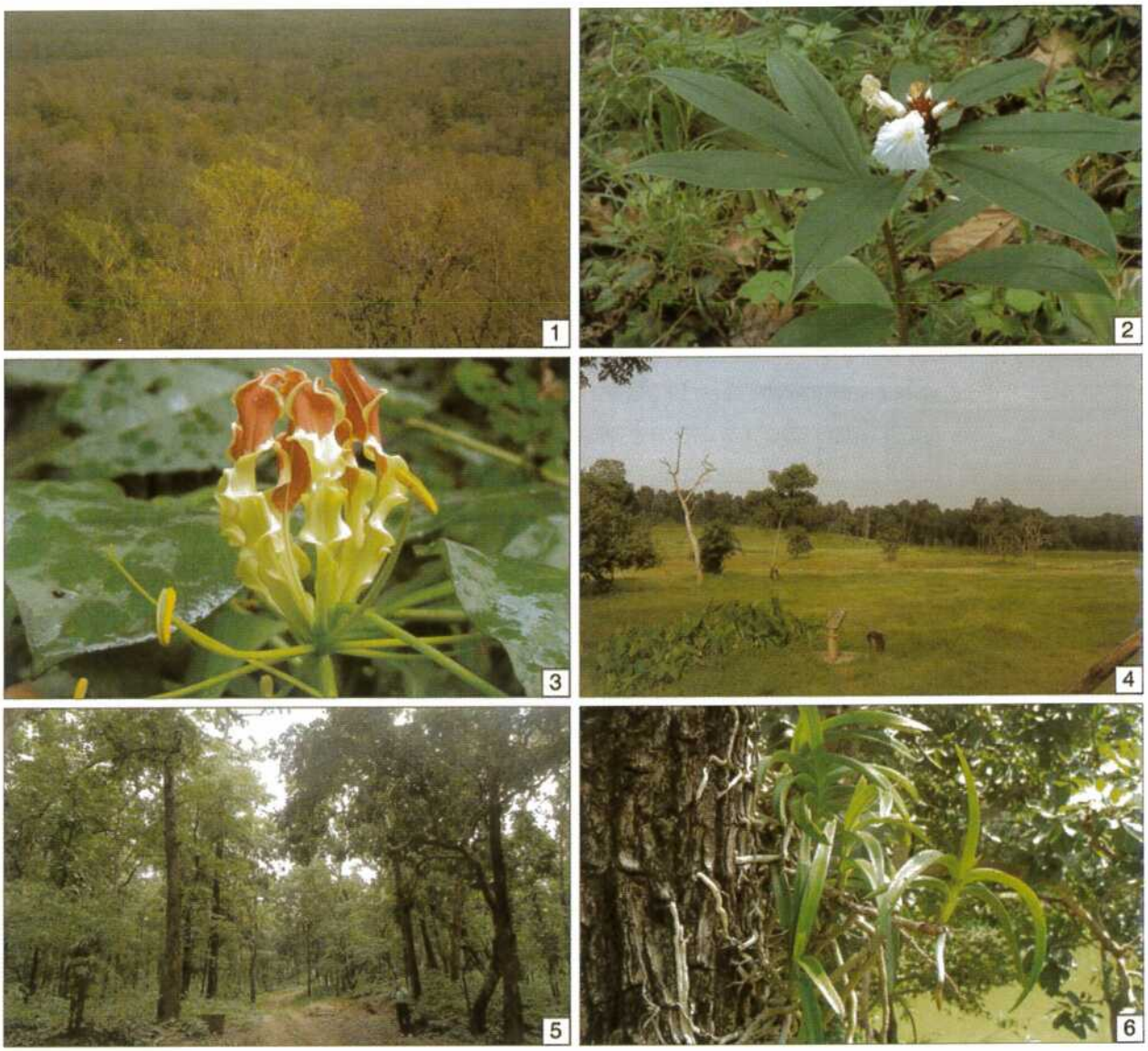

1. मिश्रित पर्णपाती वन, 2. *कास्टस स्पीसियोसस*, 3. *ग्लोरीओसा सुपर्बा*, 4. घास का मैदान, 5. साल वन, 6. *वांडा टैसेलाटा*

(स) बांस के जंगल– अचानकमार टाइगर रिजर्व में अच्छी गुणवत्ता वाले बांस बहुतायत में पाये जाते हैं।

प्रबंधन – अचानकमार टाइगर रिजर्व के लिए प्रबंधन उद्देश्यों में प्रमुख हैं– मानवजनित नकारात्मक प्रभावों से टाइगर रिजर्व की सुरक्षा सुनिश्चित करना, संरक्षित क्षेत्र की वैज्ञानिक, आर्थिक, सौंदर्य, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक मूल्यों को बनाए रखने के लिए बाघों की व्यवहार्य आबादी को बनाए रखना, प्रभावी गश्त के माध्यम से शिकार के दबाव को कम करना, वैज्ञानिक, आर्थिक, सौंदर्य, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक मूल्यों के लिए अचानकमार टाइगर रिजर्व का संरक्षणय इन–सीटू और एक्स सीटू संरक्षण के माध्यम से अनुसंधान गतिविधियों के आधार पर रिजर्व के वैज्ञानिक प्रबंधन को सुनिश्चित करना, वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 और अन्य संबंधित कानूनों, नियमों और विनियमों क्षेत्र के लिए प्रासंगिक के अनुसार वन्य जीवन कानूनों के उल्लंघन के खिलाफ लोगों को शिक्षित करना तथा अचानकमार टाइगर पारिस्थितिकी तंत्र और आसपास रहने वाले लोगों के बीच बाघ संरक्षण के महत्व का एक बेहतर समझ पैदा करने के लिए संरक्षण शिक्षा गतिविधियों को बढ़ावा देना।

संकटग्रस्त पौधों का संरक्षण एवं संवर्धन : एक चुनौती–एक पहल

अम्बर श्रीवास्तव, शमीम अहमद एवं सुनील कुमार श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

भारत अपनी विविध पारिस्थितिक तंत्र की विशेषता व जैविक विविधता के कारण विश्व के 19 एवं एशिया के पांच जैव विविधता समृद्ध देशों में से एक है। भारत की वानस्पतिक विविधता के दर्शन मुख्य रूप से भारतीय उपमहाद्वीप के जैव विविधता उत्तप्त स्थल (बायोडायवर्सिटी हॉट स्पॉट्स) जैसे– हिमालय, पश्चिमी घाट, पूर्वोत्तर भारत, अंडमान द्वीप समूह (इंडो–बर्मा) तथा निकोबार द्वीप समूह (सूण्डालैंड) में होते हैं। वर्तमान समय में भारत से लगभग 48158 पादप जातियां ज्ञात हैं, जिनमें से लगभग 33 प्रतिशत पादप जातियां देश के लिए स्थानिक हैं। इनमें से भी ऐसी कई पादप जातियां हैं, जो अत्यन्त ही दुर्लभ व संकटग्रस्त क्षेणी में आती हैं। वर्तमान समय में औद्योगीकरण व मानव जनित कारणों से प्राकृतिक वास–स्थलों का निरन्तर क्षरण तथा इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन के कारण कई जातियां आज विलुप्ति की कगार पर आ खड़ी हुयी हैं तथा कुछ तो विलुप्त घोषित भी कर दी गयी हैं। ऐसी स्थिति में इन जातियों का संरक्षण वर्तमान समय का एक अत्यन्त ज्वलंत विषय बन गया है। इस क्षेत्र में प्रयास स्वरुप भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून ने कुछ पादप प्रजातियों के संरक्षण व संवर्धन के सफल प्रयास किये गए है जिसके माध्यम से उन जातियों को उनके प्राकृतिक वास–स्थल में संरक्षित करने के साथ साथ उनका परा–स्थान संरक्षण भी किया गया है।

संकटग्रस्त जातियां : वह पादप जातियां जिनकी वन्य अवस्था में अप्रत्याशित रूप से कमी पाई जाती है उनको संकटग्रस्त जातियों में गिना जाता है। वन्य अवस्था में कमी आने के कई कारण हो सकते हैं, जैसे कि अत्यधिक दोहन, प्राकृतिक वास स्थल का क्षरण अथवा अवक्रमण, अन्य देशीय जातियों द्वारा अतिक्रमण, पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन के साथ साथ जातियों की मंद प्रजनन क्षमता भी एक कारण है। इन सब कारणों से भारत अपनी अमूल्य वानस्पतिक विविधता को खोता जा रहा है तथा समय रहते इस पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता आ पड़ी है।

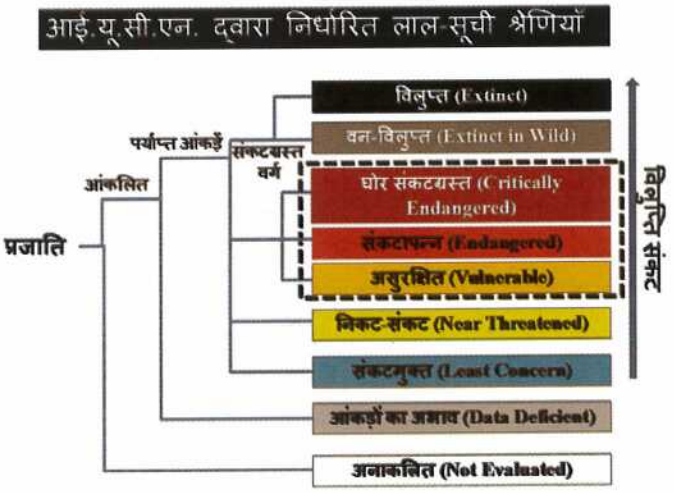

संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण हेतु सन् 1948 में अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (आई.यू.सी.एन.) का गठन किया गया था, जिसका मुख्य उद्देश्य जैव विविधता के संरक्षण के साथ–साथ संकटग्रस्त प्रजातियों के संरक्षण स्थिति के अनुसार सूची तैयार करना है। अ०प्र०स०स० (आईयूसीएन) द्वारा संकटग्रस्त जातियों की सूची समय–समय पर प्रकाशित की जाती है, जिससे उन जातियों के संरक्षण के प्रति चेतना फैलायी जा सके तथा उनके संरक्षण के समुचित उपाय किये जा सकें। इसके अतिरिक्त संघ के द्वारा संकटग्रस्त जातियों के निर्धारण के लिए उचित दिशा निर्देश भी जारी किये हैं, जिनमे समय–समय पर संशोधन होता रहता है। जाति की संरक्षण स्थिति (कंजर्वेशन स्टेटस) के आधार पर आईयूसीएन की लाल सूची में हर जाति को नौ में से एक श्रेणी में रखा जाता है। यह श्रेणीकरण उनकी कुल आबादी, आबादी में गिरावट के दर, भौगोलिक विस्तरण के क्षेत्र और उनके (मानवीय गतिविधियों द्वारा) छितरे जाने के क्षेत्र की हद के आधार पर किया जाता है। आईयूसीएन द्वारा निर्धारित यह श्रेणियाँ इस प्रकार हैं–

1. जाति का कोई भी सदस्य जीवित नहीं बचा है–विलुप्त (एक्सटिंक्ट)
2. जाति वन्य अवस्था से पूर्णतः नष्ट हो चुकी है तथा बचे हुए सदस्य मात्र पर–स्थान संरक्षण में जीवित हैं–वन–विलुप्त (एक्सटिंक्ट इन वाइल्ड)
3. जाति वन्य अवस्था में लुप्तप्राय स्थिति में है–घोर–संकटग्रस्त (क्रिटिकली ऐंडेनजर्ड)
4. जाति वन्य अवस्था में अत्यन्त संकटग्रस्त स्थिति में है–संकटापन्न (ऐंडेनजर्ड)
5. जाति वन्य अवस्था में अतिसंवेदनशील स्थिति में है–असुरक्षित (वल्नरेबल)
6. प्रजाति के निकट भविष्य में संकटग्रस्त होने की सम्भावना है–निकट–संकट(नियर थ्रेटेंड)
7. वर्तमान समय में जाति पर कोई विशेष संकट नहीं है तथा जाति विस्तृत क्षेत्र में पाई जाती है–संकटमुक्त (लीस्ट कंसर्न)
8. जाति के बारे में आंकड़ों की कमी से उसकी संरक्षण स्थिति और संकट का अनुमान नहीं लगाया जा सकता–आंकड़ों का अभाव (डाटा डेफिसिएंट)
9. जाति की संरक्षण स्थिति का आईयूसीएन के संरक्षण मानदंड पर आँकलन अभी नहीं किया गया है–अनाकलित (नॉट एवालुएटेड)

आईयूसीएन द्वारा निर्धारित उपर्युक्त नौ श्रेणियों में से मात्र तीन श्रेणियाँ ही संकटग्रस्त श्रेणी के अंतर्गत आती हैं, यथा–घोर–संकटग्रस्त, संकटापन्न तथा असुरक्षित।

किसी भी प्रजाति के संकटग्रस्त होने के पीछे मुख्य रूप से निम्नलिखित कारणों का प्रमुख प्रभाव रहा है, जैसेः

1. अनियंत्रित अथवा अत्यधिक दोहन : कई जातियों को उनके औषधीय अथवा शोभनीय गुणों के कारण निरन्तर दोहन किया जाता है। अरक्षणीय दोहन के कारण कई जातियां आज संकटग्रस्त अथवा विलुप्ति की कगार पर आ खड़ी हैं जैसे क्षीरकाकोली (*लिलियम पोलिफिलम*), जटामांसी (*नार्डोस्टेकिस जटामांसी*), कुथ (*सौसुरिया कॉस्टस*), गुग्गल (*कॉमिफोरा व्हिटाई*), ममीरा (*कॉप्टिस तीता*) आदि असंख्य औषधीय पौधे अनियंत्रित दोहन के फलस्वरूप आज संकटग्रस्त श्रेणी में हैं। इसके साथ ही शिंदल माकड़ी(*फ्रेरिआ इंडिका*), घटपर्णी(*निपेंथस खासिआना*), *साइकस* जातियां, लेडी स्लिपर आर्किड (*पैफिओपेडिलम* जातियां) आदि मुख्य रूप से अपने शोभनीय गुणों के कारण वनों से लाकर बाजारों में बेच दी जाती हैं, जिससे इनकी संख्या में भारी गिरावट आ रही है। अनियंत्रित दोहन पर रोक लगाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय जैव विविधता सम्मेलन (सी. बी. डी.) द्वारा निर्देश पारित किये गए हैं जिसमें जाति के दोहन, व्यापार तथा उससे प्राप्त लाभ का न्यायसंगत नियम सम्मिलित हैं।

2. वास स्थल क्षरण अथवा अवक्रमणः वर्तमान समय में अंधाधुंध औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के कारण प्राकृतिक वास स्थलों में परिवर्तन के कारण जातियों के संकटग्रस्त होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। वन अग्नि द्वारा प्राकृतिक वास–स्थलों का नाश एवं अवक्रमण (डीग्रेडेशन) होने के कारण भी कई जातियां संकटग्रस्त हैं। कुछ पादप जातियां तो मात्र विशिष्ट वास स्थानों पर ही पाई जाती हैं तथा ऐसी जातियों के वास स्थान नष्ट हो जाने अथवा अवक्रमण हो जाने से उस जाति की संख्या में अप्रत्याशित रूप से कमी आ जाती है, चूँकि ऐसी जातियां कुछ खास स्थानों पर ही पनप

शैक्षणिक संस्थानों आदि के द्वारा पौधों को प्राकृतिक आवास से भारी मात्रा में खोद लिया जाता है परन्तु उनका सही विधि से संरक्षण न हो पाने अथवा उनकी प्राकृतिक आवश्यकताओं की जानकारी न होने के कारण उसका वास्तविक संरक्षण नहीं हो पाता ऐसे में संरक्षण के स्थान पर उस पौधे का नाश ही होता रहा है। वन्य स्थानों से आवश्यकता से अधिक मात्रा में रोपण सामग्री का संग्रह किया जाना अथवा पौधों को समूल उखाड़कर लाना उस प्रजाति के लिए घातक साबित हुआ है। शोध संस्थानों द्वारा पादप विशेष के पादप रासायनिकी शोधों में माध्यमिक उपापचयी (सेकेंडरी मेटाबोलाइट्स) के अध्यन करने हेतु पादप अंगों का भारी मात्रा में संग्रह किये जाने की बात भी सामने आई है। इसके अतिरिक्त पादप संरक्षण सम्बन्धी ज्ञान के अभाव में एवं पादप विशेष की विशिष्ट आवश्यकताओं को न समझ पाने के कारण एकत्रित रोपण सामग्री का सही उपयोग नहीं हो पाता है।

किसी भी पौधे का परा–स्थाने संरक्षण करते समय निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए जैसेः

1. वन्य स्थानों से संवर्धन सामग्री एकत्रित करते समय मूल पादप को हानि न पहुंचाएं तथा उसके प्राकृतिक आवास को विकृत न करें।
2. जहाँ तक संभव हो उस प्रजाति के बीजों का आवश्यक मात्रा में ही संग्रह करें।
3. मूल पादप से कलमों (कटिंग्स) का संग्रह करने की आवश्यकता पड़ने पर पौधे की पांच से दस प्रतिशत से अधिक कलमों का संग्रह न करें तथा संग्रह के बाद कटे स्थान पर कवकनाशक (फंगिसाइड) दवा का लेप अवश्य कर दें।
4. वन्य क्षेत्रों से संकटग्रस्त जातियों के नवीन पौध (सैप्लिंग्स) को यथासम्भव न संग्रह करें तथा परिपक्व पौधों को तो कतई न संग्रह करें।
5. किसी पौधे का पर–स्थान संरक्षण करने से पूर्व उस पौधे से सम्बंधित जानकारी अवश्य एकत्रित कर ले तथा उसको संरक्षित करने के समुचित प्रबंध कर लेने के उपरांत ही उसकी संवर्धन सामग्री का संग्रह करें।

देखा गया है कि कई बार उपरोक्त बिंदुओं का पालन न करे जाने के कारण जाने–अनजाने में वैज्ञानिक वर्ग द्वारा भी संकटग्रस्त पौधों का क्षरण किया गया है। कई जातियां वैज्ञानिक शोधों व दोहन के कारण भी कम होती जा रही हैं जिसपर समय रहते वैज्ञानिक वर्ग को सचेत हो जाना चाहिए। पादप सर्वेक्षण एवं अन्वेषण के साथ ही भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का उद्देश्य दुर्लभ एवं संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण का भी रहा है जिसके लिए संस्थान पूरी तत्परता से कार्य कर रहा है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के 11 क्षेत्रीय केंद्रों में अपने अपने स्तर से स्थानीय पादप प्रजातियों का संरक्षण किया जा रहा है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून में गत वर्षों से भारत की कुछ ऐसी ही संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण का सफल प्रयास किया जा रहा है। जिसमें कई दुर्लभ व संकटग्रस्त जातियों का विधिवत पर–स्थाने संरक्षण करने के साथ साथ उनके स्व–स्थाने संरक्षण के प्रयास भी किये गए हैं। संस्थान में हिमालय प्रदेश की दुर्लभ व संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण के साथ साथ भारत के विभिन्न स्थानों से लायी गयी संकटग्रस्त जातियों के संरक्षण के प्रयास भी किये जा रहे हैं। वर्तमान समय में संस्थान के वानस्पतिक उद्यान में संरक्षित पादप प्रजातियों में *इंकारविलिआ इमोडी* (बिग्नोनिऐसी), *कैटामिक्सिस बैक्कारोयडेस* (एस्टरेसी), *पिट्टोस्पोरम इरियोकार्पम* (पिट्टोस्पोरेसी), *मिजोट्रोपिस पेलिटा* (फैबेसी), *फ्रेरिआ इंडिका* (एस्क्लेपिडेसी), *सेलेजिनेला अडंका* (सेलेजिनेलेसी), *ऐरिमोस्टेकिस सुपर्बा* (लैमिऐसी), *नेपेंथिस खासिआना* (नेपेंथिऐसी), *जैस्मिनम पार्केराइ* (ओलिऐसी), *ट्रेकिकार्पस टेकिल* (पाल्मेसी), *साइकस बेडोमाई* (साइकेडेसी), *करकुमा केसीआ* (जिंजीबरेसी) आदि कई दुर्लभ व संकटग्रस्त जातियों को संरक्षित किया गया है तथा इसके समुचित संवर्धन द्वारा अन्य संस्थानों को भी उपलब्ध कराया जा रहा है। हिमालय क्षेत्रीय संकटग्रस्त जातियों का यथासम्भव संवर्धन करके उनके प्राकृतिक आवास में रोपित कर स्व स्थाने संरक्षण के प्रयास भी किये गए हैं।

संरक्षण की आवश्यकता : किसी राष्ट्र की वानस्पतिक विविधता उस राष्ट्र की अमूल्य धरोहर है, जिसका हर संभव प्रयास से संरक्षण किया जाना चाहिए। किसी देश अथवा क्षेत्र विशेष की वानस्पतिक समृद्धता के आधार पर उसका अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आंकलन किया जाता है, जो कि गौरव का विषय है। स्थानिक जातियां जो कि एक राष्ट्र विशेष की परिधि में ही सीमित होने के कारण उस राष्ट्र का अंतर्राष्ट्रीय स्तर प्रतिनिधित्व करती हैं उनको हर संभव प्रयास से संरक्षित किया जाना चाहिए। जिस प्रकार शोध द्वारा पौधों से नित्य नवीन औषधीय गुणों की खोज की जा रही है ऐसे में किसी प्रजाति को उपेक्षित रखना उचित नहीं। किसी भी प्रजाति की विलुप्ति मात्र एक प्रजाति विशेष का लोप नहीं है बल्कि विकास क्रम की एक सम्पूर्ण कड़ी का नाश है जिससे भविष्य के शोधकार्य प्रभावित हो सकते हैं। अन्ततोगत्वा –

"नानौषधिभूतं जगति किंचिद् द्रव्यमुपलभ्यते तां तां युक्तिमर्थं च तं तमभिप्रेत्य" अर्थात् संसार में कोई भी द्रव्य औषधि गुणों से रहित नहीं है।

शैवालों का आर्थिक महत्व

प्रतिभा गुप्ता
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

शैवाल का पादप जगत में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। शैवाल अति सूक्ष्म एक कोशिकीय से विशालकाय बहुकोशिकीय होते हैं। यह स्वच्छ जल, झीलों, तालाबो, गर्म जल के झरनों, समुद्र, नम मृदा, पेड़ों के तनों, चट्टानों, जल के तल पर उपस्थित जड़ पर पाये जाते हैं। कुछ शैवाल अधिपादप के रूप में दूसरे पौधों पर उगते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ शैवाल जलीय जंतुओं पर जैसे विशालकाय मछलियों, कछुओं की पीठ, घोंघों पर उगते हैं तथा कुछ जंतुओं के शरीर के अंदर पाये जाते है जैसे क्लोरेला नामक शैवाल जंतु हाइड्रा के शरीर के अंदर पाये जाते हैं । कुछ शैवाल पर परजीवी के रूप में भी पाये जाते हैं । शैवालों पर विविध अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि शैवाल मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं ।

शैवालों का आर्थिक दृष्टिकोण से महत्व निम्नवत है।

शैवाल प्राथमिक उत्पादन के रूप में : शैवाल प्रकाश संश्लेषी होने के कारण जलीय पर्यावरण की प्रथम उत्पाद रचनाएं हैं, जो जलीय जंतुओं को खाद्य एवं ऊर्जा प्रदान करते हैं एवं कार्बन डाई आक्साइड लेकर ऑक्सीजन प्रदान करते हैं ।

शैवाल भोजन /खाद्य के रूप में : जन संख्या में लगातार हो रही वृद्धि के कारण उत्पन्न खाद्य समस्या के निवारण में शैवाल अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि शैवालों का पोषक मान एवं प्रति इकाई क्षेत्र उपज, अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक है। शैवाल की लगभग 100 से अधिक जातियाँ जैसे हरी, नील – हरित, भूरी एवं लाल शैवाल मनुष्य द्वारा खाद्य के रूप में प्रयोग की जाती है । जिनमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज एवं विटामिन (ए,बी,सी,डी) प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसी कारण इन्हें भोजन के रूप में उपयोग किया जाता है, जैसे *क्लोरेला, स्पाइरूलिना, मोनोस्ट्रोमा, अल्वा, कोडियम* इत्यादि। शैवाल पोरफाइरा की विभिन्न जातियां जैसे *पोरफाइरा अम्बलीकस* एवं *पोरफाइरा परफेक्टा* जापान एवं कुछ अन्य देशों में भोजन के रूप में प्रयोग की जाती है, इसके अरिरिक्त *ऐलेरिया, अल्वा, सारगासम, लेमिनेरिया* इत्यादि का प्रयोग शाक के रूप में किया जाता है । *लेमिनेरिया* नामक शैवाल में आयोडीन काफी मात्रा में होती है । इस शैवाल का सेवन करने से घेंघा रोग नहीं होता है । अल्वा को समुद्री सलाद भी कहते है, स्काटलैंड में *रोडीमेनिआ पामेटा* को तम्बाकू की तरह प्रयोग किया जाता है। हरित शैवाल क्लोरेला एवं नील–हरित शैवाल *स्पाइरूलिना* में प्रोटीन, वसा प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं । इसमें सभी प्रकार के आवश्यक अमीनों अम्ल घटक पाये जाते है । इसीलिए इनका उपयोग खाद्य विकल्प के रूप में किया जाता है । इनका उपयोग पेस्ट्री, सैंडविच, केक, चावल, आदि के साथ मिश्रित कर भोजन के रूप में किया जाता है । हरी शैवाल *क्लोरेला* का प्रयोग अंतरिक्ष यात्रा के दौरान प्रोटीन के रूप में भी किया जाता है । *सारगासम, मेक्रोसिस्टिस, लेमिनोरिया, फ्यूकस* एवं *ऐस्कोफिल्लम* आदि शैवालों का उपयोग विभिन्न प्रकार के समुद्र तटीय क्षेत्रों में पशुओं के चारे के रूप में किया जाता है तथा इनमें से कुछ शैवाल का उपयोग कभी–कभी पालतू पशुओं जैसे मुर्गी पालन, मछली पालन में भी भोजन के रूप में किया जाता है ।

शैवाल उद्योगों में : कुछ शैवाल में निश्चित प्रकार के रासायनिक तत्व पाये जाते हैं, जिनका उपयोग विविध उद्योगों में विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है, इनमें से कुछ मुख्य उत्पाद निम्नवत है ।

अगर–अगर : यह सूखी जेली के सदृश्य जटिल पॉलीसैकेराइड है, जो रोडोफायसी के सदस्य *जेलिडियम, ग्रेसिलेरिया, जिगार्टिनियन, फिल्लोफोरा,* आदि शैवालों से अगर–अगर नामक पदार्थ प्राप्त होता है । इसका उपयोग प्रयोगशालाओं में संवर्धन माध्यम तैयार करने में किया जाता है । इसका उपयोग ताप तथा ध्वनिरोधक को बनाने के लिए भी किया जाता है । इसके अतिरिक्त अगर –अगर का प्रयोग सौंदर्य प्रसाधनों कागज, उद्योगों, कपड़ा उद्योगों, बेकरी, कृत्रिम रेशे, चमड़ा, सूप, चटनी, जेली आइसक्रीम एवं औषधियों में भी किया जाता है ।

डायटम मृदा एवं उसका उपयोग : डायटम की कोशिका भित्ति पर सिलिकन डाइक्साइड प्रचुर मात्रा में पाया जाता है अतः जीवित एवं मृत डायटम तथा उनके जीवाश्म समुद्र की गहराई में धीरे –धीरे एकत्रित होते जाते हैं तथा गहरी चट्टानों के रूप में डायटोमोशियस मृदा के रूप में कांच एवं पोर्सिलेन निर्माण में, बॉयलर एवं भट्टी में ऊष्मा रोधी के रूप में, धातु प्रलेप, वर्निश, पालिश, टूथपेस्ट के निर्माण के लिए, अपघर्षक के रूप में, द्रव नाइट्रोगिलसरीन के अवशोषक के रूप में भी किया जाता है ।

ऐल्जीनेट : इसकों समद्री भूरी एवं लाल शैवालों जैसे *ऐलेरिया, लेमिनेरिया* के मध्य स्तर एवं प्राथमिक भित्ति से प्राप्त किया किया जाता है । ऐल्जीनेट का उपयोग रबर उद्योगों, कपडे की छपाई, प्लास्टिक उद्योग अग्नि निरोधक वस्त्र, पेंट, उद्योग, आइसक्रीम, टाइपराटर के रोलर, सौंदर्य प्रसाधनों, औषधि के निर्माण, आदि में उपयोग किया जाता है । इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग कृत्रिम रेशों बनाने तथा शल्य चिकित्सा के समय रक्त प्रवाह रोकने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है ।

कैरेजिनिन : इसे *कॉन्ड्रस क्रिस्पस,* आयरिश मोस, *यूक्यूमा* नामक लाल शेवालों की कोशिका की कोशिका भित्ति से प्राप्त किया जाता है । इसका उपयोग टूथ पेस्ट, श्रृंगार प्रसाधनों, पेंट, जूतों की पालिश, शैम्पू, प्रिटिग, चमड़ा उद्योग, ब्रेकरी उद्योग, औषधियों के निर्माण आदि में किया जाता है ।

कृत्रिम ऊन बनाने एवं अन्य उद्योग में : जापान में फियोफायसी वर्ग की शैवाल सारगासम से कृत्रिम ऊन का निर्माण किया जाता है । बहुत से शैवालों जैसे *लेमिनेरिया, फ्यूकस* इत्यादि से अनेक रसायनों जैसे आयोडीन, ब्रोमीन, ऐसीटोन के निर्माण करने में प्रयोग किया जाता है। जिनका उपयोग विभिन्न उद्योगों में होता है ।

खनिज तत्वों के स्त्रोत के रूप में : शैवाल में विभिन्न प्रकार के खनिज तत्व पाये जाते हैं इनमें मुख्यतः भूरे शैवाल *लेमिनेरिया, फ्यूकस* से आयोडीन लाल शैवाल *रोडोमेनिया, पॉलीसाइफोनिया* से ब्रोमीन तथा *ऐलेरिया एवं मैक्रोसिल्टिस* से सोडा एवं पोटाश प्रचुर मात्रा में प्राप्त किये जाते हैं ।

शैवाल का औषधीय उपयोग : कुछ शैवालों से प्रति जैविक प्राप्त किये जाते है जैसे प्रतिजैविक *क्लोरेनीन* को हरी शैवाल *क्लोरेला* से तैयार किया जाता है, जो कुछ जीवाणुओं की वृद्धि प्रभावित कर देती है । इसी प्रकार *पोलीसाइफोनिया* से प्राप्त जीवाणु प्रतिरोधी तत्व जो ग्राम–अग्राही एवं ग्राम – ग्राही जीवाणुओं से रक्षा करते हैं। डायटम *निश्चिया पेलिया* से प्राप्त प्रति जैविक *इश्चिरेकिया कोलाई* से रक्षा करते है । भूरे शैवालों में आयोडीन घटक प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। इसलिए इसका उपयोग घेंघा की औषधी बनाने में किया जाता है। *कारा* और *नाइट्रेला* नामक शैवालों का उपयोग जलाशयों में मच्छरों को मारने तथा मलेरिया उन्मूलन के लिये किया जाता है। *फ्यूकस* नामक शैवाल से फ्यूकोइडी नाम की औषधी प्राप्त की जाती है, जो रूधिर का थक्का बनने से रोकती है।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं उर्वरक के रूप में शैवाल : सायनोजीवाणु जैसे *नॉस्टॉक, ऐनाबिना* इत्यादि वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पौधों के काम आने योग्य यौगिक से परिर्वतित कर देते हैं, जिसके कारण भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। यदि धान के खेत में इस प्रकार की नील–हरित शैवाल को डाल दिया जाए, तो उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। विश्व के अधिकांश समुद्र तटीय देशों में भूरे शैवालों का उपयोग उर्वरक के रूप में किया जाता है, क्योंकि भूरे शैवालों में पोटैशियम, कैल्शियम, फास्फोरस तथा अन्य सूक्ष्म तत्व पाये जाते हैं, जिन खेतों में कैल्शियम की कमी होती है, वहां कारा का उपयोग किया जाता है।

जैव ईंधन के रूप में शैवाल : शैवाल का उपयोग जैव ईंधन के उत्पादन में किया जाता है क्योंकि कुछ शैवालों में तैलीय पदार्थ प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं एवं तीव्रता से जैवभार का निर्माण करते हैं, जैसे *बोट्रियोकॉकस ब्राउनाई, क्लोरेला, क्रिपाथिकोडीनियम कॉहनाई, सिलिन्ड्रोथीका, निश्चिया, फियोडेक्टाइलम ट्राइकोन्यूम, साइजोकाईट्रकम टेट्रयेनमिस सुइसिआ* इत्यादि ।

शैवाल, एक्वाकल्चर चारे के रूप में : शैवाल पोषक तत्वों से परिपूर्ण होते है अतः इनका पशुओं के चारे के रूप में उपयोग किया जाता है। आजकल शैवाल का उपयोग चारे के रूप में मुख्यतः डिम्बक के संवर्धन एवं छोटी मछलियों, जंतु प्लवक को बढ़ाने के लिए तथा अन्य जलीय अपरिपक्व जीवों की वृद्धि के लिए इन्हें पोषक तत्वों के रूप में प्रयोग किया रहा है। अधिकतर एक्वाकल्चर में प्रयोग की जाने वाली शैवाल हैं –*क्लोरेला, टेट्रासेलमि, आइसोक्राइसिस, पवलोवा, फियोटेक्टाइलम कीटेट्रासेलमिस, नेनोक्लोरापसिस, स्केलिटोनिमा* एवं *थलेसिओसिरा*। सूक्ष्म शैवाल जैसे *स्पाइरूलिना, क्लोरेला* का भी प्रयोग इस श्रृंखला में अन्य जीवों जैसे बिल्ली, कुत्ता, मछलियों, सजावटी मछलियों, चिड़ियों, मुर्गी पालन, गाय, इत्यादि के चारे के रूप में इन शैवालों का उपयोग किया जाता है । बहुत सारे व्यापार समूह एक्वाकल्चर चारे का निर्माण करते हैं, जिनका उपयोग जीवधारियों के जल संवर्धन में किया जाता है । इस चारे में मुख्यतः *क्लोरेला* या *स्पाइरूलिना* अथवा दोनों का मिश्रण प्रयोग किया जाता है ।

वाहितमल के निस्तारण में : वाहितमल में ऑक्सिजन की कमी होती है लेकिन इसमें कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में पाये जाते हैं । अतः इसके ऑक्सीकरण के लिए अनेक शैवालों की सहायता ली जाती है । वाहितमल का ऑक्सीकरण शैवालों द्वारा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया से प्राप्त ऑक्सीजन से कराया जाता है जिससे वाहितमल में उपस्थित यौगिकों का विघटन खनिज अवयवों में हो जाता है, जिसका उपयोग खाद्य के रूप में किया जाता है जैसे *क्लोरेला, क्लैमाइडोमोनास, यूग्लीना* इत्यादि ।

हानिकारक प्रभाव : शैवाल के अत्यधिक उपयोग होते हुए भी कुछ शैवाल हमारे लिये हानिकारक भी होते हैं, जिनका विवरण निम्नवत हैं।

जल संग्रहण में संक्रमण : घरों के टैंक में भी शैवाल प्रचुर मात्रा में वृद्धि करते है जैसे *नॉस्टक, ऐनाबिना, वॉलवोक्स* कुछ डायटम इत्यादि ये शैवाल जल को छानने की प्रक्रिया को भी बाधित करता है और इन शैवालों के मर जाने के कारण जल के स्वाद को भी प्रभावित करते है एवं जल से गंध आने लगती है ।

जल प्रस्फुटन : कभी –कभी कुछ शैवाल जैसे *माइक्रोसस्टिस, क्रोकोकस, लिनबिया* इत्यादि की वृद्धि इतनी अधिक होती है कि पूरा जलाशय हरा, हरा–नीला दिखने लगता है, जिसे जल प्रस्फुटन कहते हैं। सामान्यतः सायनोजीवाणु तथा डायनोफायसी के सदस्य जल प्रस्फुटन करते हैं, जिससे जल में ऑक्सीजन की कमी होने के कारण जल में गंध आने लगती है एवं पानी पीने योग्य नहीं रहता है। यह जलीय जंतुओं के लिए भी हानिकारक है तथा मछलियों व पशुओं की इस कारण मृत्यु भी हो जाती है। कभी–कभी शैवाल जल प्रस्फुटन से मोटी पर्त बना लेते है, जिसके कारण जहाज की गति में भी अवरोध उत्पन्न हो जाता है ।

मनुष्य में रोग :*माइक्रोसिस्टिस* एवं *ऐनाबिना* के द्वारा संक्रमित जल मनुष्यों में पेट से संबंधित रोगों को उत्पन्न करते है। *जिम्नोडीनियम ब्रेविस* नामक शैवाल से संक्रमित जल श्वास से संबंधित रोग उत्पन्न करते है। *लिनबिया* की कुछ जातियों से त्वचा से संबंधित रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

शैवाल परजीवी के रूप में : कुछ शैवाल जैसे *सिफेल्यूरोस वाइरिसेन्स* चाय की पत्तियों पर परजीवी के रूप में पाये जाते है एवं चाय पर गेरूई रोग उत्पन्न कर चाय उद्योग को हानि पहुँचाते हैं । इस प्रकार हम देखते है कि शैवाल विभिन्न रूपों में हमारे जीवन पर प्रभाव डालते हैं वो चाहे औषधियां हों या खनिज तत्व, उर्वरक हो या जैव ईंधन, सभी रूपों में शैवाल हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं ।

धुआं, गंदगी और शोर ।
तोड़ रहे जीवन की डोर ।।
हरे भरे जंगल कटवाकर
सोचो क्या मिल जाता है ?
एक तुच्छ स्वार्थ पूर्ति से
कितना कुछ खो जाता है।।

उभयोद्भिद : ब्रायोफाइटा समूह के लिए प्रस्तावित एक नवीन हिन्दी नाम

कृष्ण कुमार रावत
सी एस आई आर–राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

ब्रायोफाइटा वनस्पति जगत के नन्हें पौधों के उस समूह का नाम है, जो पानी में जीवन की उत्पत्ति के पश्चात प्रथम स्थलीय पादप के रूप में धरती पर विकसित हुये एवं आज भी पाये जाते हैं। प्रथम स्थलीय पादप होने के कारण इन पौधों में जलीय एवं स्थलीय जीवन हेतु आवश्यक दोनों प्रकार के लक्षणों का समागम देखने को मिलता है। इसी कारण इन पौधों को 'पादप जगत के उभयचर' भी कहा जाता है। इन पौधों के समूह का वैज्ञानिक नाम 'ब्रायोफाइटा' दो शब्दों 'ब्रायो' एवं 'फाइटा' से मिल कर बना है जिनके अर्थ क्रमशः 'मॉस' एवं 'पादप–पौधे' हैं तथा इस प्रकार ब्रायोफाइटा' शब्द का अर्थ 'मॉस के पौधे' होता है । अतः 'ब्रायोफाइटा' शब्द तकनीकी सटीकता के साथ इन पौधों के मुख्य लक्षण एवं व्यवहार को प्रदर्शित करता है।

वहीं दूसरी ओर हिन्दी में लंबे समय से ब्रायोफाइटा के लिए 'हरितोद्भिद' शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। इस शब्द के सर्वप्रथम प्रयोग की सही जानकारी उपलब्ध नहीं है। साथ ही इस शब्द में तकनीकी विसंगति भी विद्यमान है। हरितोद्भिद शब्द दो शब्दों 'हरित' एवं 'उद्भिद' से मिलकर बना है जिनके अर्थ क्रमशः 'हरे' एवं 'पौधे' हैं अर्थात 'हरितोद्भिद' शब्द का शाब्दिक अर्थ 'हरेपौधे' हुआ जो कि सामान्य रूप से सभी पौधों के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। अतः ये नाम किसी भी प्रकार से ब्रायोफाइटा समूह के लिए तकनीकी रूप से उपयुक्त नहीं है।

नाम के इस दोष को दूर करने के लिए ब्रायोफाइटा समूह के लिए 'उभयोद्भिद' नाम प्रस्तावित है। यह शब्द 'उभय' एवं 'उद्भिद' शब्दों से मिलकर बना है। यहाँ 'उभय' शब्द 'उभयचर' से लिया गया है वहीं दूसरी ओर 'उद्भिद' शब्द का अर्थ 'पादप–पौधे' हैं। इस प्रकार उभयोद्भिद शब्दका शाब्दिक अर्थ 'उभयचर पौधे' होता है, जो की तकनीकी सटीकता के साथ इन पौधों के विशेष लक्षण एवं व्यवहार को सार्थक रूप से प्रकट करता है, अतः उभयोद्भिद शब्द को 'हरितोद्भिद' शब्द के स्थान पर हिन्दी में प्रयोग किया जाना प्रस्तावित है।

पुराना अस्वीकृत नाम– 'हरितोद्भिद' = हरित (हरे). उद्भिद (पौधे)

प्रस्तावित नवीन नाम– 'उभयोद्भिद' = उभय (उभयचर). उद्भिद (पौधे)

भारत में उभयोद्भिद मुख्य रूप से हिमालयी क्षेत्रों एवं पश्चिमी घाट में पाये जाते हैं जहाँ इनके लिए ठंडी, छायादार एवं नमीयुक्त पर्यावरणीय दशायें सरलता से उपलब्ध होती हैं। साथ ही कुछ मात्रा में ये मध्य भारत के पर्वतीय क्षेत्रों, गांगेय मैदानों, पूर्वी घाट, राजस्थान के शुष्क मैदानों एवं अंडमान द्वीप समूह आदि में भी पाये जाते हैं, किन्तु इन क्षेत्रों में इनकी विविधता एवं वितरण अपेक्षाकृत शुष्क परिस्थितियों के कारण अधिक समृद्ध नहीं है। पारिस्थिकीय एवं पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने में महत्वपूर्ण ये पौधे विविधता के मामले में पुष्पी पौधों के बाद दूसरे स्थान पर आते हैं। पादप विकास, मृदा संवर्धन, जल संचयन, जलवायु परिवर्तन के आंकलन आदि में इन पौधों की महत्ता को देखते हुये इन पौधों की विविधता एवं संरक्षण पर अधिकाधिक शोध की आवश्यकता है। साथ ही इन पौधों के संरक्षण में आमजन की रुचि एवं भागेदारी बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि इन पौधों पर हो रहे शोध को आमजन तक पहुंचाया जाय। चूंकि भारत में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा एवं राजभाषा हिन्दी है अतः उभयोद्भिदों पर हो रहे शोध को हिन्दी में अधिक से अधिक प्रकाशित किए जाने की आवश्यकता है। ऐसे में हिन्दी में सटीक तकनीकी शब्दों की आवश्यकता को देखते हुये इस प्रयास के माध्यम से आशा की जाती है कि निकट भविष्य में भी न सिर्फ उभयोद्भिदों अपितु अन्य अल्पज्ञात पादपों से संबन्धित हिन्दी तकनीकी शब्दों के विकास एवं सुधार पर कार्य होगा।

निज भाषा उन्नति अहे, सब उन्नति को मूल,
बिन निज भाषा–ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल – भारतेन्दु हरिश्चंद्र

प्रो. वाई भारद्वाज (1895–1963): प्रख्यात शैवालविद्

आर. के. गुप्ता एवं सुदीप्त कुमार दास
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

प्रो. यज्ञवालक्य भारद्वाज का जन्म 13 अगस्त 1895 को जबलपुर जत्तन (अविभाजित पंजाब) में हुआ था। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा डी.ए.वी. स्कूल से करने के बाद उन्होंने राजकीय कॉलेज लाहौर से स्नातक किया। 1918 में उन्होंने स्नातकोत्तर की उपाधि ली। इसके बाद वे राजकीय कॉलेज लाहौर के वनस्पति विज्ञान विभाग में डिमॉन्सट्रेटर के पद पर नियुक्ति किए गए। उसके बाद उन्हें संत जॉन कॉलेज आगरा में तत्पश्चात् वनस्पति विज्ञान विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में 1922–23 में सहायक प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति दी गई।

प्रो. भारद्वाज एक प्रख्यात वनस्पतिज्ञ थे। प्रारम्भ में प्रो. शिवराम कश्यप ने उन्हें वनस्पति शोध पर प्रशिक्षण दिया। उसके बाद वह शैवाल शोध के प्रति आकर्षित हुये। उस समय देश में शैवाल शोध पर आधारित कोई भी कार्यक्रम संचारित नहीं था। इन्होंने विश्व प्रसिद्ध शैवाल वैज्ञानिक प्रो. एफ.ई. फ्रिश्च से प्रभावित होकर उनके साथ क्वीन मेरी कॉलेज लंदन (जिसे उस समय ईस्ट लन्दन कॉलेज के नाम से जाना जाता था) में 1931–33 तक स्वच्छ जलीय शैवालों पर शोध किया। जिससे उन्हें डॉक्टरेट की उपाधि मिली। इंग्लैंड से वापस लौटने के बाद 1933 में उन्हें बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त कर दिया गया तथा अपने लम्बे कार्यकाल के बाद 1955 को वे सेवानिवृत हुये।

लगभग इसी समय प्रो. एम. ओ. पी. आयंगर ने भी महान् शैवालविद् प्रो. एफ.ई. फ्रिश्च के मार्गदर्शन में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की थी। भारत वापस लौटने के बाद 1933 ई0 में प्रो. अयंगर ने मद्रास विश्वविद्यालय तथा प्रो. भारद्वाज ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में शैवाल शोध केन्द्र स्थापित किया। परिणाम स्वरूप दोनों संस्थान की शैवाल प्रयोगशाला भारतीय शैवालों पर शोध कार्य के प्रमुख केन्द्र के रूप में स्थापित हुई एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाई। प्रो. भारद्वाज को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की शैवाल प्रयोगशाला का जनक भी माना जाता है।

प्रो. भारद्वाज का शैवाल शोध विश्व प्रसिद्ध रहा है। इन्होंने 1940 के भारतीय विज्ञान सम्मेलन के वनस्पति भाग के अध्यक्षीय भाषण में नील हरित शैवाल शोध पर अपने विचार रखे, जिन्हें विज्ञान जगत में काफी सराहना मिली। वर्ष 1928–1963 तक विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल में इनके करीब 12 शोध पत्र नील हरित शैवाल एवं हरे शैवालों के वर्गिकी विवरण पर प्रकाशित हुए तथा प्रो. भारद्वाज ने 22 नई जातियों *स्पैलियोपोगोन कश्यपी* भारद्वाज (*Spaleopogon kashyapi* Bharadwaja), *साइटोनीमा मालावियेनसीस* भारद्वाज (*Scytonema malaviyaensis* Bharadwaja) *ड्रैपंरनलडियोपसिस इंडिका* भारद्वाज (*Draparnaldiopsis indica* Bharadwaja), *साइटोनीमा डाइलाटैटम* भारद्वाज (*Scytonema dilatatum* Bharadwaja) *साइटोनीमा डाइलाटैटम* रूप *मेजर* भारद्वाज (*Scytonema dilatatum* f. *major* Bharadwaja), *साइटोनीमा गीटलेरी* भारद्वाज (*Scytonema geitleri* Bharadwaja), *साइटोनीमा गीटलेरी* प्रभेद *टेनयूइस* भारद्वाज (*Scytonema geitleri* var. *tenuis* Bharadwaja), *साइटोनीमा गुएनेनसीस* प्रभेद *प्रोलीफेरा* भारद्वाज, (*Scytonema guyanense* var. *prolifera* Bharadwaja), *साइटोनीमा हॉफमेनी* प्रभेद *क्रासा* भारद्वाज (*Scytonema hofmanni* var. *crassa* Bharadwaja) *साइटोनीमा आयंगरी* भारद्वाज (*Scytonema iyengari* Bharadwaja) *साइटोनीमा मिराबिले* रूप *माइनर* भारद्वाज (*Scytonema mirabile*

f. *minor* Bharadwaja), *साइटोनीमा मल्टीरामोसम* प्रभेद *सीलोनिका* भारद्वाज (*Scytonema multiramosum* var. *ceylonica* Bharadwaja), *साइटोनीमा डाइलाटैटम* रूप *माइनर* भारद्वाज (*Scytonema dilatatum* f. *minor* Bharadwaja) *साइटोनीमा पाश्चेरी* भारद्वाज 1934 (*Scytonema pascheri* Bharadwaja) *साइटोनीमा सीडोग्वाइनेंस* भारद्वाज 1934 (*Scytonema pseudoguyanense* Bharadwaja 1934), *साइटोनीमा सीडोहॉफमेनी* भारद्वाज 1934 (*Scytonema pseudohofmanni* Bharadwaja) *साइटोनीमा सैलेरिएन्स* प्रभेद *इंडिका* भारद्वाज 1934 (*Scytonema saleyeriense* var. *indica* Bharadwaja) *साइटोनीमा सिम्पलेक्स* भारद्वाज (*Scytonema simplex* Bharadwaja), *साइटोनीमा टोनीपोथ्रीक्वाइडिस* रूप *टेरिएस्ट्रीस* भारद्वाज (*Scytonema tolypothrichoides* f. *terrestris* Bharadwaja), *टोलीपोथ्रिक्स नोडोसा* भारद्वाज (*Tolypothrix nodosa* Bharadwaja), *टोलीपोथ्रिक्स मैग्ना* भारद्वाज (*Tolypothrix magna* Bharadwaja) एवं *नॉस्टोकॉपसिस रेडिएन्स* भारद्वाज (*Nostochopsis radians* Bharadwaja) के अन्वेषण किये गये। उन्होंने नील हरित शैवाल के अवास्तविक शाखन तथा शीथ के प्रारूप के ऊपर भी शोध किया। प्रो. फ्रिश्च उनके कार्य से इतने काफी प्रभावित हुए कि *ड्रेपरनलडियोप्सीस इंडिका* (कीटोफोरेल्स, क्लोरोफाइटा) जो कि स्वच्छ जलीय शैवाल है, जिसे जाति प्रो. भारद्वाज द्वारा खोजा गया, उसका चित्र उन्होंने अपनी किताब (दि स्ट्रक्चर एंड रीपरोडक्शन ऑफ दि एल्गी के खण्ड– 1, 1935, कैम्ब्रीज विश्वविद्यालय प्रेस) के प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित किया।

प्रो. भारद्वाज हमेशा अपने सहयोगियों को वनस्पति शास्त्र के अलग अलग क्षेत्रों में शोध के लिय उत्साहित करते रहे, उन्हें वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए फेलो ऑफ दि लिनियन सोसायटी, फेलो ऑफ दि नेशनल इन्टीट्यूट ऑफ सांइस, फेलो ऑफ दि इंडियन बॉटनिकल सोसायटी एवं फेलो ऑफ दि इंडियन एकेडमी ऑफ सांइस के लिए भी चुना गया। 25 मार्च 1965 को उत्तराखंड के नैनीताल में इस शैवालविज्ञ की मृत्यु हुई। आज भी उनके द्वारा संग्रह किये गये विभिन्न शैवाल, छायाचित्र, रेखाचित्र, वनस्पति विज्ञान विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में सुरक्षित है, जो शैवाल विज्ञान पर शोध करने वालों के लिये हमेशा ही ज्ञानवर्धक सामग्री के साथ ही इस महान विभूति का योगदान शोध छात्रों, शिक्षकों और वैज्ञानिकों के लिए प्रेरणा श्रोत रहेगा।

पर्यावरण ऐसा समझो, जैसा तन का चीर ।
अलग हो गया धरती तो समझो जैसे आत्मा बिन शरीर ।

जारवा : एक पूर्वालोकन

विनोद मैना एवं रमेश कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर

भारत की मुख्य भूमि के कोरोमण्डल तट से लगभग 1200 किमी. दूर 6^0– 14^0 उत्तर देशांतर तथा 92^0– 94^0 पूर्व अक्षांश पर बंगाल की खाड़ी में स्थित अंडमान एवं निकोबार के द्वीप समूह विभिन्न शोधकर्त्ताओं, मानवशास्त्रीयों, राजनीतिज्ञों, भूगोलवेताओं एवं प्रशासकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते रहे हैं। यहाँ कुल 319 छोटे –बड़े द्वीपों से बना तथा लगभग 8,290 वर्ग किमी. के क्षेत्रफल मे फैला हुआ यह द्वीप समूह भौगोलिक एवं जैविक– विविधिता की दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है, मानव विज्ञान की दृष्टि से भी बहुत रोचक है। पूर्व में अरकन्योमा तथा सुमात्रा पर्वत श्रृंखलाओं से आपस में जुडा यह क्षेत्र वर्तमान में 10^0 अक्षांश पर समुद्री जल मार्ग को दो समूहों अंडमान एवं निकोबार में विभाजित करता है। भूमध्य रेखा के निकट होने के कारण यहाँ की जलवायु आमतौर पर उष्ण (22^0 – 35^0 से.) तथा आर्द्रता (लगभग 80 प्रतिशत) रहती है। वर्ष के अधिकांश समय यहाँ अत्यधिक वर्षा होती है, जिसके कारण यहाँ पर उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन पाये जाते हैं, जिसमें लगभग 2000 देशी तथा 500 प्रवासी पादप जातियाँ इन द्वीपों की प्राकृतिक वानस्पतिक सम्पदा की सम्पन्नता को दर्शाती हैं, जिसमें पुष्पीय पौधों के 140 कुल एवं लगभग 700 वंशों में 14 प्रतिशत जातियाँ ऐसी हैं, जो स्थानिक हैं तथा 40 प्रतिशत पादप जातियाँ ऐसी हैं, जो भारत की मूख्य भूमि पर नहीं पायी जाती हैं लेकिन पड़ोसी दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों (म्यांमार, थाईलैण्ड, मलेशिया एवं सुमात्रा) में पायी जाती हैं ।

इन द्वीपों में पायी जाने वाली आदिम जन– जातियाँ जारवा, नोर्थ–सैंटेनिली, ओन्गी, ग्रेट – अंडमानी, शोम्पेन एवं निकोबारी है, जो हजारों साल से इन द्वीपों में बसे हुये हैं तथा यहाँ के इन सदाबहार वनों व आसपास के परिवेश मे इस तरह रच–बस गये है कि इन्हें इससे अलग करके यहाँ की जैव विविधिता का अध्धयन अथवा उनका संरक्षण करना असंभव है। इसी विषय को लेकर समय–समय पर विभिन्न वनस्पतिज्ञों, भूवेत्ताओं, जीव वैज्ञानिकों के द्वारा इन द्वीपों में शोध कार्य किये गये और उन्होंने यहाँ से एकत्रित नमूनों एवं अनुभवों को अपने शोध–पत्रों मे प्रकाशित कर यहाँ की वनस्पतियों, आदिम जन–जातियों के आहार– व्यवहार तथा वनों पर आश्रित जन समुदायों तथा उनकी सहभागिता से विश्व को अवगत करवाया।

प्रस्तुत लेख में इन आदिम जन –जातियो के कदमतल्ला, मध्य अंडमान स्थित एक जन जाति समुदाय "जारवा" के तीन विभिन्न प्राकृतवासों से उनके रहन सहन, खान–पान से सम्बंधित लिए गये आकड़ों को वर्णित किया गया है, उपयोग में लिये जाने वाले अधिकतर वनस्पतियाँ तटीय या

कच्छ वनों में पायी जाती हैं, जिनका वानस्पतिक नाम, कुल, स्थानिक नाम, उपयोग तथा सूचना–दाता का नाम भी उपलब्ध कराया गया है जो निम्न प्रकार है–

प्राकृतवास 1– फाई–फाई होचा बोथा

(12^0: 22′ : 50.2″ – 12^0: 41′ : 37.7″ उत्तर से 92^0: 42′ : 10.9″– 92^0: 46′ : 31.0″ पूर्व, समुद्री तल से ऊंचाई 51.0 मी.) ।

1. *सिम्बीडियम अलोइफोलियम* (आर्किडेसी) : स्थानिक नाम : 'चोखोव', अधि–पादप शाक

उपयोग : जारवा समुदाय के लोग, विशेषकर महिलायें इसके पुष्प का देह सुंदरीकरण में (आभूषण की तरह) प्रयोग करते हैं।

सूचना–दाता : डुंग डुंग (स्त्री) ।

2. *आइपोमिया पेस–कापरे* (कॉनवुलवोलेसी), स्थानिक नाम : 'हबूल', मांसल पत्ति युक्त लता, गुलाबी आर्कषक पुष्प

उपयोग : पत्तियाँ तथा पुष्प श्रृंगार में प्रयोग करते हैं।

सूचना–दाता : चाडू (स्त्री) ।

3. *डाइसोजाइलम मालाबारिकम* (मेलीएसी), स्थानिक नाम 'इही', वृक्ष

उपयोग : छाल का काढा जोड़ों के दर्द व सूजन तथा फल पेट दर्द निवारक के रुप में प्रयोग करते हैं ।

सूचना–दाता : चोहनवा (स्त्री) ।

4. *सरबेरा मनघास* (एपोसाइनेसी), स्थानिक नाम : 'ओखरड', वृक्ष

उपयोग : फलों को बच्चे गेंद के रुप मे प्रयोग करते हैं ।

सूचना–दाता : तालेता (पुरुष) ।

5. *बेरिंगटोनिया एशियाटिका* (बेरिंगटोनिएसी), स्थानिक नाम : 'मनीयान', वृक्ष

उपयोग : फूल श्रृंगार में तथा फल व बीज सुअर के भोजन के रुप में प्रयोग करते हैं। पत्तियाँ मछली पकडने में प्रयोग की जाती हैं।

सूचना–दाता : चोहनवो (स्त्री)।

6. *गुटारडा स्पीसिओसा* (रुबीएसी), स्थानिक नाम : 'थेक्थेट', वृक्ष

उपयोग : फूल श्रृंगार में प्रयोग करते हैं।

सूचना–दाता : डुंग डुंग (स्त्री) ।

7. *हारनेंडिया पेल्टेटा* (हार्नेडिऐसी), स्थानिक नाम : 'थेलेबा–थोडोलो', वृक्ष

उपयोग : फूल श्रृंगार में प्रयोग करते है।

सूचना–दाता : टन्गावोह (स्त्री) ।

प्राकृतवास 2 : हू–ले–ले फाई–फाई

(12^0:22′: 50.2″ – 12^0: 41′ : 37.7″ उत्तर से 92^0: 42′ : 10.9″ – 92^0: 46′ : 37.0″ पूर्व, समुद्री तल से ऊचाई – 52.0 मी.) ।

8. *केलिसटेंथस आब्लोंगिफोलियस* (फाइलेंथिऐसी), स्थानिक नाम : 'मीऐलो', वृक्ष

उपयोग : फूलों का मकरंद मधुमक्खियों को भोजन के रूप में देते हैं।

सूचना–दाता : इंकातेवेदेय (स्त्री) ।

9. *फाइकस ग्लोमेरटा* (मोरेसी), स्थानिक नाम : 'बेहला', वृक्ष

उपयोग : फल चिड़ियाओं को भोजन के रूप में देते हैं एवं इसके फलों से श्रृंगार भी करते हैं।

सूचना–दाता : तवहले (स्त्री) ।

10. *नेस्टिस पलाला* (कोनारीऐसी), स्थानिक नाम : 'थीकुल–थंगुम', लता

उपयोग : फूलों को श्रृंगार व पारम्परिक पोशाक के रुप में प्रयोग करते हैं।

सूचना–दाता : इंकातेवेदेय (स्त्री) ।

11. *केनेरियम इयुफाइलम* (कोनारीएसी), स्थानिक नाम : 'पोने', वृक्ष

उपयोग : वृक्ष से प्राप्त टैनिन को सलाई पत्तियों में लपेट कर मसाल के रूप में प्रयोग करते हैं ।

सूचना–दाता : तेऊमे (पुरुष)।

12. *तेबरनेमोन्टाना आल्टरनिफोलिया* (एपोसाईनेसी), स्थानिक नाम : 'तनधवीन', झाड़ी

उपयोग : फूलों को श्रृंगार एवं पारंपरिक पोशाक के रूप में प्रयोग करते हैं।

सूचना–दाता : ओथाले (पुरुष)।

13. *ग्रीविया केलोफिला* (टीलीएसी), स्थानिक नाम : 'खट्टा फल', वृक्ष

उपयोग : फलों को सुअर के भोजन हेतु प्रयोग किया जाता है।

सूचना–दाता : ओलेय (पुरुष) ।

14. *ओरोजाईलम इंडिका* (बिगनोनिऐसी), स्थानिक नाम : 'थाड़', वृक्ष

उपयोग : जारवा जनजाति के लोग इसके तने की लकड़ी या बांस से बने खोखले पात्र (उह) में शहद एकत्रित करते हैं।

सूचना–दाता : थंगलूम (पुरुष) ।

प्राकृतवास 3 : होचाबूथा बथापो चड्डा

(12^0: 22′ : 50.2″ – 12^0: 41′ : 37.7″ उत्तर तथा 92^0: 42′ : 10.9″ – 92^0: 46′: 31.0″ पूर्व, समुद्री तल से ऊचाई : 52.0 मी.) ।

15. *अमोमम एक्यूलेटम* (जिन्जीबेरेसी), स्थानिक नाम : 'लीये', बहुवर्षीय शाक

उपयोगः जारवा लोग शहद एकत्रित करने के लिए पत्तियों को मुंह में चबा कर मधुमक्खियों के छत्ते पर फूंकते है, जिससे मधुमक्खियाँ भाग जाती है।

सूचना–दाता : तेन्चे (पुरुष) ।

16. *केलेमस अंड्मानिकस* (अरेकेसी), स्थानिक नाम : 'थाले', लतानुमा ताड़ जाति

उपयोग : तना व पत्तियों से पारंपरिक झोपड़ियाँ तैयार करते हैं।

सूचना–दाता : चाडू (स्त्री) ।

17. *डेरिस स्केन्डेंस* (लेग्यूमिनोसी), स्थानिक नामः 'बनगेड़', लता

उपयोग : छाल से टैनिन (टूलू) निकाल कर मधुमक्खियों को भोजन के रूप में तथा मधुमक्खी के छत्ते से प्राप्त मोम को प्राप्त टैनिन के साथ मिलाकर गरम करके पैंटिग में प्रयोग करते है।

सूचना–दाता : लापा (स्त्री) ।

18. *एन्टाडा रीडीई* (माइमोसीएसी), स्थानिक नाम : 'छींग', लता

उपयोग : बीजों को भूनकर खाते हैं।

सूचना–दाता : तावहले (स्त्री) ।

19. *माइरीस्टीका अंड्मानिका* (माइरस्टीकेसी), स्थानिक नाम : 'तांगलेंग', वृक्ष

1. अंडमान में जारवा जनजाति के लोगों का समूह, 2. जारवा जनजाति की महिलायें फूलों से श्रृंगार आवरण बनातीं हुई, 3. एवं 4. जारवा समुदाय के लोग वनस्पतियों का प्रयोग करते हुये, 5. बांस से बने खोखले पात्र 'उह' में शहद एकत्र करते हुये, 6. एवं 7. वनस्पतियों को दैनिक जीवन में प्रयोग में लाते जारवा ।

उपयोग : फलों को सुअर को भोजन के रूप में देते है। तने का रस तीर के फाल पर लगाते है तथा पत्ते शिकार के पेट में भर देते हैं ताकि जल्दी सड़े नहीं और रक्त स्राव भी रूक जाये ।

सूचना–दाता : तलेता (पुरुष) ।

20. *ड्रेसीना अंगुस्टिफोलिया* (ड्रेसीनेसी), स्थानिक नाम : 'चीकबक', झाड़ी

उपयोग : फलों को सुअर के भोजन के रूप में प्रयोग करते हैं।

सूचना–दाता : तलेता (पुरुष) ।

21. *डोनेक्स केनिफोर्मेस* (मरेंटेएसी), स्थानिक नाम : 'लीटांग', घास

उपयोग : अधपके फलों की माला बनाकर पहनते हैं।

सूचना–दाता : टेटे (पुरुष) ।

उपरोक्त सभी आंकड़े जारवा आदिम जनजाति के कदमतल्ला, मध्य अंडमान में स्थित मात्र तीन प्राकृतवासों से लिए गए है, यह एक शोध का विषय है कि जब मात्र तीन जगहों से इतने आंकड़े प्राप्त हुए हैं तो अनुमान लगाएं बाकी बहुत सारे प्राकृतवासों से कितने आंकड़े प्राप्त हो सकते है। आज इस प्राकृतिक धरोहर को संजोकर रखने की आवश्यकता है, शोध के साथ–साथ हमें यह भी निश्चित करना होगा कि किसी भी आदिम जनजाति को उनके प्राकृतवास में किसी भी प्रकार की हानि ना पहुंचाए या उन्हें तंग ना करें। उन्हें उनके प्राकृतिक वास में स्वतंत्र रहने दे साथ ही साथ उनके क्षेत्र मे आखेट या मछली नहीं पकडने पर पूर्ण प्रतिबंध हो तथा प्राकृतिक सम्पदा का दोहन ना हो तभी इस जनजाति का एवं उनके अनूठे ज्ञान का संरक्षण संभव होगा ।

धरती, वायु पर्वत, पानी
पर्यावरण के अंग।
इन सबकी रक्षा करें
जीव जन्तुओं के संग।।

ओड़िशा के आदिवासियों का एक बहु उपयोगी वृक्ष – साल (*शोरिया रोबस्टा*)

हरीश सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा

ओड़िशा (उड़ीसा) भारत के जनजातिय बाहुल्य राज्यों में से एक है। जिसमें लगभग 62 आदिवासी जातियाँ सदियों से निवास करतीं आ रहीं हैं। ये आदिवासी लोग अधिकतर जंगलों के नजदीक रहने के कारण स्थानीय जंगल के विभिन्न पेड़–पौधों का उपयोग अपने दैनिक जीवन में करते हैं। जिनमें साल का वृक्ष प्रमुख संसाधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। साल का वानस्पतिक नाम *शोरिया रोबस्टा* तथा कुल डिप्टेरोकारपेसी है। साल मूल रूप से भारतीय उपमहाद्वीप से नेपाल, बांग्लादेश और म्यांमार में पाया जाता है। भारत में यह असम, मेघालय, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, बंगाल, ओडिशा, आंध्र प्रदेश के अलावा हरियाणा में शिवालिक हिल्स और मध्य भारत के पूर्वी विंध्य और सतपुड़ा पर्वतमाला में पाया जाता है। यह 30 से 35 मीटर ऊंचा तथा 2 से 2.5 मीटर व्यास का उप पर्णपाती वृक्ष होता है। इसकी पत्तियॉ अंडाकार, आयताकार, 10–25 से.मी लंबी और 5–15 से.मी चौड़ी तक होती है।यह नम स्थानों में सदाबहार तथा शुष्क स्थानों में पर्णपाती होता है, इसकी पत्तियॉ फरवरी से अप्रैल के बीच में झड़ जाती है तथा अप्रैल और मई तक फिर नई पत्तियॉ आ जाती है। नये पेड़ की छाल चिकनी तथा पुराने की छाल काली वा खुरदरी होती है। इसके फूल श्वेताभ, फल पंखेदार तथा बीज मट्मैले रंग के होते हैं। साल ओड़िशा राज्य के विभिन्न भागों में सुगमता से पाया जाने वाला एक प्रमुख वृक्ष है, इसको राज्य के विभिन्न भागों में भिन्न– भिन्न क्षेत्रीय नामों जैसे साल, साड़, रेंगाल, सार्गी, सोर्गी, सलवा, साखू और साकवा के नाम से जाना जाता है। इस पेड़ के विभिन्न भागों (जड़, छाल, लकड़ी, राल, पत्तियां, फूल, फल, बीज, तेल) का उपयोग यहाँ के आदिवासी लोगों द्वारा अपने दैनिक जीवन में दवा, खाद्य, तेल, पशु चिकित्सा, थालियॉ तथा कटोरियॉ, दातून, डिटर्जेंट, भवन निर्माण, घरेलू–कृषि उपकरण, धूप, कीटनाशक, पैकिंग, चारा, ईधन, जैव–उर्वरक, एवं धार्मिक कार्य हेतु निम्न प्रकार से किया जाता है।

औषधि के रूप में –बीज के पाउडर (एक चम्मच) को पानी के साथ दिन में दो बार तीन दिनों के लिए पेचिश, अतिसार–दस्त के उपचार में लिया जाता है। नये पौधे के जड़ का पेस्ट बनाकर बुखार के उपचार में एक दिन में दो बार दिया जाता है। इसके तेल को माथे पर लगाने से सिर दर्द

1. पत्तियां सूखाते हुए, 2. पत्तियों को जोड़ते हुए, 3–4. जुड़ी पत्तियों को सुखाते हुए, 5–6. पत्तियों के प्लेट व कटोरियां बेचते हुए, 7. दातून बेचते हुए, 8. दॉतून करते हुए आदिवासी।

चारा हेतु– साल की ताजी पत्तियों को तथा थाली, कटोरियों के रूप में प्रयोग के उपरांत बकरी और गाय–बैल द्वारा खाया जाता है। इसके बीज से तेल निकालने के बाद बचे केक को मवेशियों और मुर्गियों के लिए एक चारे के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

जैव–उर्वरक के रूप में –इसके सूख कर गिरे हुए पत्तियों को आदिवासी लोग अपने खेतों में जैव–उर्वरक के रूप में इस्तेमाल करते हैं। सूखी पत्तियों को गाय, बैल, भेंस तथा बकरियों के नीचे बिछाते हैं और बाद में इसे उर्वरक के रूप में खेतों में प्रयोग करते हैं।

धार्मिक महत्व–हिंदू परंपरा में साल वृक्ष को विष्णु का प्रतिरूप माना जाता है। शास्त्रों में उल्लेख के अनुसार गौतम बुद्ध का जन्म व मृत्यु भी इस पेड़ के नीचे ही हुई थी। इसीलिए साल के पेड़ की यहाँ के बौद्ध और हिंदू समाज द्वारा पूजा की जाती है। साल की लकड़ी को भी पूजा और धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयोग किया जाता है। जनजातिय समुदाय के लोग साल के पत्ते के अंदर थोड़ी सी हल्दी व चावल रखकर शादी का निमंत्रण देते हैं।

इस प्रकार से ओड़िशा के आदिवासिय क्षेत्रों में साल के विभिन्न भागों का कई तरह से प्रयोग होने के कारण इसका लगातार दोहन किया जाता है, इसीलिए इसकी खेती/वृक्षारोपण कर इनकी संख्या को बढ़ाया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। इसके बीजों को सूखे, नम और रेतीली दोमट मिट्टी मे बोने से तथा स्टेम कटींग से इसका प्रसारण कर सकते हैं। इसके पौधों को नर्सरी में तैयार कर उन्हें गाँवों के आसपास के खाली पड़ी बंजर भूमि तथा नजदीक के जंगलों में प्रत्यारोपित कर इसका वृहत प्रसारण करना चहिए। इसके पूर्ण विकसित पेड़ से ही इसके विभिन्न भागों का व्यवस्थित तरीके से एकत्रीकरण करके उनका सतत प्रयोग करना चहिए जिससे आदिवासी लोगों के दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के नये स्रोत के साथ साथ, स्थानीय पारिस्थितिक संतुलन भी बना रहे। इस वृक्ष के सभी उपयोगी भागों का रासायनिक विश्लेषण कर इसके खाद्य, औषधीय, कीटनाशक, मच्छर नाशक गुणों का वैज्ञानिक सत्यापन कर नये खाद्य, औषधि, जैव कीटनाशक या जैव–मच्छर नाशक के स्रोत का पता लगा कर क्षेत्र के आदिवासियों के आर्थिक विकास की सम्भावनाओं को खोजने का प्रयास भी किया जाना चाहिए।

हिम शिखर, निर्झर, नदी–पथ, चीड़ वन,
मुक्त के लिये बन्धन हो गये ।
दृश्य से छन कर समाये आंखों में
अखियन से मन में बसे, मन हो गये ।।

– जगदीश गुप्त

असम के अल्पज्ञात खाद्य उपयोगी पादप

कंगकन पगाग, सुरेन्द्र कुमार शर्मा, ए. के. साहू एवं विपिन कुमार सिन्हा[1]
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, औद्योगिक अनुभाग, कोलकता
[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकता

असम, भारत के उत्तर– पूर्वी भाग में स्थित है। यह 24°44′ उत्तरी अक्षांश से 27°45′ उत्तरी अक्षांश तथा 89°41′ पूर्वी देशांतर से 96°02′ पूर्वी देशांतर के बीच स्थित है। यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत भाग है। इस राज्य का कुल क्षेत्रफल 78438 वर्ग कि०मी० है। इसमें से लगभग 35 प्रतिशत भू–भाग वनों से आच्छादित है। यह क्षेत्र इंडो–बर्मा जैव विविधता हॉटस्पॉट के अन्तर्गत स्थित हैं। यह भारत का एक ऐसा राज्य है जो हर मायने में प्रकृति के बेहद करीब हैं। यहाँ बोड़ो, मिशिंग, कार्बी, दिमासा, तिवा, राभा आदि जनजातियों के लोग निवास करते हैं। इनकी अपनी अलग–अलग कला संस्कृति, खान–पान और परंपरा हैं। ये लोग अपने भोजन के लिए पूर्णरूप से जंगली पेड़–पौधों पर निर्भर हैं। ये जंगली पेड़–पौधों के खाद्य उपयोग का पारंपरिक ज्ञान रखते हैं। जो इनको पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पूर्वज से विरासत में मिलता है। ये अपनी भोजन सामग्री के रूप में जंगल एवं झीलों से जंगली पौधों को संग्रहित करते हैं। यहाँ के मूल निवासी पेड़–पौधों के विभिन्न भागों जैसे जड़ों, टहनीयों, पत्ते, फल, बीज आदि का उपयोग अपनी खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करते हैं। इनका भोजन कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन, रेशा, खनिज लवण आदि पोषक तत्वों से भरपूर होता हैं। यह कीटनाशक एवं रासायनिक तत्वों से मुक्त स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभप्रद होता हैं। यहाँ पर असम में पायी जाने वाली कुछ अल्पज्ञात जंगली वनस्पति सब्जियों के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी जा रही है, जिनका उपयोग विभिन्न जनजातियों के द्वारा किया जाता हैं।

1. *हौटूनिया कोर्डाटा* (*Houttuynia cordata*)– सौरूरेसी कुल का शाकीय पादप हैं। इसे असमिया में मोसुन्दरी, कार्बी में वोरेक जोक्क और बोड़ो में मैसुंदरी कहा जाता है। इसकी कोमल पत्तियों और टहनियों का उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है। यह पेट संबधी समस्या और मुंह के घावों में लाभप्रद होता है।

2. *पैडेरीया फोएटीडा* (*Paederia foetida*)– यह रूबिऐसी कुल का शाकीय पादप हैं। असमिया में इसे भेदाईलता, बोड़ो में किपीवेन्डवोन्ग, और मिशिंग में बोन्की–रीपूक कहा जाता हैं। इसकी कोमल पत्तियों और टहनियों का उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है। इसमें तीखी गंध होती हैं। यह पेटदर्द, पेचिश के लिए फायदेमंद है।

3. *क्लेरोडेन्ड्रम कोलेब्रोकीएनम* (*Clerodendrum colebrookianum*) – यह वर्बीनेसी कुल का छोटा झाड़ीनुमा पादप हैं। इसे असमिया में नेफाफू, कार्बी में फर्कलूम और मिशिंग में यह पाक्कोम कहा जाता है। इसकी तरून पत्तियों का सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है। यह उच्च रक्तचाप के लिए बहुत फायदेमंद है।

4. *पोलीगोनम माइक्रोसिफैलम* (*Polygonum microcephalum*) – यह पोलीगोनेसी कुल का शाकीय पादप हैं। इसे असमिया में मधु सोलिंग कहा जाता है। इसकी कोमल पत्तियों और टहनियों को मछली के साथ सब्जी के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

5. *पोलीगोनम परफोलिएटम* (*Polygonum perfoliatum*)– यह पोलीगोनेसी कुल का शाकीय पादप हैं। इसे असमिया में बाग असोरा, बोड़ो में मोइथासिखला कहा जाता है। इसकी कोमल पत्तियों के साथ टहनियों को सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है।

6. *सार्कोक्लेमिस पुल्चेर्रिमा* (*Sarcochlamys pulcherrima*)– यह अर्टीकेसी कुल का झाड़ीनुमा पादप हैं। इसे असमिया में मेसाकी, मिशिंग में ओमबे और बोड़ो में अदुमब्रा कहा जाता है। इसकी पत्तियों और टहनियों को मांस के साथ पकाकर सब्जी के रूप में खाया जाता है।

7. *एकोर्निया क्रसिप्स* (*Eichhornia crassipes*)– यह पोंटेडेरीऐसी कुल का जल मे उगने वाला शाकीय पादप हैं। इसे असमिया और बोड़ो में मेतेका कहा जाता है। इसके फूलों को मांस के साथ सब्जी के रूप में खाया जाता है तथा इसकी पंखुड़ियों से नाश्ता तैयार किया जाता है।

8. *मोनोकोरिया हस्टाटा* (*Monochoria hastata*) – यह पोंटेडेरीऐसी कुल का जल मे उगने वाला शाकीय पादप हैं। इसे असमिया में पानीकसू और बोड़ो में अजराई कहा जाता है। इसके फूलों को मछली के साथ सब्जी के रूप में खाया जाता है।

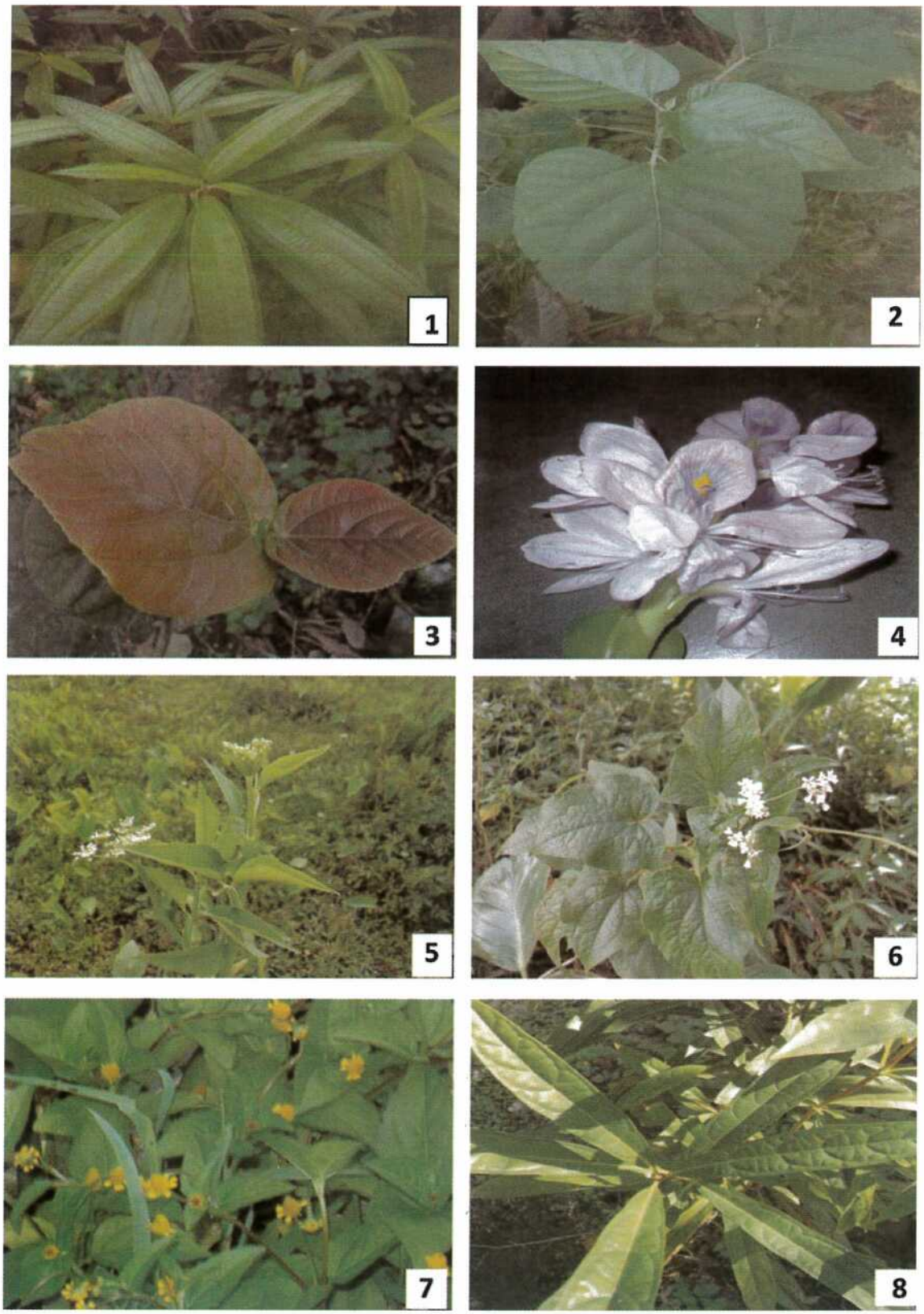

1. *सार्कोक्लेमिस पुल्चेर्रिमा,* 2. *क्लेरोडेन्ड्रम कोलेब्रोकीएनम,* 3. *फाईकस औरीकुलाटा,* 4. *एकोर्निया क्रसिप्स,*
5. *ओएनन्थे जावानिका,* 6. *फेगोपाइरम एसकुलेन्टम,* 7. *एकमेला पेनिकुलाटा,* 8. *क्लेरोडेन्ड्रम इंडिकम*

9. *फाइकस हिर्टा* (*Ficus hirta*) – यह मोरेसी कुल का छोटा पेड़ हैं। इसे असमिया में खोन्गाल्दी मोरू और मिशिंग में ताजिक कहा जाता है। इसकी कोमल पत्तियों को मांस के साथ सब्जी के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

10. *फाइकस औरीकुलाटा* (*Ficus auriculata*) – यह मोरेसी कुल का छोटा पेड़ हैं। इसे मिशिंग में ताकूक और बोड़ो में तैखरो कहा जाता है। इसकी पत्तियों और टहनीयों को मांस के साथ सब्जी के रूप में खाया जाता है।

11. *चिलोकोस्टस स्पेसिओसस* (*Cheilocostus speciosus*)– यह कोस्टासी कुल का शाकीय पादप हैं। इसे मिशिंग में पकीजिगजिग और असमिया में जोम लाखूटी कहा जाता है। इसकी कोमल टहनियों को सब्जी बना कर खाया जाता है। इसके कंद का रस पीलिया रोग के उपचार में प्रयोग किया जाता है।

12. *ओएनन्थे जावानिका* (*Oenanthe javanica*) – यह एपिऐसी कुल का जल में उगने वाला शाकीय पादप हैं। इसे असमिया में पानी धोनिया कहा जाता है। इसकी कोमल टहनियों को सब्जी के रूप में खाया जाता है।

13. *प्रेम्ना हरबेसिया* (*Premna herbacea*) – यह लेमीऐसी कुल का शाकीय पादप हैं। इसे बोड़ो में केरादापीनी कहा जाता है। इसकी पत्तियों और टहनियों को सब्जी रूप में खाया जाता है।

14. *लेसिया स्पाइनोसा* (*Lasia spinosa*) – यह ऐरेसी कुल का शाकीय पादप हैं। असमिया में यह सेंगमोरा और बोड़ो में यह सिबरू कहा जाता है। इसकी कोमल पत्तियों और टहनियों को सब्जी रूप में खाया जाता है।

15. *फेगोपाइरम एसकुलेन्टम* (*Fagopyrum esculentum*) – यह पोलीगोनेसी कुल का शाकीय पादप हैं। यह असमिया में धेमसिशाक कहा जाता है। इसकी कोमल पत्तियों और टहनीयों को सब्जी के रूप में खाया जाता है।

16. *अल्टेरनन्थेरा सेस्सिलिस* (*Alternanthera sessilis*) – यह अमरेन्थेसी कुल का शाकीय पादप हैं। यह असमिया में माटीकादुरी कहा जाता है। इसकी युवा टहनियों और पत्तियों को सब्जी के रूप में लिया जाता है।

17. *एकमेला पेनिकुलाटा* (*Acmella paniculata*)– यह ऐस्टेरेसी कुल का शाकीय पादप हैं। इसे मिशिंग में मारसांग और बोड़ो में उसुमोइ कहते है, इसकी पत्तियों, टहनियों और फूलों को सब्जी के रूप में खाया जाता है।

18. *क्लेरोडेन्ड्रम इंडिकम* (*Clerodendrum indicum*)– यह वर्बीनेसी कुल का छोटा झाड़ीनुमा पादप हैं। इसे असमिया में अकालबिर, मिशिंग में ओकालबिरी और बोड़ो में इखलाबिर कहा जाता है, इसकी पत्तियों को सब्जी के रूप में इस्तेमाल करते हैं।

भारत में वन्य पौधों का खाद्य के रूप उपयोग प्राचीन काल से किया जा रहा है। लेकिन आधुनिक युग में बढ़ते शहरीकरण की वजह से वनों का तेजी से विनाश होता जा रहा है। हमारी युवा पीढ़ी भी इनके उपयोग एवं लाभ से अनभिज्ञ है । इस बहुमूल्य वन संपदा का लाभ निरंतर लिया जा सके, इसके लिए हमें युवा पीढ़ी को वन्य पौधों के उपयोग और इनसे होने वाले लाभ के प्रति जागरूक करना होगा एवं उपयोगी वन्य पौधों का संरक्षण गृहवाटिका, उद्यान–गृह, बगीचा, वनस्पति–उद्यान, सार्वजनिक उद्यानों आदि के माध्यम से करना होगा। जिससे इस बहुमूल्य वन संपदा को नष्ट होने से बचाया जा सके।

वृक्ष हमें फल–फूल दें,
नदी सुनायें गान ।
पर्यावरण विशुद्ध रहे सदा,
यही देश की शान ।।

लाई एवं मिजो जनजातियों के जनजीवन में फुयांग्पुई राष्ट्रीय उद्यान, मिजोरम के औषधीय वनस्पतियों का महत्व

समीरन पांडे एवं विपिन कुमार सिन्हा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

मिजोरम पूर्वोत्तर भारत का एक छोटा राज्य है। इस राज्य में जैव सम्पदा के संरक्षण के लिए 2 राष्ट्रीय उद्यान, 7 वन्य जीव अभयारण्य एवं एक बाघ आरक्षित क्षेत्र घोषित है। कुल 10 संरक्षित क्षेत्रों में से फुयांग्पुई राष्ट्रीय उद्यान अपनी वनस्पतियों के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। फुयांग्पुई राष्ट्रीय उद्यान मिजोरम राज्य के दक्षिण–पूर्व में 22°36'37" एवं 22°41'33" उत्तरी अक्षांश एवं 92°00'41" एवं 93°04'57" पूर्वी देशांतर के बीच लंगत्लाई जिला में स्थित है। इसका क्षेत्रफल 50 वर्ग किलोमीटर है। 1992 में इसे मिजोरम सरकार ने अपने वानस्पतिक विविधता के कारण राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया। फुयांग्पुई राष्ट्रीय उद्यान इंडो–म्यांमार क्षेत्र में समुद्र तल से 1360–2368 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। यह उद्यान ऊष्ण कटिबंधीय अर्ध सदाबहार वन की श्रेणी में आता है। राष्ट्रीय उद्यान की सीमा से लगे हुए गाँव में रहने वाले लाई जनजाति अपने परिवार की जरुरतों के लिये उद्यान की कई वनस्पतियों का दोहन करते रहते हैं। लाई एवं मिजो जनजातियों द्वारा उपयोग किये जाने वाले कुछ औषधीय पौधे निम्नलिखित हैं।

1. *अबेलमोस्कस मोसकेटस* (मालवेसी) – जड़ को पिस के घाव पर लगाया जाता है।
2. *एजेरेट मकोनिजोइडिस* (एस्टेरेसी)– पत्ते को अदरक के साथ पिस केसर पर लगाने से टाईफॉइड का बुखार ठीक हो जाता है।
3. *एपोरोसा ओक्टानड्रा* (यूर्फोबिऐसी)– छाल को पानी में उबालकर पीने से पेट दर्द दूर होता है।
4. *बाइडेन्स पाइलोसा* (एस्टेरेसी) – पौधे को पानी में उबालकर पीने से दस्त एवं पेचिश रोग ठीक हो जाता है।
5. *ब्लुमिया लेसिनियाटा* (एस्टेरेसी)– पत्ते को पिस के सर्पदंश पर लगाया जाता है।
6. *बुडलेजा एशियाटिका* (बुडलेजेसी) – पत्ते के रस के प्रयोग से मलेरिया का बुखार ठीक किया जाता है।
7. *सेंटेला एशियाटिका* (एपिऐसी) – पौधे के पत्तों का काढ़ा पेचिश रोग के निदान के लिये प्रयोग होता है।
8. *सिन्नामोम मतमाला* (लौरेसी)– छाल और पत्ते का काढ़ा सर्दी एवं खांसी में उपयोग होता है।
9. *क्लेरोडेन्ड्रन कोलेब्रेकियानम* (वरबिनेसी) – पत्ते का ठंडा काढ़ा उच्च रक्तचाप के लिए उपकारी है।
10. *कुर्कीलागो ओर्किओडिस* (हाइपोक्सिडेसी) – कंद का रस बुखार एवं मूत्रवर्धक में उपयोग होता है।
11. *कुर्कुमा एरोमेटिका* (जिंजिबेरेसी) – कंद का लेप खुजली के लिये असरदार है ।
12. *एलिफैन्टो पसस्कैबेर* (एस्टेरेसी) – जड़ का काढ़ा मूत्र सम्बंधित परेशानियों को दूर करने में प्रयोग होता है।
13. *एल्सोल्ट जियाब्लैन्डा* (ल्यमिएसी) – पौधे का काढ़ा बुखार, कोलेरा एवं चर्म रोग में उपयोग होता है।
14. *फ्लेमिंजिया मैक्रोफाईला* (पैपिलिओनेसी) – जड़ का काढ़े को सूजन पर लगाया जाता है एवं यह बदन दर्द के लिये भी उपयोगी है।
15. *फ्लुग्गिया विरोसा* (इउफोरबिएसी) – पत्तों का उबला हुआ पानी खुजली से ग्रस्त बच्चों को नहलाने में प्रयोग होता है।
16. *हेडिओटिस स्कन्डेंस* (रुबिएसी) – पत्ते के काढ़े को पीलिया एवं गुर्दों से जुड़ी समस्याओं में प्रयोग करते हैं।
17. *हेलिसिया निलागिरिका* (प्रोटिएसी) – छाल का काढ़ा पीने से उदरशूल दूर होता है।
18. *हाइड्रोकोटाइल जावानिका* (एपिएसी) – पत्ते का रस बच्चों के पेटदर्द में उपकारी है तथा आंखों के लिये भी प्रयोग किया जाता है।
19. *लेपिडागाथि सरीजिडा* (एकांथेसी)– पत्ते का रस दातों का कीड़ा दूर करने के लिये उपयोगी है।
20. *मुसेन्डा रॉक्सब्रघाई* (रुबिएसी) – पत्ते का लेप हाथों और पैरों के सूजन में लगाया जाता है।

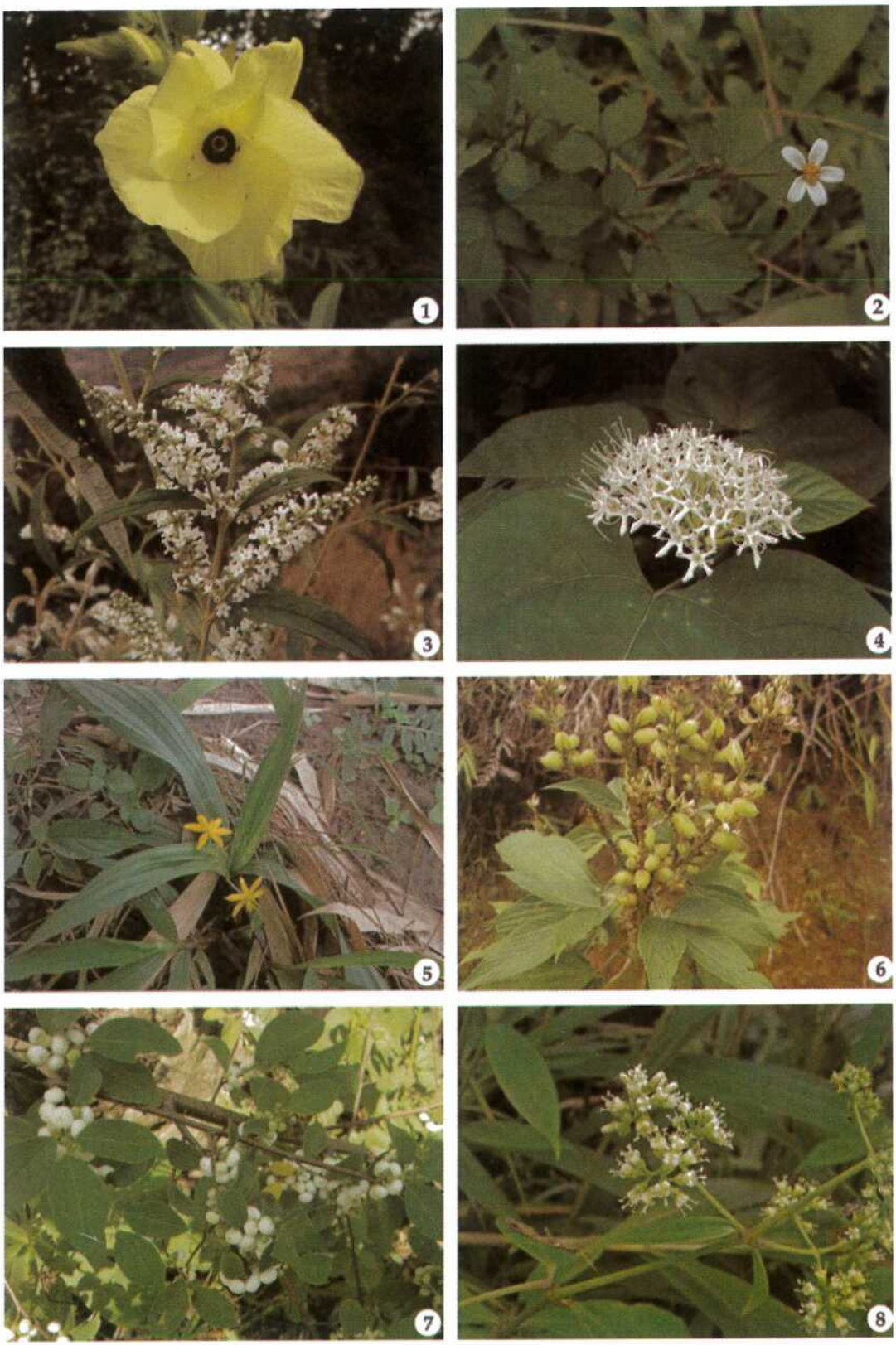

1. *अबेलमोस्कस मोसकेटस*, 2. *बाइडेन्स पाइलोसा* , 3. *बुडलेजा एसियाटीका* , 4. *क्लेरोडेन्ड्रन कोलेब्रेकियानम*,
5. *कुर्किलागो ओर्किओडिस*, 6. *फ्लेमिंजिया मैक्रोफाईला*, 7. *फ्लुग्गिया विरोसा*, 8. *हेडिओटिस स्कन्डेंस*

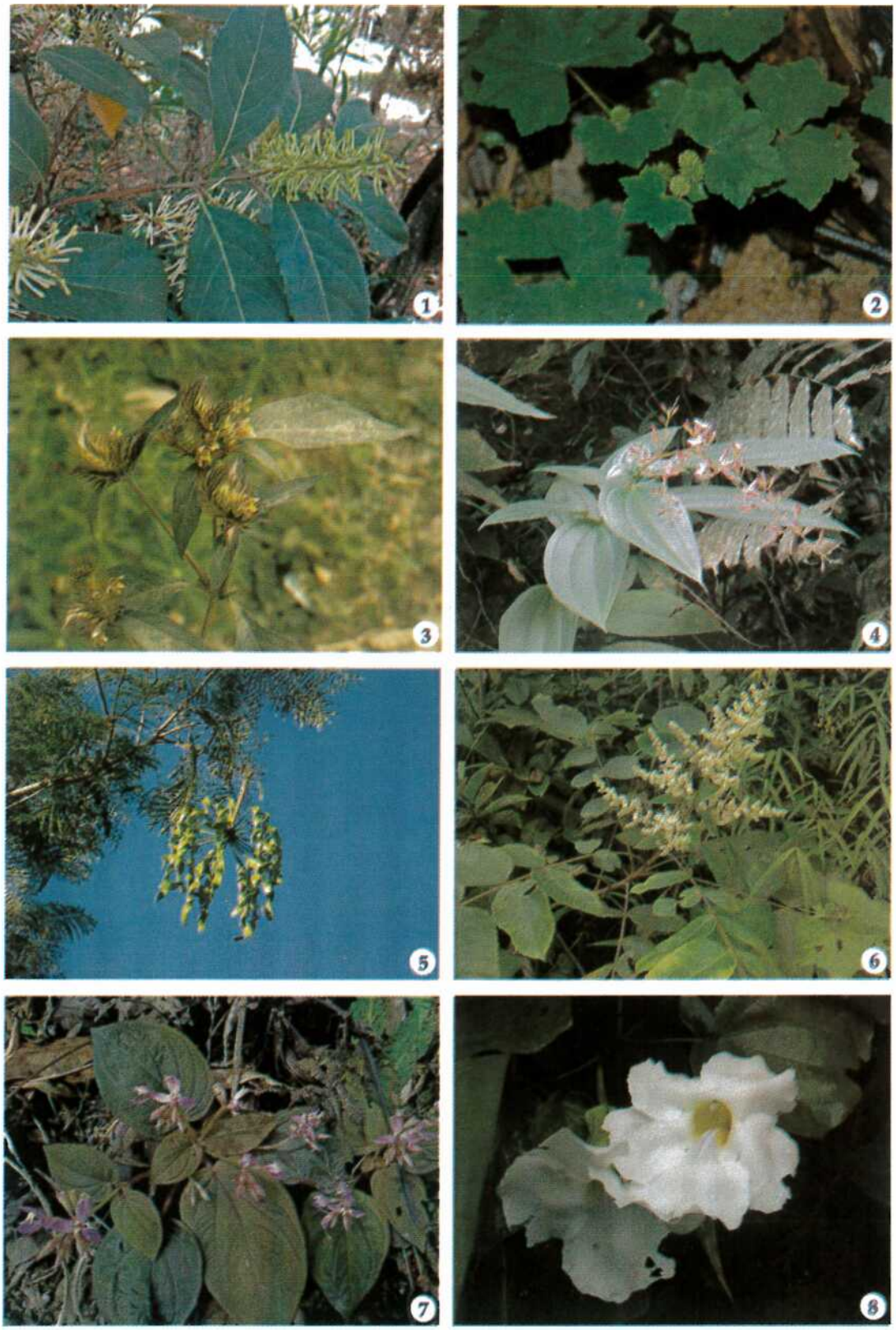

1. *हेलिसिया डिनलागिरिका*, 2. *हाइड्रोकोटाइल जावानिका*, 3. *लेपिडागाथि सरीजिडा*, 4. *ओक्सिस्पोरा पेनिकुलाटा*, 5. *पार्कियाटि मोरिआना*, 6. *रास चाइनेंसिस*, 7. *सोनेरिला मैकुलाटा*, 8. *थुन्बर्जीया ग्रैंडिफ्लोरा*

21. *ओक्सिस्पोरा पेनिकुलाटा* (मेलास्टोमेसी) –पत्ते का रस शारीरिक कमजोरी में दिया जाता है।
22. *पैडेरिया फोटिडा* (रुबिऐसी) – पौधे को गठिया वाद में प्रयोग किया जाता है।
23. *पार्कियाटि मोरिआना* (माईमोसेसी) – फल के हरे छिलके का लेप घाव में लगाया जाता है।
24. *फाईलैंथस इम्बलिका* (यूफोर्बिऐसी) – छाल का रस दस्त एवं पेचिश रोग के लिये उपयोग किया जाता है।
25. *रासचाइनेंसिस* (एनाकर्डिएसी) – फल का रस दस्त एवं उदरशूल में प्रयोग किया जाता है।
26. *रुबिया कोर्डीफोलिया* (रुबिएसी) – जड़ का लेप सूजन एवं चर्म रोग में उपयोगी है।
27. *सिडारौम्बि फोलिया* (मालवेसी) – पौधे के नर्म हिस्से को पिस कर ठंडे पानी के साथ सेवन करने से मधुमेह नियंत्रित रहता है।
28. *सोलानमटौर्वम* (सोलानेसी) – सूखे फल दाँत दर्द के लिये उपयोग किये जाते हैं।
29. *सोनेरिला मैकुलाटा* (मेलास्टोमेसी) – जड़ को उबाल कर लेने से उदर की समस्याओं का निवारण होता है।
30. *थुन्बर्जीया ग्रैंडिफ्लोरा* (थुन्बर्जीएसी) – पौधों के तने का रस नेत्र प्रदाह के लिये उपयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त फुयांग्पुई राष्ट्रीय उद्यान के लाई एवं मिजो जनजातियों के लोग वन्य वनस्पतियों का प्रयोग अपने भोजन, लकड़ीयों का इस्तेमाल घर बनाने एवं धार्मिक कार्यकलापों, घर की सजावट, झाड़ू बनाने तथा पशुओं के चारे के लिये भी करते हैं।

कटे पेड़ बंजर धरा
जहरीला है जल,
आज बिताना है कठिन
कैसा होगा कल ?

1–8 विभिन्न प्रजाति के नारियल

जाता है। यही सफेद मांस नारियल का कोपरा कहलाता है। आस–पड़ोस के लोग समूह में नारियल वृक्ष के नीचे बैठ कर इस कार्य को पूरा करते है। उन सभी लोगों का खान–पान उस दिन उसी घर पर किया जाता है। कोपरे को वजन कर सहकारी तौर पर निर्यात किया जाता है और मिलों पर बेचा जाता है।

2) नारियल की ताड़ी– ताड़ी बनाने के लिये नारियल के फूलों को प्रयोग में लाया जाता है। नारियल के फूल के गुच्छे के सिरे को काट कर, उस पर एक बोतल के मुँह को बांधकर बोतल को वही पर लटका दिया जाता है। धीरे–धीरे रस निकल कर उस बोतल में भर जाता है। इसी रस को मद्य के रूप में पान करते है।

3) अन्य उपयोग – फलों का पानी पीया जाता है। नारियल बीज के सफेद मांस को बेंत (केलामस) के कांटों से बारिकी से खुर चकर निकाला जाता है और वड़ी एवं चावल का आटा तथा चीनी मिलाकर भांप में पका कर नाश्ता तैयार किया जाता है। नारियल के तेल को खाने में, बालों व शरीर पर लगाया जाता है तथा कई आयुर्वेद औषधियाँ भी तैयार की जाती है। नारियल बीज के सफेद मांस से कई प्रकार के पकवान तैयार किए जाते है या कच्चा भी खाया जाता है। किसी भी समारोह के दौरान पत्तियो से सजावट की जाती है। नृत्य के दौरान पत्तियों का मुकुट पहना जाता है व कमर पर भी बाँधा जाता है। डाल को सांगे के रूप में प्रयोग में लाया जाता है।

4) सूअर का खाना– सूअर को रोजाना नारियल बीज का सफेद मांस खिलाया जाता है, जिससे उनकी चर्बी एवं वजन में बढ़ोत्तरी होती है।

5) घरों की चार दिवारी – इनकी एक पूरी पत्ती को घुमा कर लपेटा जाता है और उसे सुखा कर घरों की चार दिवारी के रूप में प्रयोग किया जाता है।

सर्वेक्षण के दौरान यह देखा गया की यह जनजाति 'कोपरा' तैयार करने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं, परन्तु इनकी आमदनी बहुत अच्छी नहीं हो पाती है तथा खराब रास्तों के कारण कोपरा के निर्यात के लिए को सुदूर गांवों से आने में असुविधा होती है। भविष्य में अगर कोपरा तैयार करने के लिए नयी तकनीक मिलती है, निर्यात के लिए सरकार से अच्छी सुविधा मिलती है तथा कोपरों के मूल्यों पर ध्यान दिया जाए तो कोपरा के लिए किए जाने वाली मेहनत सही तौर पर इनके घरों पर आमदनी लाएगी।

प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा को बचाना है ।
जीवन को आनन्दमय और खुशहाल बनाना है।।

पावन भूमि –अपर गंगा रामसर साइट वनस्पतिक संरक्षण में योगदान

आरती गर्ग एवं पुष्पी सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

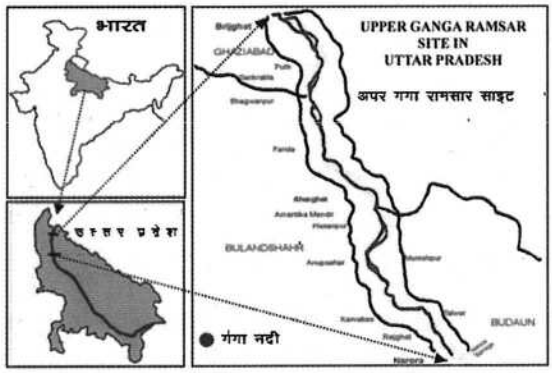

पर्यावरण संतुलित बनाये रखने में वन–वश्क्ष तथा पेड़–पौधों का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। प्राचीन काल से ही भारत में रहने वाले जनजातिय समुदायों में जीविकोपार्जन हेतु वनों की अभूतपूर्व भूमिका रही है। तथाकथित रूप से पुराने वृक्षों को पुरातन काल से ही आत्माओं एवं देवताओं का निवास स्थान माना जाता रहाहै और यह भी माना जाता है कि वृक्ष ही देवताओं का प्रथम निवास होते हैं। अतः भारत में अनेक पेड़– पौधों जैसे– वट वृक्ष, पीपल, तुलसी, आंवला, सीता, अशोक, नीम, कदम्ब आदि को अत्यंत पवित्र व पावन माना जाता है। इन वृक्षों को देवी–देवताओं का निवास स्थान मानते हैं और इन धारणाओं के अतंर्गत कुछ वनीय क्षेत्रों को पावन वन (सेक्रेड ग्रूव) का दर्जा प्राप्त हुआ है। इन्हीं पावन वनों को मंदिर का जन्मदाता भी माना जाता है, जो प्रारंभ में तो मातृ–वृक्षों का समूह थे, किन्तु बाद में वहाँ अर्धअंधकारमय चर्च बना दिये गये।

प्राचीन मनीषी भी पावन वनों के तथ्य से भली–भांति परिचित थे, अतः प्राचीन परम्पराओं एवं स्थानीय मान्यताओं के आधार पर जंगल भू–भाग के कुछ महत्वपूर्ण वृक्षों को इन मनीषियों ने अज्ञात शक्तियों अथवा देवी–देवताओं का प्राकृतिक निवास स्थान मानकर उन्हें समर्पित कर दिया, जिसके फलस्वरुप वे यहां स्थित वृक्षों को इन शक्तियों से जोड़कर इन उपवनों की पूजा करने लगे। इस प्रक्रिया में अप्राकृतिक रुप से दैविक शक्तियों को प्रकृति से जोड़कर वे प्राचीन मान्यताओं और आस्थाओं के सहारे इन उपवनों की सुरक्षा को किसी स्थानीय देवी–देवताओं नाग किन्नर अथवा अन्य अप्राकृतिक आकृतियों को समर्पित रखते थे। धीरे धीरे ये पावन उपवन प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और समृद्धि का अभूतपूर्व अंग बन गये।

ऐसी मान्यता है कि प्राचीन काल से इन पावन उपवनों में पाई जाने वाली सभी वनस्पति एवं जीवों का संरक्षण उनके प्राकृतिक अभयारण्यों में देवी–देवताओं को समर्पित किया जाता है। इन क्षेत्रों में किसी भी पेड़–पौधे, जानवरों व पक्षियों को किसी भी तरह की हानि पहुचानें की अनुमति नहीं होती तथा इन पावन उपवनों को पूज्य माना जाता है।

पावन वन – एक ऐसी पवित्र भूमि/वन क्षेत्र हैं जो भौतिक रुप से विविधता पूर्ण है तथा प्राथमिक वनस्पतियों से घिरे होते हैं। यहाँ स्थानीय लोगों द्वारा अपनी मान्यताओं व विश्वासों के आधार पर जंगल के एक बड़े भू–भाग कुछ महत्वपूर्ण वृक्षों को संरक्षित कर उनकी वन्दना की जाती है एवं यहॉ पाये जाने वाले प्रत्येक पादप पवित्र एवं वन्दनीय होते हैं एवं किवदंतियों से जुड़े होते हैं। इन अवधारणाओं के आधार पर पावन वनों का संरक्षण स्वतः ही हो जाता है।

पावन वनों का वर्गीकरण तथा पावन स्थल (सेक्रेड साइट) से विभेदीकरण– भारत में पाये जाने वाले पावन वनों को मुख्यतः तीन वर्गों में बांटा जा सकता है 1. पारंपरिक पावन वन–इन जगहों पर ग्राम देवी–देवताओं का निवास होता है, जो एक प्राथमिक प्रतीक के रुप में होता है। 2. मंदिर से निकट पावन वन–ऐसे वन मुख्यतः मंदिर के आस–पास संरक्षित होते हैं, एवं 3. कुछ पावन वन दाह संस्कार एवं दफनायें जाने वाले स्थानों पर होते हैं। पावन वन एवं पावन स्थल में विभेदीकरण आज भी आम जन मानस में वाद–विवाद का विषय बना हुआ है। जबकि सत्यता यह है कि दोनों पूर्णतः अलग–अलग क्षेत्र है। हम पावन वनों का प्ररुप–वर्गीकरण निम्न कारकों के आधार पर कर सकते हैं–

1. पावन वनों में मुख्यतः ऐसी दैवीय शक्तिओं का निवास होता है, जो संपूर्ण क्षेत्र में किसी भी रूप में कहीं भी विचरण कर सकती हैं जैसे सर्प, वन देवी, आत्मा, भूत, प्रेत आदि। इन सभी को किसी टीले, दीमक की बाम्बी, प्राचीन शिलाखण्ड, कुन्द्रा अथवा अद्भुत मूर्ति के प्रतीक रुप में प्रस्तुत किया जाता है।
2. यहाँ प्राकृतिक एवं प्राचीन वनस्पतियों का अद्भुत समूह होता है, जिसमें पादपों की विभिन्न जातियॉ, बहु–श्रृंखलायुक्त वन अपने पुरातन रुप में ही संरक्षित होते हैं, जिनमें प्रायः बहुत सी संकटग्रस्त, दुर्लभ एवं स्थानिक जातियाँ पायी जाती हैं।

3. पावन वन किसी भी प्रकार के मानव क्रिया–कलापों आधुनिकीकरण, शहरीकरण आदि से अक्षुण रहते हैं। साथ ही ऐसे क्षेत्र में किसी भी रुप में जल श्रोत का होना आवश्यक है।
4. ये वन किसी न किसी ऐतिहासिक सांस्कृतिक या धार्मिक मान्यताओं एवं अवधारणाओं से जुड़े होते हैं तथा यहाँ के विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों, रीति–रिवाजों में इन पावन वनों में निवास करने वाली आत्माओं की छाप स्पष्ट झलकती है।
5. इन क्षेत्रों से जुड़े प्रतिबंधों के आधार पर यहाँ स्थित किसी पादप को किसी भी प्रकार की हानि पहुंचाना पूर्णतः वर्जित होता है। इस संपूर्ण क्षेत्र को वहां के निवासियों द्वारा निगरानी में रखा जाता है।
6. ऐसे क्षेत्रों में सांप्रदायिक पवित्रता के साथ समय–समय पर निवास करने वाली आत्माओं को प्रसन्न तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु अजीबो–गरीब विधियां संपन्न करके उन्हे प्रसन्न किया जाता है। अपने ईष्ट देव को प्रसन्न करने के लिए विभिन्न प्रकार के नृत्य करते हैं। कहीं–कहीं तो पशुबलि (गाय, सुअर, मुर्गी आदि) का भी प्रावधान है।
7. यहाँ से संबंधित अवधारणायें किसी भी धर्म अथवा भौगोलिक क्षेत्र से परे होने के साथ ही किसी भी तरह से इनसे प्रभावित नहीं होती है।

उक्त सभी बिन्दुओं को आधार मानते हुए पावन वन एवं पावन स्थल में विभेदीकरण स्पष्ट रुप में किया जा सकता है। साथ ही मुख्य अन्तर को निम्न वाक्यों से स्पष्ट कर सकते हैं जैसे पावन वन में किसी निर्धारित भगवान एवं मूर्ति की वन्दना नहीं होती और न ही ये किसी धर्म विशेष से संबंधित होते हैं। जबकि यहाँ पर तो पेड़ों एवं उनसे संबंधित आत्माओं की वन्दना की जाती है। किन्तु पावन स्थल किसी धर्म विशेष से जुड़ी भगवान की प्रतिमा की पूजा–अर्चना से जुड़े होते है, जहां देवी–देवताओं को पूजा जाता है न कि जीव आत्माओं को। ऐसे क्षेत्रों में खास प्रतिबंधन नहीं होता एवं धार्मिक मानसों का आवागमन बना रहता है। साथ ही ये क्षेत्र स्वतः अर्ध संरक्षित होते हैं क्योंकि सामान्यतः ये सुदूर में अवस्थित होते हैं। इन स्थलों के देख–रेख की जिम्मेदारी उस धर्म से संबंधित विशिष्ट धार्मिक संघ द्वारा किया जाता है। इस तरह के अनेक पावन स्थल हिमालय के तलहटी एवं चोटियों में प्रायः छिपे रहते हैं। जिसके कारक ये वस्तुतः आम जन के पहुँच से बाहर होते हैं और इस आधार पर वहाँ की पादप–जीव संपदा स्वतः संरक्षित हो जाती है।

पावन वनों का पारिस्थितिक महत्व – पावन वन जैव विविधता को संरक्षित करने वाले वे वन स्थल होते हैं, जहाँ वनस्पति एवं जीवों दोनों भंडार स्थानीय लोगों द्वारा संरक्षित किए जाते है। साथ ही कुछ स्थानिक जातियों के अंतिम संरक्षण स्थल भी होते हैं तथा किसी न किसी जल श्रोत से जुड़े

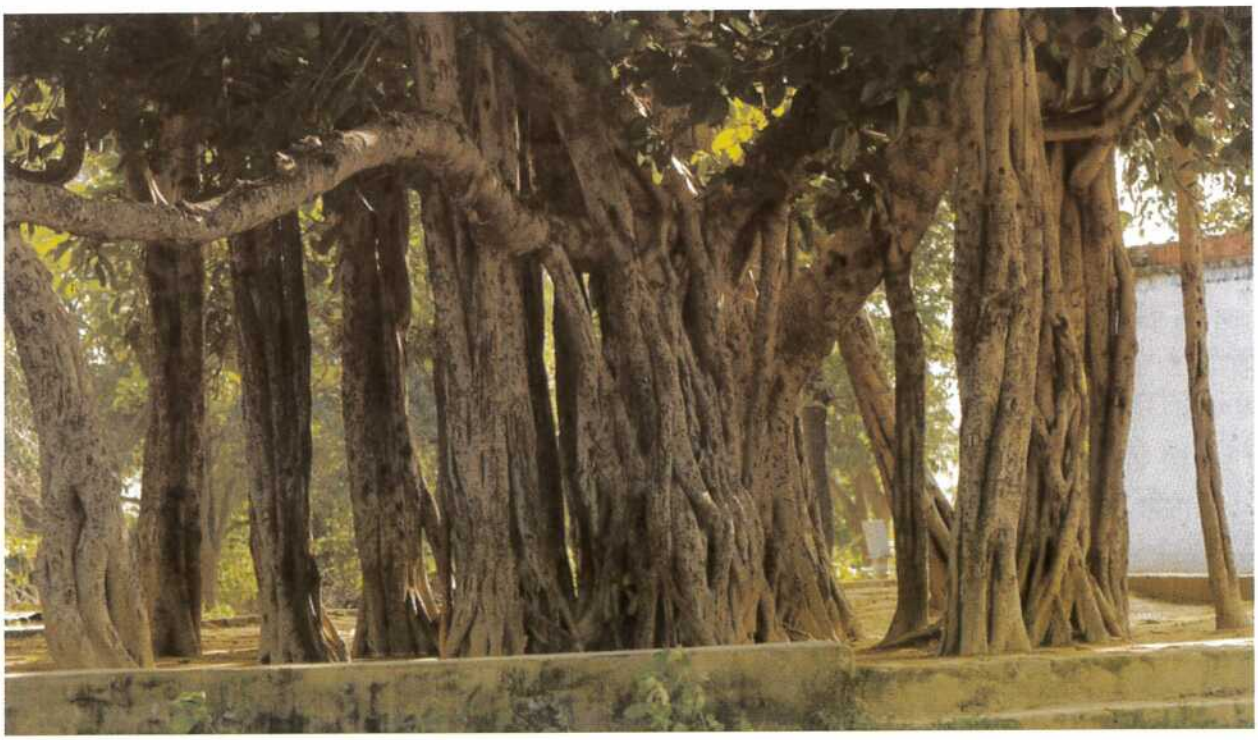

होते हैं, जिसके कारण वहाँ के स्थानीय लोगों की पानी की आवश्यकताएं पूरी होती हैं। ये पावन वन वहाँ पाये जाने वाले वनस्पतिक विविधता को स्थायी करने के साथ ही मृदा क्षरण से भी बचाते हैं।

भारत के प्रमुख पावन वन तथा इनके स्थानिक नाम – भारतीय उपमहाद्वीप विश्व में मानव संस्कृति तथा विविधता का केन्द्र रहा है तथा पावन वन मुख्यतः भारत के पहाड़ी क्षेत्रों में पाये जाते हैं जैसे– हिमालय, पश्चिमी घाट, पूर्वोत्तर भारत एवं मध्य भारत –खासी एवं जयंतिया हिल (पूर्वोत्तर भारत) महाराष्ट्र एवं कर्नाटक के पश्चिमी घाट राजस्थान का अरावली पहाड़ सरगुजा, चन्दा एवं बस्तर (मध्य भारत)। जहाँ पर ये अपने प्रचीन रुप में विद्यमान हैं। इन पावन वनों को स्थानीय नाम प्रदान किये जाते है जैसे –

अरुणाचल प्रदेश	–	गुम्पा
असम	–	थान, मडाइको
छत्तीसगढ़	–	सरना, देवलास, मंदार, बुद्धदेव
हिंमाचल प्रदेश	–	देवभूमि
झारखंड	–	सरना
कर्नाटक	–	देवरा काटू
केरल	–	कावूस
मध्य प्रदेश	–	देवकोट, माटीकोट, देवस्थली, बुद्धदेव
महाराष्ट्र	–	देवराइस
मणिपुर	–	गमखाप, माऊहक
मेघालय	–	ला लिंगदोह
उड़ीसा	–	जहेरा, ठाकुर अम्मा
पांडिचेरी	–	कोविल कादू
राजस्थान	–	ओरान्स, केनकिस, जोगमाया
सिक्किम	–	गुम्पा
तमिलनाडु	–	देवभूमि, भुग्याल
पश्चिम बंगाल	–	गर्मथान, हरीथान, जहेरा

वानस्पतिक संरक्षण में पावन वनों का योगदान –पावन वन धार्मिक मतों एवं अवधारणाओं के आधार पर उस विशेष क्षेत्र के पारिस्थितिक तंत्र को संतुलित रखने एवं जैव–विविधता को संरक्षित करने में अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि पावन वनों में निवास करने वाली अधिकतर वनस्पतियॉं संकटग्रस्त, दुर्लभ एवं स्थानिक श्रेणी में आती हैं, इसीलिए वनस्पति संरक्षण में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। भारत में पावन वनों का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन गाडगिल, वारतक, चन्द्रन आदि ने किया है। सम्पूर्ण भारत में *फाइकस* जाति के वृक्षों को भारतीय संस्कृति में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जिसके कारण इसे 'कीस्टोन संपदा' कहा गया है। जब मुख्यतः किसी वृक्षों में फल नहीं होते हैं, तब इन वृक्षों में प्रचुर मात्रा में फल लगते हैं।

भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित ऊपरी गंगा रामसर साईट में मांइ एवं सिद्दवरी पावन वन तथा अवंतिका पावन स्थल के सर्वेक्षण के दौरान इनमें कुछ महत्वपूर्ण पादपों की सूची तैयार की गयी है। ये विशिष्ट पादप इस रामसर साईट की 'मार्कर जाति' के रुप में इन पावन स्थलों मे संरक्षित है, जो इनके बाहर के क्षेत्रों से विस्तृतकरण के दौरान खत्म हो चुके है। मानव आधुनिकीकरण की ओर जैसे जैसे तेजी से अग्रसर हो रहा है वैसे वैसे उसकी धारणा भी बदलती जा रही है, फलस्वरुप पावन वनों के अस्तित्व को भी खतरा बढ़ता जा रहा है। अतः पावन वनों के महत्व को समझते हुए इनका संरक्षण पादप संरक्षण के हित में अति आवश्यक है, जिसके लिए एकजुट प्रयास करने की आवश्यकता है।

अपर गंगा रामसार साइट में पावन वनों का योगदान

	पादप जाति	मांइ पावन वन	सिद्धवरी पावन वन	अवंतिका पावन स्थल
1.	*ऐबरस प्रेकेटोरियस*	+		+
2.	*एबुटीलॉन इण्डिकम*			+
3.	*एकेसिया निलोटिका*			+
4.	*एकलाइफा इण्डिका*	+		
5.	*एकरेन्थस एसपेरा*	+		
6.	*जस्टीसिया आधाटोडा*		+	+
7.	*एगेल मारमेलोज*	+	+	+
8.	*ऐलेन्थस एक्सेल्सा*		+	
9.	*एलेन्जियम साल्वीफोलियम*			+
10.	*एलबीजिया लेबेक*			
11.	*एल्सटोनिया स्कोलैरिस*			+
12.	*एनागालिस अरवेन्सिस*		+	
13.	*अनोना स्क्वामोसा*			+
14.	*अर्जेमोन मेक्सिकाना*		+	
15.	*एजाडिरेक्टा इण्डिका*		+	+
16.	*बैकोपा मानियेरी*	+		
17.	*बारलेरिया प्रियोनिटिस*		+	+
18.	*बउहीनिया वैरीगेटा*	+		
19.	*बयोफाइटम सेन्सीटिवम*			+
20.	*बोयरहाविया डिफ्यूजा*	+		
21.	*बुडलेजा एसियेटिका*			+
22.	*बूटिया मोनोस्पर्मा*			+
23.	*कैलिस्टेमोन लान्स्योलेटस*	+		
24.	*कैलोट्रोपिस जिजेन्सिया*			
25.	*केसिया फिस्टुला*	+	+	
26.	*कैथारैन्थस रोजियस*	+		
27.	*केरेटिया ट्राइफोलिया*		+	
28.	*सेलेस्ट्रस पानीकुलेटस*		+	
29.	*सेन्टेला एसिऐटिका*		+	
30.	*क्लेयोम गायनेन्ड्रा*		+	+
31.	*क्लेयोम विस्कोसा*			
32.	*कोक्कुलस हिरसुटस*			+
33.	*कोर्डिया डाइकोटोमा*		+	
34.	*कैरेटिया मैग्ना*			+
35.	*दलबर्जिया सिसू*		+	
36.	*दतूरा मेटेल*		+	

1. *केसिया फिस्तुला,* 2. *एकेसिया निलोटिका,* 3. *एलबीजिया लेबेक,* 2. अवंतिका पावन स्थल का दृश्य, 4. अपर गंगा रामसार साइट का मानचित्र, 5. मांइ पावन वन का दृश्य, 6. *डेस्मोडियम गैंगेटिकम,* 7–8. सिद्धवरी एवं मांइ पावन वन का दृश्य ।

37.	*डेलोनिक्स रेजिया*	+		
38.	*डेस्मोडियम गैंगेटिकम*	+		+
39.	*डेस्मोडियम ट्राइफ्लोरम*			+
40.	*डिप्लोसाइक्लोस पालमेटस*		+	
41.	*इकलिप्टा प्रोस्ट्रेटा*		+	
42.	*फाइकस बेंगालेन्सिस*	+	+	+
43.	*फाइकस रेसेमोसा*	+	+	+
44.	*फाइकस रेलिजियोसा*	+	+	+
45.	*हेमीडेसमस इण्डिकस*			+
46.	*होलोप्टेलिया इन्टेग्रीफोलिया*		+	
47.	*लान्टाना केनारा*		+	
48.	*लिप्पिया जवानिका*		+	
49.	*मैनिलकारा इलेन्गी*		+	
50.	*मैनिलकारा हेक्सान्ड्रा*	+	+	+
51.	*माइमोसा पुदिका*			
52.	*माइमुसोप्स इलेन्गी*		+	
53.	*मित्रगाइना पार्वीफोलिया*			
54.	*मोमोरडिका डाइवोका*			+
55.	*मुकुना प्रुरेन्स*		+	
56.	*मुर्राया कोइन्गी*			
57.	*मुरैाया पानीकुलेटा*	+		
58.	*निक्टैन्थस अरबोरट्रिसटिस*			+
59.	*ओसिमम बैसिलिकम*		+	
60.	*ओसिमम ग्रैटीसिमम*	+		
61.	*ओपरकुलिना तुरपेथम*		+	
62.	*पारथेनियम हिस्टेरोफोरस*		+	
63.	*फिलैन्थस इम्बलिका*			+
64.	*प्रोसोपिस साइनेरेरिया*			+
65.	*प्रोसोपिस ज्यूलीफ्लोरा*		+	
66.	*राउलफिया सरपेन्टिना*			+
67.	*स्कोपेरिया डलसिस*		+	
68.	*सेन्ना टोरा*			+
69.	*सिडा कोर्डीफोलिया*			+
70.	*सिडा रोम्बीफोलिया*			+
71.	*स्ट्रेबलस ऐस्पर*			+
72.	*टेफरोसिया पुरपुरिया*		+	
73.	*टर्मिनालिया कैटेप्पा*			+
74.	*जिजीफस ओयनोप्लिया*			+

पादप नामकरण विज्ञान – मेलबोर्न कोड (आई.सी.एन.) का एक परिचय

जी. पी. सिन्हा एवं नितिशा श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

मनुष्य द्वारा जीवों के नामकरण का उद्देश्य उन्हें सन्दर्भित करना है, जिससे उसका आसानी से उपयोग किया जा सके। यह सर्वविदित है कि प्रभावी वैज्ञानिक संप्रेषण हेतु एक निश्चित, टिकाऊ व्यवस्था तथा सरलीकृत नियम आवश्यक है, परन्तु "सरल" एवं "सटीक" व्यवस्था बहुधा एक साथ नहीं पाये जाते। संभवतः अलग–अलग देशों में मनुष्य पौधों, शैवालों तथा कवकों को उनके उपयोग के आधार पर अपनी– अपनी भाषा में नामकरण करता आ रहा है। जिसमें जीवों के भोजन, औषधि, लकड़ी, रेशा, गोंद, रंजक इत्यादि के उपयोग आधारित नाम सम्मिलित हैं। इन नामों को स्थानीय नाम या भाषायी नाम कहना उचित होगा। भले ही यह भाषायी नाम प्रचलन में हमारे संप्रेषण का माध्यम रहें हों, परन्तु इनके साथ एक बड़ी समस्या रही है। अधिकांशतः ये नाम अस्पष्ट होते हैं, कई नाम एक ही पौधे का होता है तथा कई बार अलग–अलग भाषाओं तथा क्षेत्रीय बोलियों में अलग–अलग पौधों का एक ही नाम होता है। उदाहरण स्वरूप "*एडनसोनिआ डिजिटेटा*" तथा "*निकटेन्थिस आरबोर ट्रिस्टिस*" को 'पारिजात', "*बोरहाविआ डिफ्युसा*", "*सिलैजिनेला ब्रायोप्टेरिस*" तथा "*कैलन्चो पिन्नाटा*" को 'पथरचट्टा', "*सिलैजिनेला ब्रायोप्टेरिस*", "*सॉस्युरिआ गास्सिपिफोलिआ*", "*इफिड्रा जिरारडियाना*", "*ट्राइकोपस जिलेनिका*" तथा "*प्लयुरोस्पर्मम कैन्डोलाइ*" को 'संजीवनी', "*फाइकस बेन्गालेन्सिस*" तथा "*एडनसोनिया डिजिटेटा*" को 'कल्प वृक्ष' कहा जाता है। इसी प्रकार ब्रिटेन में 'कक्कू फ्लावर' नाम 10 कुलों की 17 जातियों के लिए प्रयोग किया जाता है। वहीं 'ब्लू बेल' नाम इंग्लेंड, स्काटलैंड एवं उत्तरी अमेरिका में 3 अलग अलग जातियों के लिए प्रयुक्त होता है। सोलहवीं से अट्ठारहवीं सदी में जब जीवों के वैज्ञानिक नामकरण का प्रचलन शुरु हुआ था, तब विज्ञान की भाषा लैटिन थी। इसी कारण से इन नामों को लैटिन नामों से जाना जाता है। ग्रीक एवं अन्य भाषाओं के शब्द भी प्रयोग में हैं, परन्तु व्यवहार में सभी लैटिन के रुप ही माने जाते हैं। अतः वैज्ञानिक नामों को लैटिन नाम भी कहा जाता है, जिसका उपयोग विश्व के सभी जीव विज्ञानी व वनस्पतिज्ञ आपसी संप्रेषण में सुविधा एवं एकरुपता के लिए करते हैं।

वर्तमान में प्रचलित जीवों के नामकरण का प्रारम्भ 18वीं सदी के मध्य में स्वीडिश प्रकृतिविद् कैरोलस लिनियस की पुस्तक "स्पीशिज प्लेनटेरम" एवं "सिस्टेमा नेचुरे" (लिनियस 1753, 1758) के प्रकाशन से हुआ, जिसमें बाइनोमियल (द्विनाम पद्धति) अर्थात "दो नामों" वाली व्यवस्था उपयोग में लाया गया था। द्विनाम पद्धति में एक वंश (जीनस) और दूसरा शब्द जाति (स्पीशिज) का नाम होता है, जहाँ जाति को वर्गिकी का मूल एकक (बेसिक टैक्सोनोमिक यूनिट) माना जाता है। द्विनाम पद्धति एक उपयोगी व्यवस्था है, जिससे लाखों जातियों का नामकरण किया जाता है। इसकी विषेशता यह है कि अगर आप जाति का नाम जानते हैं तो इसके वंश को स्वतः ही पहचान जाते हैं।

वनस्पतियों के नामकरण हेतु ऐसे नियमों की आवश्यकता पड़ी जो स्थिर, स्थाई हो तथा जिसकी सहायता से भ्रामक नामों को नकारा एवं खारिज किया जा सके। वर्तमान में शैवाल, कवक तथा पौधों का "अन्तर्राष्ट्रीय नामकरण कोड" (इन्टरनेशनल कोड ऑफ नामनक्लेचर फॉर एल्गी, फंजाई एण्ड प्लांटस, आई.सी.एन., मेलबोर्न कोड 2012 या येलो कोड या संक्षेप में "कोड") प्रयोग में है, जिसे विधिवत रुप से 18वीं अन्तर्राष्ट्रीय वानस्पतिक सम्मेलन, मेलबोर्न में 2011 में अपनाया गया था। मेलबोर्न सम्मेलन से पहले अन्तर्राष्ट्रीय वानस्पतिक नामकरण कोड या आई.सी.बी.एन. प्रभावी था। मेलबोर्न कोड पारम्परिक रुप से अध्ययन किये जाने वाले सभी शैवालों, कवकों व पादपों (जो जीवाश्म भी हो सकते हैं) तथा नील हरित शैवालों (सायनोबैक्टीरिया), काइट्रिडस, उमाइसिटिस, स्लाइम मोल्ड, प्रकाश–संश्लेषित प्रोटिस्ट व उनके वर्गिकी सम्बद्ध प्रकाश–संश्लेषण विहीन समूह (टैक्सोनोमिकली रिलेटेड नॉन फोटोसिंथेटिक ग्रुप्स, एक्सेप्ट माइक्रोस्पोरिडिया) के लिए प्रयोज्य है। "कोड" के नियम कानून नहीं हैं, लेकिन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐच्छिक रुप से मान्य हैं। अर्थात विश्व के अधिकांश वनस्पतिज्ञ इसके नियमों को मानने के लिए सहमत हैं। "कोड" के नियमों के अनुसार प्रकाशित नाम अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त होते हैं।

आइये इस भूमिका के उपरान्त आइ.सी.एन. में निहित मुख्य नियमों पर चर्चा करने से पहले "कोड" के कुछ मूल–भूत सिद्धान्तों तथा पदों (टर्मस) की धारणा पर गौर करें जिससे इसे समझना आसान होगा। "कोड" कुल 62 अनुच्छेदों (आर्टिकल्स) में विभाजित है। अनुच्छेद बाध्यकारी नियम होते हैं। जबकि अनुशंसा (रिकमेन्डेशन) ऐच्छिक व मार्गदर्शक तथा टिप्पणी (नोट्स) नियमों के रूप की व्याख्या करता है। किसी भी वर्गिकी समूह (टैक्सोनोमिक ग्रुप) में किसी भी स्तर जैसे "वेराइटी", "स्पीशिज", "जीनस", "फैमिली", "किंगडम" को "कोड" में टैक्सॉन (बहुवचन–टैक्सा) कहा जाता है। नाम एवं टैक्सॉन भिन्न धारणायें हैं। टैक्सॉन वास्तविक पौधों का समूह है, जबकि नाम उस समूह को सन्दर्भित करने हेतु दिया गया एक लेबिल।

टैक्सॉन को वर्णित किया जाता है, जबकि नाम को उस टैक्सॉन के प्रयोजन हेतु प्रकाशित किया जाता है। "कोड" में नाम का किसी भी स्तर का होने के लिए उसका प्रभावी (इफेक्टिवली) एवं वैध (वैलिडली) रूप में प्रकाशित होना आवश्यक है। किसी भी टैक्सॉन का नाम एक नामकरण प्ररूप (नामनक्लेचरल टाईप) से जुड़ा होता है। प्ररूप (टाइप) उस पौधे के नमूने (तथा कुछ विशेष परिस्थितियों में चित्र) को कहा जाता है, जिससे किसी टैक्सॉन का नाम सदैव के लिए जुड़ा रहता है। "टाइप" के प्रकार हैं "होलोटाइप", "आइसोटाइप", "लेक्टोटाइप", "सिनटाइप", "निओटाइप", "इपिटाइप", "पैराटाइप" इत्यादि जिसका विस्तृत विवरण "कोड" में उपलब्ध है।

वर्ष 2012 में प्रकाशित मेलबोर्न "कोड" दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड के अन्तर्गत भूमिका है, जिसमें पूर्व के अन्तर्राष्ट्रीय वानस्पतिक सम्मेलनों तथा संपादकीय समिति के निर्णयों का सारांश है, इसके पश्चात, पूर्व के कोड से वर्तमान "कोड" के अनुच्छेदों के संख्यात्मक परिवर्तन तथा उन तिथियों की सूची है जबसे नियम प्रभावी हुए थे उपलब्ध कराया गया है। तत्पश्चात "कोड" का मूल पाठ जिसमें "कोड" के मूल सिद्धान्त (प्रीएम्बल, भूमिका), तीन प्रभाग (डिवीजन) तथा एक परिशिष्ठ (एप्पेन्डिक्स) हैं। खण्ड दो में बाकी परिशिष्ठ हैं।

उन्नीसवीं अंतर्राष्ट्रीय वानस्पतिक कांग्रेस (इन्टरनेशनल बॉटेनिकल कॉंग्रेस, संक्षेप में आइ.बी.सी.) का आयोजक चीन है। यह जुलाई 2017 में चीन के शेञ्ज्हेन शहर में आयोजित की जाएगी। जुलाई 17 से 21 तक नॉमनक्लेचरल सेशन का आयोजन होगा तथा 23 जुलाई से लेकर 29 जुलाई 2017 तक कांग्रेस की बैठक होगी। नामनक्लेचरल सेशन में इन्टरनेशनल कोड ऑफ नामनक्लेचर फॉर फंजाइ, एल्गी, एंड प्लांट्स (मेलबोर्न कोड) पर चर्चा होगी और एक नया कोड शेञ्ज्हेन कोड तैयार होगा। यह पहला ऐसा मौका है जब आइ.बी.सी. का आयोजन चीन में हो रहा हो तथा यह कांग्रेस किसी प्रगतिशील देश में हो रही हो।

मेलबोर्न कोड की संक्षिप्त रूपरेखा व इसकी कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं।

प्रस्तावना (प्रिएम्बल)

प्रभाग (डिवीजन) – सिद्धान्त (प्रिंसिपल्स) I-VI : इसमें कुल 6 सिद्धान्त दिये गए है,जो नामकरण के महत्वपूर्ण नियमों को बताते हैं।

प्रभाग (डिवीजन) – नियम और अनुशंसायें (रुल्स एण्ड रिकमेन्डेसन्स)

अध्याय (चैप्टर) एक – टैक्सा व उनके रैंक

अनुच्छेद (आर्टिकल) 1 – इसमें टैक्सा व फॉसिल (जीवाश्म) टैक्सा को परिभाषित किया गया है।

अनुच्छेद (आर्टिकल) 2 – इसमें बताया गया है की कोई भी एक जीव अगणित टैक्सा से संबन्धित है, जिनमें जाति (स्पीशीज) मुख्य आधार है।

अनुच्छेद (आर्टिकल) 3 – इसमें टैक्सा की प्रमुख श्रेणियों को क्रमबद्ध किया गया है।

अनुच्छेद (आर्टिकल) 4 – इसमें द्वितीयक श्रेणी के टैक्सा और उपश्रेणियों का वर्णन है।

अनुच्छेद (आर्टिकल) 5 – इसमें बताया गया है कि अनुच्छेद (आर्टिकल) 3 और 4 में वर्णित टैक्सा के श्रेणियों के क्रम को परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।

अध्याय (चैप्टर) दो – स्टेटस, टाइपिफिकेसन एण्ड प्रायोरिटी ऑफ नेम्स

अनुभाग (सेक्शन) 1 – स्टेटस की परिभाशायें (डिफीनेसन्स)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 6 – इसमें प्रभावी एवं वैध प्रकाशन से संबन्धित जानकारियाँ उपलब्ध है।

अनुभाग (सेक्शन) 2 – टाइपिफिकेसन

अनुच्छेद (आर्टिकल) 7, 8, 9 व 10 – इन सभी में टाइपिफिकेसन से संबन्धित नियमों का वर्णन है।

अनुभाग (सेक्शन) 3 – प्राथमिकता का नियम (रुल ऑफ प्रायोरिटी)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 11 – इसमें बताया गया है कि कुल (फैमली) तथा उसके नीचे के श्रेणि के टैक्सा का एक ही सही नाम हो सकता है, यद्यपि 9 फैमिली और एक सबफैमिली इसके अपवाद हैं।

अनुच्छेद (आर्टिकल) 12 – इसमें बताया गया है कि जब तक किसी टैक्सा का नाम प्रभावी रूप से प्रकाशित न हो वह कोड में मान्य नहीं है।

अनुभाग (सेक्शन) 4 – प्राथमिकता के सिद्धान्त की सीमाएँ (लिमिटेशन ऑफ दि प्रिन्सिपल ऑफ प्रयोरिटी)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 13, 14 व 15 – इनमें प्राथमिकता के सिद्धान्त की सीमाओं का विस्तृत वर्णन है।

अध्याय (चैप्टर) तीन – रैंक के अनुसार टैक्सा का नामकरण

अनुभाग (सेक्शन) 1 – कुल (फैमिली) के आगे के टैक्सा के नाम

अनुच्छेद (आर्टिकल) 16 व 17 – इसमे फैमिली से ऊपर की श्रेणि के टैक्सा के नामों का विस्तृत वर्णन है।

अनुभाग (सेक्शन) 2 – फैमिली, सबफैमिली, ट्राइब और सबट्राइब के नाम

अनुच्छेद (आर्टिकल) 18 व 19 – इनमें फैमिली, सबफैमिली और ट्राईब के नामकरण का विस्तृत वर्णन है।

अनुभाग (सेक्शन) 3 – वंशों के नाम और उप विभाजन (नेम्स ऑफ जेनेरा एण्ड सब डिवीजन्स ऑफ जेनेरा)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 20, 21 व 22 – इनमें वंशों के नाम और उपविभाजनों से संबन्धित नियमों और अनुशंसाओं का वर्णन है।

अनुभाग (सेक्शन) 4 – जातियों के नाम (नेम्स ऑफ स्पीशीज)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 23 – इसमें जातियों के नामकरण से संबन्धित नियमों तथा अनुशंसाओं का विस्तृत वर्णन है।

अनुभाग (सेक्शन) 5 – जातियों के नीचे के टैक्सा के नाम (नेम्स ऑफ टैक्सा बिलो द रैंक ऑफ स्पीशीज (इंफ्रास्पेसिफिक टैक्सा)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 24, 25, 26 व 27 – इनमें जातियों के नीचे के टैक्सा के नामकरणों तथा अनुशंसाओंका वर्णन है।

अनुभाग (सेक्शन) 6 – खेती की जाने वाले जीवों के नाम (नेम्स ऑफ आर्गेनिज्मस इन कल्टीवेसन)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 28 – यह खेती में उपयोग में लाई जाने वाली जातियों के नामकरण से संबन्धित है।

अध्याय (चैप्टर) चार – प्रभावी प्रकाशन (इफेक्टिव पब्लिकेशन)

अनुभाग (सेक्शन) 1 – प्रभावी प्रकाशन की शर्तें (कंडीसन्स ऑफ इफेक्टिव पब्लिकेषन)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 29 व 30 – इसमें प्रभावी प्रकाशन के नियमों और अनुशंसाओं का वर्णन है।

अनुभाग (सेक्शन) 2 – प्रभावी प्रकाशन की तिथियाँ (डेट्स ऑफ इफेक्टिव पब्लिकेषन)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 31 – इसमे प्रभावी प्रकाशन की तिथियों और अनुसंशाओं का वर्णन है।

अध्याय (चैप्टर) पांच – नामों के मान्य प्रकाशन (वैलिड पब्लिकेशन ऑफ नेम्स)

अनुभाग (सेक्शन) 1 – सामान्य प्रावधान (जनरल प्रोविजन)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 32, 33, 34, 35, 36 व 37 – इनमे मान्य प्रकाशन से संबन्धित नियमों और अनुशंसाओं का विस्तृत वर्णन है।

अनुभाग (सेक्शन) 2 – नये टैक्सा के नाम (नेम्स ऑफ न्यू टैक्सा)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 38, 39 व 40 – इनमे नए टैक्सा के नामो से संबन्धित नियम, संषोधन एवं अनुशंसाओं का वर्णन है।

अनुभाग (सेक्शन) 3 – नए संयोजन, नए रैंकों के नाम एवं प्रतिस्थापित नाम (न्यू कंबिनेशन्स, नेम्स एट न्यू रैंक, रिप्लेसमेंट् नेम्स)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 41 – इसमे नए संयोजन, नए रैंकों के नाम एवं प्रतिस्थापित नाम के लिए नियम दिये गए है।

अनुभाग (सेक्शन) 4 – विशेष समूहो के नाम (नेम्स इन पर्टिकुलर ग्रुप्स)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 42, 43, 44 व 45 – इनमे अलग–अलग विशिष्ट समूहों के नामकरण तथा प्रभावी एवं मान्य प्रकाशन से संबन्धित नियमों और अनुसंशाओं का विस्तश्त वर्णन है।

अध्याय (चैप्टर) छः – उद्धरण (साइटेशन)

अनुभाग (सेक्शन) 1 – लेखक उद्धरण (ऑथर साइटेशन)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 46, 47, 48, 49 व 50 – इनमे लेखको के उद्धरण से संबन्धित नियमों एवं अनुशंसाओं का विवरण दिया गया है।

अनुभाग (सेक्शन) 2 – उद्धरणों की सामान्य संस्तुतियाँ (जनरल रिकमेनडेशन्स ऑन साइटेशन)

संस्तुति (रिकमेन्डेशन) 50ए, 50बी, 50सी, 50डी, 50ई, 50एफ व 50जी – इनमे उद्धरणों से संबन्धित अनुशंसाओं का विवरण है।

अध्याय (चैप्टर) सात– नामों की अस्वीकृतियाँ (रिजेक्सन ऑफ नेम्स)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57 व 58 – इनमे अस्वीकृत नामों से संबन्धित विवरण है।

अध्याय (चैप्टर) आठ– एनामार्फिक या प्लीओमार्फिक जीवन चक्र वाले कवकों के नाम (नेम्स ऑफ एनामार्फिक फंजाई ऑर फंजाई विथ ए प्लीओमार्फिक लाइफ साइकल)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 59 – इसमे एनामार्फिक एवं प्लीओमार्फिक जीवन चक्र वाले कवकों के नामों से संबन्धित नियम दिये गए है।

अध्याय (चैप्टर) नौ – वर्तनी एवं नामों के लिंग (आर्थोग्राफी एण्ड जेण्डर ऑफ नेम्स)

अनुभाग (सेक्शन) 1 – वर्तनी (आर्थोग्राफी)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 60 व 61 – इनमे वर्तनी से संबन्धित नियमों एवं अनुसंशाओं का विस्तश्त विवरण है।

अनुभाग (सेक्शन) 2 – लिंग (जेन्डर)

अनुच्छेद (आर्टिकल) 62 – इसमे नामों के लिंग से संबन्धित नियमों एवं अनुसंशाओं का वर्णन है।

प्रभाग (डिवीजन) III – कोड के विधान (प्रोविजन फॉर दि गवर्नेंस ऑफ दि कोड)

परिशिष्ठ (एप्पेंडिक्स) 1 – संकर जतियों के नाम (नेम्स ऑफ हायब्रिड्स)

एच.1, एच.2, एच.3, एच.4, एच.5, एच.6, एच.7, एच.8, एच.9, एच.10, एच.11, एच.12

शब्दावली (ग्लॉसरी) – यहाँ कोड में आए विभिन्न शब्दों व पदों की परिभाषा/ व्याख्या उपलब्ध है।

पूर्व के कोड का शीर्षक बदलने व परिशिष्ठ (एप्पेन्डिसेज) को मुख्य भाग से अलग करने के अतिरिक्त मेलबोर्न "कोड" में कुछ महत्वपूर्ण निर्णयों के माध्यम से जो संशोधन या नए नियम लाये गए है उनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण है।

1. जनवरी, 2012 से किसी भी नामकरण का केवल इलेक्ट्रॉनिक रूप में प्रकाशित होना भी मान्य एवं वैध होगा ।

नामकरण अनुभाग ने इस बात पर अपनी मंजूरी दी कि अब पादपों, कवको और शैवालों के नए नामों (तथा टाइप) का प्रकाशन मुद्रित रूप में कराना अनिवार्य नहीं होगा, बल्कि किसी भी नामकरण को केवल इलेक्ट्रॉनिक रूप में प्रकाशित करना भी अब प्रभावी प्रकाशन (इफेक्टिव पब्लिकेशन) माना जाएगा। किन्तु ऑनलाइन प्रकाशन किसी ऐसी पत्रिका या पुस्तक में होना चाहिए, जिसका आइ.एस.एस.एन (इन्टरनेशनल स्टैंडर्ड सीरियल नंबर) या आई.एस.बी.एन. (इन्टरनेशनल स्टैंडर्ड बुक नंबर) हो।

2. केवल लैटिन की जगह लैटिन या अंग्रेजी – मेलबोर्न कोड से पहले किसी नए टैक्सा के नाम को (जीवाश्मों को छोड़कर) प्रभावी रूप से प्रकाशित करने के लिए उसका लैटिन भाषा में विवरण या व्याख्या देना अनिवार्य होता था। किन्तु मेलबोर्न कोड ने इस बाध्यता को खत्म करते हुए यह निश्चित किया है कि अब किसी नए टैक्सा के नामकरण को प्रभावी रूप से प्रकाशित करने के लिए उसका विवरण या व्याख्या लैटिन या अंग्रेजी

में देना होगा। यह नियम कोड के अंतर्गत आने वाले समस्त जीव समूहों के लिए लागू होगा।

3. एक कवक – एक नाम

मेलबोर्न कोड से पहले किसी एक ही कवक को उसके जीवन की लैंगिक और अलैंगिक अवस्थाओं के आधार पर अलग–अलग नाम दिया जाता था। जबकि वे लैंगिक और अलैंगिक अवस्थाएँ एक ही कवक की अलग–अलग जीवन दशाओं को दर्शाता था। किन्तु इन दोनों अवस्थाओं की शारीरिकी में इतनी विभिन्नता होती है की इन्हें एक दूसरे से जोड़ पाना अत्यंत दुष्कर है। किन्तु आज के इस आणविक विज्ञान के युग ने स्थिति को इस हद तक परिवर्तित कर दिया है कि इनकी लैंगिक एवं अलैंगिक अवस्थाओं में विभेद कर पाना संभव हो गया है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए मेलबोर्न "कोड" में यह निर्णय लिया गया है कि एक कवक को एक ही नाम दिया जाएगा चाहे वह लैंगिक अवस्था में हो या अलैंगिक। दुनिया भर के तमाम कवक वैज्ञानिकों ने इस पर सहमति जताई है और सराहना भी की है।

4. एक जीवाश्म – एक नाम

कई वर्षों से जीवाश्मों के नामकरण हेतु "कोड" में विशिष्ट नियम रहे हैं, जिसका कारण एक ही जाति के जीवाश्म के अलग–अलग भागों का अलग–अलग जगहों पर अलग–अलग समय पर पाया जाना रहा है। इन्ही समस्याओं के कारण मॉर्फोटैक्सा को अलग–अलग नाम दिये जाते रहे है। मॉर्फोटैक्सा एक ही पादप जीवाश्म के भिन्न–भिन्न भाग, विभिन्न अवस्थाएँ या भिन्न संरक्षित दशाएँ हो सकती है। यदि इन जीवाश्मों (मॉर्फोटैक्सा) के बीच रासायनिक रूप से संबंध स्थापित भी हो जाता था तब भी उन सब को एक नाम देने के लिए कोई प्रावधान नहीं था। किन्तु मेलबोर्न "कोड" ने मॉर्फोटैक्सा के विचार को ही खत्म कर दिया है और अब दो या अधिक मॉर्फोटैक्सा को एक ही नाम दिया जा सकता है व दिया जाएगा।

5. नए कवकों के नामों का पंजीकरण

कवक विज्ञानियों में ऑनलाइन डेटाबेस मायकोबैंक का उपयोग लगातार बढ़ता जा रहा है। इसका प्रयोग वे नए कवकों के नामों, विवरणों और चित्रों के ऑनलाइन पंजीकरण करने में करते हैं। इस पंजीकरण के फलस्वरूप उन्हें एक संख्या प्राप्त होती है जिसका प्रयोग वे उन नामों के उद्धरण (साइटेशन) में कर सकते हैं। इंडेक्स फंगोरम भी इन संख्याओं का उपयोग लाइफ साइंस आइडेंटिफायर के रूप में करता है। मेलबोर्न "कोड" के अनुसार नए कवकों के नामों के प्रकाशन को तभी मान्य माना जाएगा जब किसी रिपोजिटरी (फंगल) द्वारा उसे एक अद्वितीय संख्या प्रदान की गयी हो और इस संख्या का प्रकाशन में वर्णन हो।

स्वच्छ हवा, धरती हरी
निर्मल पानी होए।
रक्षा करे जो जीव जगत की
सो ही मानव होए ।।

लिलियम पौलिफिल्लम : उत्तर–पश्चिम हिमालय की स्थानीय, संकटापन्न एवं औषधीय जाति का सूक्ष्म प्रवर्धन विधि द्वारा संरक्षण

गिरिराज सिंह पंवार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

वंश *लिलियम*, लिलियेसी कुल का बहुवर्षीय सदस्य है और विश्व में इस शाकीय जाति की 110 जातियाँ पायी जाती हैं। वंश *लिलियम* का भौगोलिक वितरण मुख्यतः उत्तरी गोलार्ध के उत्तरी अमेरिका यूरोप एवं एशिया महाद्वीप के समशीतोष्ण भागों में है। *लिलियम पौलिफिल्लम* उत्तर–पश्चिम हिमालय की स्थानीय, संकटापन्न एवं औषधीय जाति है, जिसे काकोली या क्षीर काकोली नाम से जाना जाता है। *लिलियम पौलिफिल्लम* अष्टवर्गा उपचार तंत्र की आठ पादप जातियों (*मैलेक्सिस एक्यूमिनेटा, मैलेक्सिस मस्सीफेरा, हैबीनेरिया एजवर्थी, हैबीनेरिया इन्टरमीडिया, पौलीगोनेटम सिरहीफोलियम, पौलीगोनेटम वर्टीसिलेटम, फ्रीटिलेरिया रॉयली*) में से एक है और सामान्यतः मृदा में ह्यूमस की अधिकता वाले वनों की सतह पर 2100 से 3000 मीटर समुद्र तल से ऊँचाई वाले स्थानों पर पाया जाता है। यह देखने को मिला है कि *लिलियम पौलिफिल्लम* ठंडी, नम, भुरभुरी एवं अम्लीय मृदा (पी.एच. 6.5–6.8) में उत्तरी हिमालय की हल्की ढ़लानों पर देवदार के पौधों की छांव में पाये जाते हैं।

लिलियम पौलिफिल्लम बहुवर्षीय एक मीटर ऊंचाई वाला शाकीय कन्द है, जिसका तना खोखला एवं पत्तियां मांसल होती हैं। पुष्प दुधिया रंग के होते हैं और उन पर बैंगनी रंग के धारी सदृश धब्बे लगे होते हैं। पुष्प सुगन्धित एवं मधुरस ग्रन्थि युक्त होते हैं। फल 3–6 सेमी लम्बा तथा पार्श्व में तीन ऊर्ध्वाधर खांचे होती हैं और एक कैप्सूल में लगभग 100 भूरे रंग के बीज होते है। *लिलियम पौलिफिल्लम* का कंद भूमिगत और मांसल शल्कों से निर्मित होता है। सभी शल्क एक आधारीय प्लेट से जुड़े होते हैं, जिसकी निचली सतह से जड़ें निकली रहती हैं।

वितरण – *लिलियम पौलिफिल्लम* का वितरण मुख्यतः एशिया महाद्वीप में अफगानिस्तान, पाकिस्तान, नेपाल एवं भारत के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में पाया जाता है। भारत के हिमालयी क्षेत्रो में यह जाति उच्च हिमालयी समशीतोष्ण स्थानों में कुछ चयनित स्थानों पर ही देखी गयी है, जिसमें हिमाचल प्रदेश (धौलधार, शिमला, फुल्गा, कुल्लू), जम्मू–कश्मीर (चतरू एवं डोडा) एवं उत्तराखण्ड (चकराता, रथ, चाकिसैण, गर्जिया, पिथौरागढ़, गंगोत्री, चीड़वासा, हर्षिल, फूलों की घाटी, धनौल्टी, लाम्बीधार एवं कद्दूखाल) हैं।

सक्रिय संघटक एवं औषधीय उपयोग – *लिलियम पौलिफिल्लम* का कन्द लिनालूल एवं अल्फा–टर्पिनियोल से परिपूर्ण है। इसका उपयोग आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथिक, पारम्परिक एवं आधुनिक चिकित्सा तंत्र की विभिन्न औषधियों को बनाने में किया जाता है। इसके कन्द में प्रति–सूजक गुण पाया जाता है अतएव इसे विभिन्न शारीरिक विकारों के उपचार के लिए उपयोग में लाया जाता है, जैसे शीतक, गैलेक्टोगाग, कफ

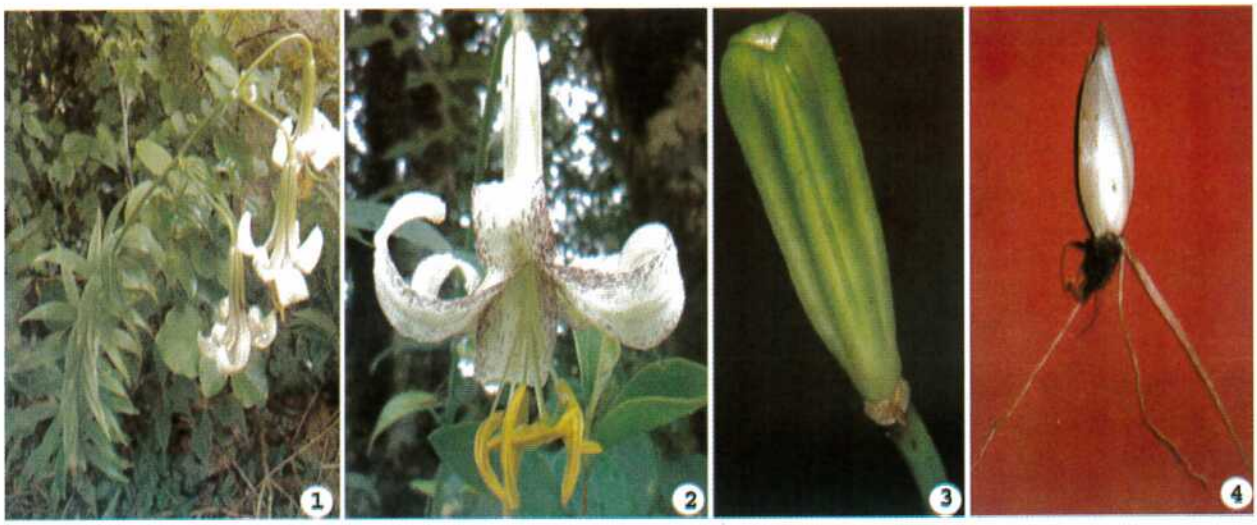

लिलियम पौलिफिल्लम की विभिन्न ऋतुजैविक अवस्था : 1. *लिलियम पौलिफिल्लम* का पादप, 2. परिपक्व पुष्प, 3. कैप्सूल, 4. परिपक्व कंद

निवारक, कामोत्तेजक, मूत्रवर्धक, ज्वरनाशक, खांसी, फेफड़ों की सूजन, वीर्य की कमी, ज्वलन संवेदना, हाइपरडिप्सिया, रूक–रूक कर ज्वर आना आदि। इसके कन्द को च्यवनप्राश एवं रिजुविनता क्रीम बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में सर्दी से बचने के लिए इसके कन्द को कच्चा खाया जाता है तथा इसके फूलों को पूजा हेतु प्रयुक्त किया जाता है।

***लिलियम पौलिफिल्लम* पर संभावित खतरे** – आज यह जाति आज कुछ ही स्थानों पर सिमट कर रह गयी है, जिसके मुख्य कारणों में इसके कन्द का अतिदोहन, पशुओं की अनियंत्रित चराई, प्राकृतिक एवं मानवजनित आपदाओं से आवासीय विघटन, धीरे–धीरे सूक्ष्म वातावरण में परिवर्तन और हमलावर पादप जातियों का फैलाव आदि हैं। फूलों एवं प्रकन्द को बीज बनने एवं झड़ने से पहले तोड़/उखाड़ लेना तथा स्थानीय लोगों द्वारा अपनी आय के लिए इसके प्रकन्द का व्यापार करना आदि इसके अस्तित्व पर संकट को और भी गहरा रहे हैं। वनों के कटने एवं पादप समुदाय में परिवर्तन होने से यहां के सूक्ष्म वातावरण पर प्रभाव देखने को मिला है, जिसकी वजह से केवल इस जाति के विकास एवं पुष्पन पर असर देखने को ही नहीं मिला है अपितु यहाँ के पराग संवाहकों पर भी खासा असर पड़ा है। इसके अतिरिक्त मोल्ड कवकों द्वारा संक्रमण एवं इसके बीजों में संरचना एवं कार्यिकी युक्त सुषुप्तता भी इस जाति के विकास एवं अवस्थापन में बाधा साबित होती पायी गयी है।

***लिलियम पौलिफिल्लम* की विभिन्न ऋतुजैविक (फिनोलॉजिकल) अवस्थायें** – *लिलियम पौलिफिल्लम* उच्च हिमालयी समशीतोष्ण स्थानों की शाकीय जाति है। इसके बीज नवम्बर में परिपक्व होने के पश्चात कैप्सूल से गिरकर जमीन पर बिखर जाते हैं। ये बीज 7–8 माह तक सुषुप्त अवस्था में रहते हैं और अंकुरण से पूर्व इन बीजों को अधिक ठंडे तापमान की आवश्यकता होती है। सर्दियों में ये स्थान बर्फ से ढ़के होते है और तत्पश्चात जून माह में ये बीज अंकुरित होने प्रारम्भ हो जाते हैं। यह देखा गया है कि *लिलियम पौलिफिल्लम* के बीजों से प्रथम पत्ती के विकास तक जाति को दो वृद्वि काल की आवश्यकता होती है। बीजों के जमने के 50 दिन बाद कंद का विकास प्रारम्भ होता है तथा पूरे वर्षा काल में कंद का आकार बड़ा होते जाता है और साथ ही साथ कंद में शल्कों तथा जड़ों का विकास सितम्बर माह में हो जाता है। इस प्रकार इस जाति के पौधे 7–8 साल तक कायिक अवस्था में रहकर अपना पूर्ण विकास करते है। 7–8 साल पश्चात मई–जून के माह में लगभग एक मीटर लम्बे पौधे के ऊपरी सिरे पर फूल खिलने प्रारम्भ हो जाते हैं और 15–20 दिन तक खिले रहते हैं। तत्पश्चात फलों एवं बीजों का विकास एवं वितरण नवम्बर माह तक चलता रहता है।

***लिलियम पौलिफिल्लम* का पादप ऊतक संवर्धन विधि द्वारा संरक्षण** – *लिलियम पौलिफिल्लम* की लगातार घटती संख्या, इस पर मंडराते हुऐ खतरों, बढ़ती औषधीय मांग एवं इसके स्थानीय एवं संकटापन्न स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस जाति को पादप ऊतक संवर्धन विधि द्वारा संरक्षित करके प्रकृति में इसके अस्तित्व को बचाये रखने का प्रयास किया गया है। *लिलियम पौलिफिल्लम* के ऊतक संवर्धन विधि की विभिन्न अवस्थायें निम्नलिखित हैं।

किण प्रेरण (कैलस इंडक्शन) – किण संवर्धन के लिये 2, 4–डी और बेन्जोइल अमीनो प्यूरीन (बी.ए.पी.) से संपूरित किये गये एम. एस. माध्यम (पादप वृद्धि माध्यम) में जीवाणु रहित शल्कों के छोटे–छोटे (0.5 सेमी) विभाज्योतक भागों को स्थापित किया जाता है। किण संवर्धों को स्थापित करने के करीब एक से दो माह पश्चात पूर्ण विकसित किण प्राप्त हो जाते हैं। किण के प्रचुर मात्रा में विकास के लिए उन्हें पुनः पादप वृद्धि नियंत्रकों युक्त एम. एस. माध्यम में विकसित किया जाता है और अन्त में करीब एक माह बाद हल्के पीले रंग का पूर्ण विकसित किण प्राप्त हो जाता है।

तना प्रेरण (शूट इंडक्शन) – *लिलियम पौलिफिल्लम* के पूर्ण विकसित किण को बी. ए. पी. एवं एन. ए. ए. युक्त पादप वृद्धि नियंत्रकों से संपूरित एम. एस. माध्यम में प्रतिस्थापित कर प्रेरित किया जाता है। प्रतिस्थापित करने के करीब एक सप्ताह बाद पूर्ण विकसित किणों से *लिलियम पौलिफिल्लम* के तनों का विकास प्रारम्भ हो जाता है। विकसित तनों को 25 से 30 दिनों के बाद उप–संवर्धित किया जाता है और अन्त में करीब 5 से 10 पूर्ण विकसित तने प्राप्त होते हैं।

मूल प्रेरण (रूट इंडक्शन) – ऊतक संवर्धन विधि द्वारा विकसित *लिलियम पौलिफिल्लम* के तनों को जड़ों के विकास हेतु मूल प्रेरण माध्यम में प्रतिस्थापित किया जाता है। मूल प्रेरण माध्यम विभिन्न ऑक्जिन जैसे आइ.बी.ए., आइ.ए.ए. एवं एन.ए.ए. की विभिन्न सान्द्रताओं से संपूरित किये गये विभिन्न लवणों युक्त एम. एस. पोषक माध्यम (पूर्ण, अर्द्ध एवं चौथाई मात्रा) में विकसित तनों को प्रतिस्थापित किया जाता है। पूर्ण विकसित तनों को प्रतिस्थापित करने के 10–12 दिन पश्चात अर्द्ध लवणों युक्त एम.एस. पोषक माध्यम में तने के निचले सिरे से जड़े निकलनी प्रारम्भ हो जाती हैं और करीब एक माह में पूर्ण विकसित जड़ें प्राप्त हो जाती हैं।

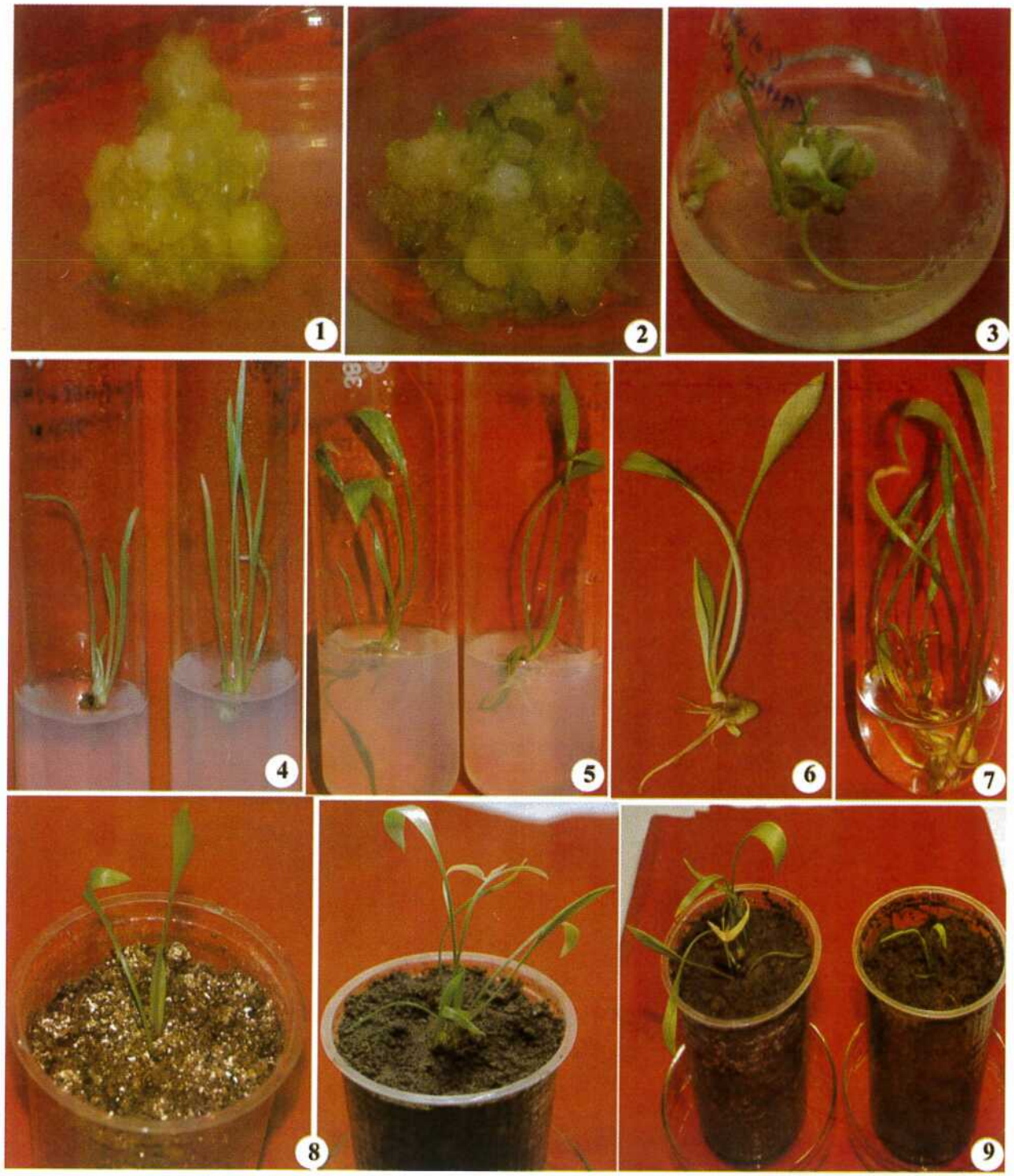

लिलियम पौलिफिल्लम का पादप ऊतक संवर्धन : 1 पूर्ण विकसित किण, 2. किण से तनों का सूत्रपात, 3. तनों का विकास, 4., 5. एवं 6. जड़ों का विकास, 7. *लिलियम पौलिफिल्लम* का पूर्ण विकसित पौधा हौगलैण्ड विलयन में 8. और 9. पौधों का खुले वातावरण में अनुकूलन।

ऊतक संवर्धन विधि द्वारा विकसित पौधों का पारिस्थितिकीय अनुकूलन – पूर्ण रुप से विकसित *लिलियम पौलिफिल्लम* के पौधों को संवर्धन नलिका से निकालकर पहले भली–भॉति धोकर साफ कर लेते हैं और उसके उपरान्त उन्हें जीवाणु रहित वर्मीकुलाइट एवं मृदा से भरे गमलों में स्थानान्तरित किया जाता है। इन गमलों को प्रारंभ में आर्द्रता बनाये रखने के लिए एक सप्ताह तक पॉलीथीन से ढक कर रखते हैं। एक माह पश्चात इन पौधों को मृदा से भरे गमलों में हरित गृह में स्थानान्तरित किया जाता है। हौगलैण्ड विलयन की 1:10 सान्द्रता के घोल वाला पानी पौधों को हर तीन दिन बाद दिया जाता है। धीरे–धीरे यह पौधे हरित गृह के वातावरण में अपने आप को ढाल लेते हैं और अन्ततः इन पौधों को नर्सरी या वनस्पति उद्यान में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। एक बार खुले वातावरण में अनुकूलित हो जाने के पश्चात इन पौधों को इनके प्राकृतिक आवास में स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

निष्कर्ष एवं भावी संभावनायें – *लिलियम पौलिफिल्लम* के संरक्षण के लिए ऊतक संवर्धन के साथ–साथ यह भी सुनिश्चित करना जरूरी है कि इसके प्राकृतिक–वास को मानव गतिविधियों से सुरक्षित किया जाये तथा इसकी औषधीय मांग को पूरा करने के लिये समान वातावरणीय क्षेत्र में अधिक से अधिक औषधीय पादप संरक्षण क्षेत्र (एमपीसीए) विकसित किये जायें और साथ ही हिमालयी क्षेत्रों में इसकी खेती को बढ़ाया जाये, जिससे खेती द्वारा संरक्षण जैसे प्रयासों को सार्थक किया जा सके। इसके साथ–साथ हिमालयी क्षेत्रों में वास करने वाले जनजातीय समुदायों को इस अमूल्य धरोहर एवं इसके व्यापक महत्ता के बारे में जागरूक किया जाना चाहिये जिससे इनका स्व–स्थाने (इन–सीटू) संरक्षण सुनिश्चित हो सके।

पशु–पक्षी तथा इंसान,
हरियाली ही जीवन दान।
पेड़ ही तो जीवन है,
पेड़ है धरती की शान।।

शोधपत्रों व पत्रिकाओं की प्रभाविकता का मूल्यांकन

मनोहर पाठक[1], आशुतोष कुमार वर्मा[2], एस. एस. दास[3], कुमार अविनाश भारती[4]

[1]सी.एस.आई.आर.–राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं सूचना स्त्रोत संस्थान, नई दिल्ली

[2]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद, [3]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मुख्यालय, कोलकाता

[4]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा

ज्ञान और विज्ञान जगत में पत्र और पत्रिकाओं का हमेशा से ही बड़ा महत्व रहा है और ये जन–जन तक ज्ञान और विज्ञान को पहुँचाने का अतुल्य माध्यम रहे हैं। अतः इनकी गुणवत्ता व प्रभाविकता का निर्धारण अति आवश्यक है। क्योंकि ये एक ऐसा माध्यम है, जो विज्ञान जगत में किये जा रहे नवाचार के प्रचार प्रसार का आधार है। वर्तमान में गुणवत्ता एवं प्रभाविकता के निर्धारण हेतु इम्पैक्ट फैक्टर, इमीडिएसी इंडेक्स और एच–इंडेक्स जैसे मानकों का उपयोग किया जा रहा है, जिनका विवरण निम्नवत है ।

इम्पैक्ट फैक्टर (आई एफ) :– यह मानक फिलडेल्फिया, पेनिनसिल्वेनिया के थामसन और रियूटर संस्थान जिसे पहले 'द इंस्टीट्यूट आफ साइंस इनफार्मेशन' के नाम से जाना जाता था, के द्वारा विकसित किया गया है। इसका विचार सर्व प्रथम यूजीन गारफील्ड ने 'सांइस' नामक शोध पत्रिका में 1955 में प्रकाशित किया और सन 1960 में इरविंग एच. सियेर और यूजीन गारफील्ड ने इसे किसी शोध पत्रिका के उद्धरण अनुक्रमणिका (साइटेशन इंडेक्स) के निर्धारण के लिए विकसित किया। अब उद्धरण अनुक्रमणिका की जगह जर्नल साइटेशन रिपोर्ट (जे.सी.आर.) शब्द का उपयोग किया जाता है। इम्पैक्ट फैक्टर वास्तविकता में प्रकाशित शोध पत्रों की संख्या एवं जे.सी.आर. का अनुपात होता है। इसकी गणना निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से की जाती है–

इम्पैक्ट फैक्टर = स/अ+ब

उदाहरण–किसी शोध पत्रिका के वर्ष 2014 के इम्पैक्ट फैक्टर की गणना

जहाँ अ = वर्ष 2012 में प्रकाशित शोध पत्रों की संख्या (माना 101), ब = वर्ष 2013 में प्रकाशित शोध पत्रों की संख्या (माना 106)।
स = वर्ष 2012, 2013 में प्रकाशित शोध पत्रोंका 2014 में कुल साइटेशन (उद्धरण)। (माना 2012 के लिए शोध पत्रों के लिए 54 , माना 2013 के लिए शोध पत्रों के लिए 31)

शोध पत्रिका का वर्ष 2014 के लिए इम्पैक्ट फैक्टर= 54+31/101+106 = 0.411

कुछ विषयों की शोध पत्रिका का 2 वर्ष का इम्पैक्ट फैक्टर उस पत्रिका की प्रभाविकता का मूल्यांकन सही रूप से नहीं कर पाता है, वहाँ पर 5 वर्षों का इम्पैक्ट फैक्टर लिया जाता है (तालिका–1)। इसकी गणना हेतु सूत्र निम्नवत है–

इम्पैक्ट फैक्टर = पिछले 4 वर्षों मे प्रकाशित शोध पत्रों का कुळ उद्धरण (कुल साइटेशन)/पिछले 4 वर्षों में प्रकाशित शोध पत्रों की संख्या

इमीडिएसी इंडेक्स – इमीडिएसी इंडेक्स कि सी भी शोध पत्रिका में उस वर्ष में प्रकाशित शोध पत्रों के लिए औसत उद्धरण (एवरेज साइटेशन) को प्रदर्शित करता है। इसकी गणना निम्नलिखित सूत्र के माध्यम से की जाती है–

इमीडिएसी इंडेक्स = उस वर्ष मे प्रकाशित शोध पत्रों के लिए कुल उद्धरण/उस वर्ष में प्रकाशित शोध पत्रों की कुल संख्या

उदाहरण– किसी शोध पत्रिका की इमीडिएसी इंडेक्स की वर्ष 2014 के लिए गणना – माना वर्ष 2014 में प्रकाशित शोध–पत्रों कुल उद्धरण (साइटेशन) = 10, वर्ष 2014 में प्रकाशित कुल शोध–पत्र = 50, इसलिये इमीडिएसी इंडेक्स= 10/50 = 0.2

एच–इंडेक्स – इस इंडेक्स का प्रस्ताव 2005 में जे. ई. हिर्च ने रखा था। इसका उपयोग किसी भी लेखक, शोध पत्रिका एवं संस्थान का शोध कार्य के संदर्भ में मूल्यांकन के लिए किया जाता है। एच–इंडेक्स किसी भी शोध पत्र का मात्रात्मक एवं गुणात्मक मूल्यांकन करता है ।

उदाहरण – अगर किसी वैज्ञानिक का एच–इंडेक्स 5 है, तो इससे यह पता चलता है कि उसके 5 शोध पत्रों ने कम से कम 5 उद्धरण (साइटेशन) प्राप्त किए है।

यद्यपि उपरोक्त वर्णित मानक आदर्श मानक नही है, फिर भी इन मानकों का अध्ययन कर हम किसी भी शोध पत्र, शोध पत्रिका की प्रभाविकता का अनुमान लगा सकते हैं। और आज के परिपेक्ष में इन की प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता है।

तालिका–1 इम्पैक्ट फैक्टर, इमीडिएसी इंडेक्स, एच–इंडेक्स और शोध पत्रों की संख्या

शीर्षक	इम्पैक्ट फैक्टर 2014	इम्पैक्ट फैक्टर 5 वर्ष	इमीडिएसी इंडेक्स	2014 में, पूर्व में प्रकाशित शोध पत्रों का साइटेशन					पूर्व के वर्षों में प्रकाशित शोध पत्रों की संख्या				
				2009	2010	2011	2012	2013	2009	2010	2011	2012	2013
1.इंडियन जर्नल ऑफ ट्रडिशनल नॉलेज	0.411	0.595	0.052	76	113	67	54	31	114	139	113	106	76
2.इंडियन जर्नल ऑफ एक्सपेरिमेन्टल बायोलॉजी	0.835	1.147	0.077	180	240	136	111	97	140	152	125	118	131
3.करेंट साइंस	0.926	0.944	0.407	372	341	343	319	266	378	355	373	285	347
4.जर्नल ऑफ बायो साइंसेज	2.064	2.067	0.306	164	143	163	279	109	82	60	85	94	94
5.नेचर	41.456	41.296	9.585	33000	35148	37665	41924	29753	866	862	841	869	857

वनस्पति वाणी अंक 25 : 97-100(2016)

पतंगी मांझे और धागों से भारतीय वनस्पति उद्यान में उत्पन्न खतरे

बसंत कुमार सिंह, सी. एम. सबापथी, अरविंद प्रमाणिक एवं संजय कुमार[1]
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा
[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

पतंग उड़ाना मनोरंजन का एक पुराना साधन है, जिसकी उत्पत्ति पाँचवीं शताब्दी में चीन में हुई थी, जो बाद में काफी प्रचलित हुआ और व्यापारियों के द्वारा विस्तारित होकर कोरिया से होते हुए पूर्वी एशिया के मध्य भारत पहुँचा। भारत में पतंग उड़ाने का प्राथमिक प्रमाण 1500 शताब्दी के मुगलकालीन लघु चित्रों में मिलता है। वर्तमान समय में ढेरों राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं के साथ यह अपनी वैभवता के शिखर पर पहुँच चुका है। भारतीय समाज में यह काफी प्रचलित हुआ है और विभिन्न धार्मिक त्योहारों से जुड़ गया है। तकनीक और सभ्यता के विकास के साथ पतंग उड़ाने की सामग्रियों में भी काफी बदलाव आया है। वर्तमान समय में नायलन की सुतली या माँझे का प्रयोग पतंग की डोर के रूप में किया जाता है, जो इसे काफी मजबूत और टिकाऊ बनाती है, जो पतंग के खेल में काफी आवश्यक है। लेकिन ऐसी डोर का प्रयोग आचार्य जगदीश चंद्र बोस, भारतीय वनस्पति उद्यान में संरक्षित विरल एवं स्थानिक पौधों के अस्तित्व पर घातक सिद्ध हो रहा है। आचार्य जगदीश चंद्र बोस, भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में दक्षिण–पूर्व एशिया का सबसे बड़ा और पुराना वनस्पति उद्यान है, जिसकी हरियाली और जलाशय 273 एकड़ में विस्तृत है। 228 वर्षों से सक्रीय रूप से पर्यावरण एवं जैव विविधता संरक्षण को समर्पित यह वनस्पति उद्यान 1377 पादप जातियों के अंतर्गत 14122 जीवित पादपों का सजीव संग्रहालय है। यह उद्यान तीन तरफ मानव आवासों तथा एक तरफ हुगली नदी से घिरा हुआ है। उद्यान के चारों तरफ जनसंख्या वृद्धि के निरंतर बढ़ते दवाबने वनस्पति उद्यान के परिवेश को विभिन्न तरीके से प्रभावित किया है। घरेलू नालों से प्रदूषण की बढ़ी हुई मात्रा ने उद्यान की झीलों में मछली मरने तथा फाइटोप्लेक्टॉन के विकास की दर को काफी बढ़ा दिया है। साथ ही साथ एक नए प्रकार की मानवीय समस्या उद्यान में परीलक्षित हो रही है, जिसकी प्रबलता पिछले कुछ वर्षों में काफी बढ़ गई है। प्रत्यक्ष रूप से सरल दिखने वाला पतंग का खेल, विरल एवं स्थानिक

1., 2., 3., भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में विभिन्न पेड़ों और क्षुप वनस्पतियों पर आरोहित लतायें, 4. पंतगबाजी में प्रयोग किया जाने वाला मांझा, 5. पतंगी मांझे की चपेट में आकर वृक्ष पर मृत अवस्था में झूलता एक तोता (साभार– भाविक थाकेर, मुंबई, महाराष्ट्र)।

पौधों और पक्षियों के अस्तित्व के सामने खतरा बन के खड़ा हो गया है। क्षतिग्रस्त, परित्यक्त पतंग की डोर नाजुक लताओं के लिए एक उत्तम मचान के रूप में कार्य करता है और लताओं को पेड़ों के शीर्ष पर पहुँचने का सरल मार्ग दे देता है। सहायक प्रशाखाओं के क्रमशः निर्माण तथा जमीन से अन्य लताओं के विकास के साथ ही मुख्य पेड़ इन लताओं से पूरी तरह ढक जाता है। और इस तरह से सूर्य की रोशनी पेड़ के पत्तों तक सही से नहीं पहुँच पाती। यह परिपाक दर पेड़ के विकास की गति को धीमा कर देती है। साथ ही पेड़ों के फूलों की चमक को ढक कर तथा परागणकारी जन्तुओं जैसे भंवरों, तितलियों, चिटिंयों और पक्षियों को फूलों तक पहुँच ने में बाधा उत्पन्न कर परागण की क्रिया को असफल करती हैं। नतीजा होता है कि पुष्पों का सही से परागण नहीं हो पाता है, जो इनके प्रजनन की दर को कम कर देता है। विरल पौधों के संरक्षण में ऐसी स्थिति काफी घातक सिद्ध हो रही है।

मांझा पतंग की डोर के रूप में प्रयुक्त किया जाने वाला धागा है, पहले सूती धागे का प्रयोग किया जाता था किन्तु अधिक मजबूती देने के लिये काफी समय से सीसा और धातु से कोटिंग किये एक विशेष प्रकार के नायलोन के धागे को इस हेतु प्रयोग किया जा रहा है, इसकी लोकप्रियता इसलिये भी है क्योंकि यह पारम्परिक धागे से सस्ता और अधिक टिकाऊ होता है। धातु और सीसेकी कोटिंग इसे और भी अधिक खतरनाक बना देती है जो न केवल आसमान में उम्मुक्त उड़ते पक्षियों के लिये ही नहीं अपितु आम जनमानस के लिये भी जानलेवा बन चुका है। आमतौर पर इस प्रकार के मांझे को बाजार में चाइनीज मांझे के नाम से बेचा और खरीदा जाता है।

भारतीय वनस्पति उद्यान में अध्ययन के दौरान यह पाया गया है कि *एंटीगोनोन लेप्टोपस* (पॉलिगोनेसी), *बिग्नोनिया उनग्यूईसकैटी* (बिग्नोनिऐसी), *कोकोलूस हिरसूटस* (मेनिस्पर्मेसी), *डायोस्कोरिया बुल्बिफेरा* (डायोस्कोरिऐसी), *हेमिडेस्मस इंडिकस* (एस्क्लीपियाडेसी), *इक्नोकार्पस फ्रुटिसेन्स* (एपोसायनेसी), *आईपोमिया क्वामोक्लीट* (कोन्वोवुलेसी), *मेरिमिया विटिफोलिया* (कोन्वोवुलेसी), *मिकानिया कॉर्डेटा* (एस्टेरेसी), *ऑपरकुलिनाट्रपेथम* (कोन्वोवुलेसी), *पोराना पैनिकुलेटा* (कोन्वोवुलेसी), *स्टीफेनिया जैपोनिका* (मेनिस्पर्मेसी), *टिलियाकोरा रेसीमोसा* (मेनिस्पर्मेसी), *टिनोस्पोरा कार्डीफोलिया* (मेनिस्पर्मेसी) एवं *ट्राइकोसेन्थस ब्रैक्टियेटा* (कुकरबिटेसी) जैसी लताएं इन पतंग की डोर की सहायता से पेड़ों पर चढ़ जाती हैं। अध्ययन में यह भी पाया गया है कि ये लताएँ बिना किसी सहारे के चिकनी सतह वाले तना धारी इन लंबे पेड़ों पर मुश्किल से चढ़ पायेंगे। अतएव इन लताओं को पेड़ों के शीर्ष पर पहुँचाने में निःसंदेह पतंग के डोर अथवा मांझे की महत्वपूर्ण भूमिका है। पतंगबाजी का खेल न केवल वनस्पतियों के लिये अपितु आकाश में उनमुक्त उड़ने वाले पक्षियों के लिये भी जानलेवा बनता जा रहा है। हाल ही में मकर संक्राति के पर्व पर जयपुर में आपरेशन बर्ड स्काई चलाया गया और पतंगबाजी से घायल हुये सैकड़ों पक्षियों का उपचार किया गया। उद्यान में भी पतंग की डोर पक्षियों के लिए भी घातक सिद्ध हुई है। अध्ययन के दौरान बहुत

1

2

1. एवं 2. उद्यान में वृक्ष पर झूलती कटी हुई पतंग और मांझे के धागे के सहारे आरोहित लता

सारे पक्षियों को पतंग की डोर में उलझा हुआ पाया गया है, जिसने उनके पंखों को स्थाई तौर पर क्षति पहुँच जाती है और बहुधा उनकी मृत्यु का कारण भी बना है और पंतगबाजी का यह पहलू अब विकराल रूप लेता जा रहा है। ऐसा ही एक छायाचित्र स्वतंत्र फोटोग्राफर भाविक थाकेर ने महाराष्ट्र से लेख हेतु उपलब्ध करवाया है जिससे पता चलता है कि यह समस्या मात्र किसी उद्यान तक ही सीमित नहीं है वरन् स्थानीय स्तर पर अन्य क्षेत्रों में बढ़ती जा रही है। आचार्य जगदीश चंद्र बोस, भारतीय वनस्पति उद्यान न केवल वनस्पतियों के संरक्षण के लिये प्रसिद्ध है अपितु यहाँ कई प्रकार के पक्षी और तितलियाँ आदि भी पाये जाते हैं जो इस उद्यान को एक समृद्ध पारितंत्र का स्वरूप प्रदान करने के साथ साथ परागण की क्रिया को भी सम्पादित करते हैं।

उद्यान में ताड़ के वृक्षों में उलझी पतंग

समस्या का समाधान – हांलाकि भारत सरकार के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के द्वारा दी गई अनुशंसाओं के आधार पर अब तक देश के कई राज्यों जैसे महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, तेलंगाना, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, राजस्थान एवं दिल्ली इत्यादि में ऐसे कांच और सीसे की कोटिंग वाले मांझे के प्रयोग या बिक्री पर पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (1986) उप अनुच्छेद 5 के तहत प्रतिबंध लगाया गया है। लेकिन अभी भी देश के कई हिस्सों में इस संदर्भ में जागरूकता लाकर ऐसे प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता है। कुछ त्वरित उपायों का वर्णन बिन्दुवार निम्न है।

1. संरक्षित स्थानों, नेशनल पार्क, उद्यानों आदि स्थानों पर जहाँ पेड़ – पौधों की संख्या अधिक होती है। पतंगबाजी मुक्त क्षेत्र घोषित कर, ऐसे स्थानों की परिधि में पंतग उड़ाना वर्जित किया जाना चाहिये।
2. सूर्योदय के समय और सूर्यास्त के बाद पंतगबाजी की मनाही होनी चाहिये और आम लोगों को इसके लिये जागरूक किया जाना चाहिये क्योंकि इस समय पक्षी अधिक सक्रिय होते हैं।
3. पतंगबाजी के खेल में सामान्य धागों का प्रयोग किया जाना चाहिये और पंतग के टूटे धागों को खुले में ऐसे ही नहीं छोड़ना चाहिये। समय समय पर इनको वृक्षों से निकालकर निस्तारित करना आवश्यक है।
4. आचार्य जगदीश चंद्र बोस भारतीय वनस्पति उद्यान में हर वर्ष पादप संरक्षण एवं रख–रखाव के लिए लाखों रूपये खर्च किया जाता है, जिसका एक बड़ा हिस्सा इन लताओं को हटाने एवं घास–पात की सफाई पर व्यय किया जाता है। अतः समय आ गया है कि आम जन मानस और खासकर युवाओं और बच्चों में ऐसे खेलों के बारे में जागरुकता लाई जाए और वनस्पति उद्यानों, पक्षी अभयारण्यों के निकटवर्ती क्षेत्रों में इस पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाये।

पारंपरिक ज्ञान अंकीय पुस्तकालय (ट्रडिशनल नॉलेज डिजिटल लायब्रेरी – टीकेडीएल) : रक्षण का भारतीय तंत्र

नीलिमा ए. एम. एवं संजय कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण कोलकाता

बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर) कार्यनीति देश में आर्थिक वृद्धि को आगे बढ़ाने और उद्दीपित करने के लिए एक सशक्त माध्यम है। यह अनुसंधान और विकास में पूंजी निवेश को बढ़ाने के साथ ही देश के नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाती है। बौद्धिक संपदा अधिकार से न केवल प्रतियोगियों और बौद्धिक संपदा अधिकार के स्वामियों की रचनात्मक क्षमता और नवाचार की सुरक्षा होती है, जो वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति करते हैं, बल्कि ये उन वस्तुओं और सेवाओं के प्रयोक्ताओं को भी सुरक्षा प्रदान करते हैं। यह कार्य प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीकों से किया जाता है। उक्त अधिकारों का अस्तित्व समाज के समग्र विकास के लिए अनिवार्य है। भारत की वर्तमान राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा अधिकार नीति के तहत सात लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। जो निम्न हैं–

1. समाज के सभी वर्गों में बौद्धिक संपदा अधिकारों के आर्थिक–सामाजिक और सांस्कृतिक लाभों के प्रति जागरूकता पैदा करना।

2. बौद्धिक संपदा अधिकारों के सृजन को बढ़ावा देना।

3. मजबूत और प्रभावशाली बौद्धिक संपदा अधिकार नियमों (वैधानिक एवं विधायी ढांचा) को अपनाना ताकि अधिकृत व्यक्तियों तथा वृहद लोकहित के बीच संतुलन कायम हो सके।

4.सेवा आधारित बौद्धिक संपदा अधिकार प्रशासन को आधुनिक और मजबूत बनाना।

5.व्यवसायीकरण के जरिए बौद्धिक संपदा अधिकारों का मूल्य निर्धारण।

6.बौद्धिक संपदा अधिकारों के उल्लंघनों का मुकाबला करने के लिए प्रवर्तन एवं न्यायिक प्रणालियों को मजबूत बनाना।

7.मानव संसाधनों एवं संस्थानों की शिक्षण, प्रशिक्षण, अनुसंधान क्षमताओं को मजबूत बनाना तथा बौद्धिक संपदा अधिकारों में कौशल निर्माण करना।

भारत में पारंपरिक ज्ञान सदियों से मौखिक प्रथा के सहारे पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं। ज्यादातर पारंपरिक ज्ञान पुराणों में या प्राचीन ग्रंथों में आलेखित होने के कारण आम आदमी को अप्राप्य रहा है। खतरा यह भी रहा है कि इन बहुमूल्य ज्ञान पर एकाधिकार प्राप्त करके इनका गलत इस्तेमाल न किया जाए। अप्राकृतिक नवीनता के ऊपर एकाधिकार किसी दूसरे को मिलने से देश का बहुत बड़ा नुकसान होता है।

पारंपरिक ज्ञान को विशाल रूप से दो श्रेणी में विभाजित किया जा सकता है।

1. अभिलिखित ज्ञान – मुख्यतः इस ज्ञान को विधिबद्ध ज्ञान के रूप से उल्लिखित किया जाता है। यह ज्ञान प्राचीन उच्च ग्रंथों में एवं तामपत्रों में पाया जाता हें। यह ज्ञान मुख्यतः उनके उत्पत्ति काल की भाषा में लिखी गया है।

2. मौखिक ज्ञान –इस निर्दिष्ट ज्ञान को कहीं पर भी विधिबद्ध या अभिलिखित नहीं किया गया है। कई समुदायों में यह ज्ञान मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया जाता रहा है। इस ज्ञान को परिरक्षण और ध्यान देने की आवश्यकता इसलिए है की कई समुदायों का उपजीवन इससे जुड़ा हुआ है।

वैज्ञानिक आविष्कार एवं नयी औषधियों के अन्वेषण से चिकित्सा शास्त्र ने बहुत प्रगति की है। तथापि आंकड़ों के अनुसार दुनिया की एक तिहाई आबादी के पास आज भी आवश्यक जीवन रक्षक दवाईयाँ उपलब्ध नहीं है। शहर से दूरस्थ प्रदेशों में आज भी लोग पारंपरिक औषधियों से ही बीमारी का इलाज करते है। पारंपरिक औषधियां सुलभ और अल्प लागत होने के कारण, प्रगतिशील राष्ट्रों की अधिकतर आबादी इन औषधियों पर निर्भर रहती है। भारत सरकार से जारी विवरण के अनुसार भारत की 70 प्रतिशत आबादी आज भी पारंपरिक औषधियों से रोग निवारण करते हैं।

पारंपरिक ज्ञान स्थानीय लोगों की पहचान है। व्यावसायिक या औद्योगिक लाभ के लिए पारंपरिक ज्ञान का दुरुपयोग इसके वैध अभिरक्षक के हित को हानि पहुंचा सकता है। इस तरह की आशंकाओं से समाधान हेतु एवं पारंपरिक ज्ञान के परिरक्षण के लिए विभिन्न तरह के उपायों को विकसित

करना आज की परम आवश्यकता है। पारंपरिक ज्ञान से जुड़ी परम्परायें एवं आविष्कार आज के भौतिकवादी दुनिया में तरह तरह के खतरों से जूझ रहें हैं।

पारंपरिक ज्ञान को शोषण और दुरुपयोग से बचाने के लिये और बौद्धिक संपदा अधिकारों के सात लक्ष्यों को हासिल करने हेतु 1999 में भारत में पारंपरिक ज्ञान अंकीय पुस्तकालय (टीकेडीएल) का विकास किया गया है। 2001 में सिर्फ पारंपरिक ज्ञान के रक्षण क लिए समर्पित एक योजना का प्रारम्भ किया गया। इसके जरिए, भारत पारंपरिक ज्ञान के रक्षण के क्षेत्र में एक संस्थानिक व्यवस्था को संचालित करनेवाला विश्व का पहला देश बन गया। वैज्ञानिक तथा औद्योगिकी अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली एवं आयुष, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा संचालित परियोजना के तहत यह सार्थक हुआ। यह भारत का ही नहीं बल्कि विश्व में भी इस तरह का पहला प्रयास है।

पारंपरिक ज्ञान अंकीय पुस्तकालय एक विशिष्ट मालिकाना कोष है, जहाँ पर विभिन्न ज्ञान पद्धति और भाषाओं का समांकलन किया गया है। यह कोष भारतीय वैद्य शास्त्र से सम्बन्धित पूर्व विद्या के 150 पुस्तकों पर आधारित है एवं लगभग 1000 अमेरिकी डॉलर की कीमत पर उपलब्ध है। पारंपरिक ज्ञान अंकीय पुस्तकालय दुनिया के सारे परीक्षकों को इन पुस्तकों द्वारा जोड़ता है। पारंपरिक ज्ञान अंकीय पुस्तकालय से की सूचनाऐं उन सभी पेटेन्ट कार्यालयों को उपलब्ध हैं, जो पारंपरिक ज्ञान अंकीय पुस्तकालय अधिगमन सहमति (एग्रीमेंट) पत्र पर हस्ताक्षर किए होते हैं। इस सहमति के अन्तर्गत पेटेन्ट परीक्षकों को टीकेडीएल को परीक्षण के लिए इस्तेमाल करने की अनुमति है एवं वे इस ज्ञान को किसी तीसरे को सिर्फ उल्लेख हेतु अनावृत करने की अनुमति देता है। आज 0.226 मिलियन औषधीय सूत्रीकरण को टीकेडीएल के तहत संरक्षित करने की क्षमता भारत के पास है। दिसम्बर 2015 के आंकड़ों के अनुसार भारत अब तक 10 पेटेन्ट कार्यालयों से अंतर्राष्ट्रीय अधिगमन सहमति पर हस्ताक्षर कर चुका है। वह है संयुक्त राज्य अमेरिका पेटेंट और ट्रेडमार्क कार्यालय, यूरोपीय पेटेंट कार्यालय, कनाडा पेटेंट कार्यालय , जर्मनी पेटेंट कार्यालय, जापान पेटेंट कार्यालय, यूनाइटेड किंगडम पेटेंट कार्यालय, ऑस्ट्रेलिया पेटेंट कार्यालय, मलेशिया पेटेंट कार्यालय, चिली पेटेंट कार्यालय और भारतीय पेटेंट कार्यालय। टीकेडीएल तकनीकी विभिन्न विषयों (आयुर्वेद, यूनानी और सिद्ध), भाषाओं (संस्कृत, अरबी , उर्दू, फारसी और तमिल), आधुनिक विज्ञान और आधुनिक औषधीय विज्ञान को सम्मिलित करता है। टीकेडीएल ने एक ऐसी अनोखी व्यवस्था की रचना की है, जिससे भाषा और प्रारूप की सीमाओं को हटाकर 340 लाख ए4 माप के पौराणिक ग्रंन्धों को 5 अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं (अंग्रेजी, जापानी, फ्रेंच, जर्मन और स्पेनिश) में उपलब्ध किया गया है। टीकेडीएल के अंतर्गत आज संस्कृत के कलेवर, पेटेन्ट परीक्षकों को अपने देश के पेटेन्ट कार्यालयों में बैठकर अपनी भाषा में पढ़ने की सुविधा मिली है। कमप्यूटर के डिजिटल पृष्ठ में उनको टीकेडीएल की दो महत्वपूर्ण विशेषतायें प्राप्त होती हैं – उपयुक्त सूचना प्रौद्योगिकी उपकरण और नवीन वर्गीकरण (रेरिलवेन्ट इन्फॉरमेशन टूल्स एंड नोवल क्लासिफिकेशन सिस्टम) एवं पारंपरिक ज्ञान संसाधन वर्गीकरण (टीकेआरसी)।

टीकेडीएलकी वर्तमान स्थिति का विवरण संक्षिप्त रूप से सारणी दिया गया है।

विषय	**संख्या (भाग)**	**कुल अनुलेखन**
आयुर्वेदिक	75 पुस्तकें	97,337
यूनानी	10 पुस्तकें	1,75,150
सिद्धा	50 पुस्तकें	23,016
योगा	15 पुस्तकें	1,680
कुल	**150 पुस्तकें**	**2,97,183**

जैव–चोरी के खिलाफ टीकेडीएल का प्रभाव :– टीकेडीएल के माध्यम से सरकारी आंकडों के अनुसार जुलाई 2009 से लेकर अब तक टीकेडीएल समूह ने 571 जीसरे पक्ष के पर्यवेक्षण दाखित किये हैं। जिनमें से अमरीका, ब्रिटेन, स्पेन, इटली और चीन आदि की औषधि निर्माता कम्पनियों के 53 पेटेंट आवेदन टीकेडीएल डाटाबेस की सूचना के आधार पर या तो खारिज कर दिए गए हैं या वापस लिए अथवा रद्द किए गए हैं या निष्क्रिय पेटेंट आवेदन घोषित कर दिए गए हैं। नवीनता, उपयोगिता और गलत पेटेंट दिलाने से रोकने में इसकी कारगता को देखते हुए दक्षिण अफ्रीका, मंगोलिया, थाईलैंड, मलेशिया, एआरआईपीओ, नाइजीरिया, इंडोनेशिया जैसे बहुत से देशों और संगठनों ने अपने देश में मौजूद मॉडल को टीकेडीएल से बदलने की इच्छा जाहिर की है। वैश्विक समुदाय सहित विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन (डब्ल्यूआईपीओ) ने बौद्धिक सम्पदा के अधिकार और परम्परागत ज्ञान के क्षेत्र में भारत की अग्रणी भूमिका स्वीकार की है। परम्परागत ज्ञान के संरक्षण के मॉडल के रूप में भारत द्वारा स्थापित टीकेडीएल के उपयोग पर डब्ल्यूआईपीओ ने सीएसआईआर के सहयोग से नई दिल्ली में मार्च 2011 में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया

था। इस सम्मेलन में समृद्ध परम्परागत ज्ञान वाले 35 देशों ने हिस्सा लिया था। ताकि वे टीकेडीएल के गठन की प्रक्रिया समझ सकें और अपने देश के परम्परागत ज्ञान के संरक्षण के लिए ऐसे किसी मॉडल को लागू कर सकें।

टीकेडीएल की सफलता का एक ताजा उदाहरण हाल ही में देखने को मिला जब भारत एक ब्रिटिश कंपनी को आयुर्वेदिक दवा पेटेंट कराने से रोकने में फिर कामयाब रहा। हल्दी, देवदार की छाल और ग्रीन टी का यह मिश्रण बाल झड़ना रोकने के लिए इस्तेमाल होता है। ब्रिटेन की कंपनी पैंगइया लैबोरेटरीज लि. द्वारा इस दवा की पेटेंट लेने की कोशिश की गई जिसे टीकेडीएल के द्वारा नाकाम कर फिर अपने परंपरागत ज्ञान की संरक्षित करने में भारत को कामयाबी मिली। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआइआर) की इकाई ट्रेडिशनल नॉलेज डिजिटल लाइब्रेरी (टीकेडीएल) ने यूरोपीय पेटेंट कार्यालय में इस कंपनी का आवेदन पाया। इसके बाद टीकेडीएल ने पेटेंट देने से पहले ही अपना विरोध सुबूतों के साथ पेश किया। टीकेडीएल ने साबित कर दिया कि बाल गिरने के इलाज में हल्दी, देवदार की छाल और ग्रीन टी का इस्तेमाल भारत में प्राचीनकाल से आयुर्वेद और यूनानी दवाओं में होता रहा है। ब्रिटेन की इस कंपनी ने यूरोपीय पेटेंट कार्यालय में वर्ष 2011 के फरवरी में ही यह आवेदन दिया था। टीकेडीएल की ओर से पिछले साल 13 जनवरी को सुबूत पेश किया जिसके बाद पेटेंट का आवेदन अंततः इस साल 29 जून को वापस लिया गया। सीएसआइआर–टीकेडीएल अब तक बगैर किसी लागत के करीब 200 ऐसे मामलों में सफल रही है।

पारंपरिक ज्ञान और आनुवंशिक संसाधनों की ऐसी ही जैविक चोरियों ने वर्तमान में भारत के साथ साथ सभी राष्ट्रों को बड़ी चिंता में डाल दिया है। इन समस्याओं की समाधान के लिए जैव विविधता पर सम्मेलन (कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी), विश्व व्यापार संगठन (डब्लयूटीओ), व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार (टीआरआईपीएस) और विश्व बौद्धिक संपदा संगठन आदि बहुपक्षीय मंचों में चर्चाएं जारी है। उम्मीदें इस बात पर कायम है कि विश्व बौद्धिक संपदा संगठन के अंतर सरकारी समिति के हस्तक्षेप से पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण के क्षेत्र में एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कानूनी रूप से बाध्यकारी प्रपत्र उभरकर आए और पारंपरिक ज्ञान का कार्यशील संरक्षण हो।

जैव विविधता संरक्षण को, अपना उद्देश्य बनाओ ।
करके रक्षा इसकी, देश की शान बढ़ाओ।।

पादप अतिक्रमण : संकल्पना, प्रक्रिया, प्रभाव और भारत में पाये जाने वाले विजातीय/विदेशी पौधे

कुलदीप सिंह डोगरा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, नोएड़ा

मनुष्य द्वारा विकास के साथ ही उसकी पर्यावरण की प्रगति के क्रियाकलापों में हस्तक्षेप की प्रवृत्ति बढ़ गई है। इसके साथ ही यातायात के नए साधनों की उपलब्धता और प्राकृतिक साधन जैसे कि हवा के साथ जीव जन्तुओं का धरती पर मिश्रण काफी तेज और जटिल हो गया है।

अतिक्रमण (इनवेजन) का मुख्य रूप से अर्थ है कि किसी ओर के क्षेत्र में प्राकृतिक अतिक्रमण द्वारा, बलपूर्वक अनाधिकृत रूप से प्रवेश या बलपूर्वक घुसना और साथ ही दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश के लिए अनाधिकृत रास्ते बनाना। पादप अतिक्रमण विषय में पौधों के जान बूझकर या अचानक फैलाव अथवा अतिक्रमण से पहले यह जानना काफी आवश्यक है कि स्वदेशी, विदेशी, प्राकृतिक और नैमित्तिक जातियां क्या होती हैं ?

स्वदेशी जाति – ये वो पौधे होते हैं जो प्राकृतिक रूप से किसी क्षेत्र में पाए जाते हैं। ये पौधे अपने मूल क्षेत्र में पाए जाते हैं या अन्य शब्दों में जिस क्षेत्र में पौधा प्राकृतिक रूप से विकसित होता है और उगता है। उदाहरण के तौर पर आम भारतीय मूल का वृक्ष है।

विदेशी जाति – वे पौधे जो मूलतः दूसरे क्षेत्र से आकर नये क्षेत्र में उगते हैं, जहाँ पर वो पहले से नहीं पाए जाते हैं। इनका उद्‌गम दूसरे भौगोलिक क्षेत्रों में हुआ होता है पर ये किसी कारण से अन्य या नए क्षेत्रों में स्थानान्तरित हो जाते हैं। ऐसे पौधों को विजातीय पौधे भी कहते हैं। उदाहरण के तौर पर सफेदे का वृक्ष आस्ट्रेलिया में विकसित हुआ पर ये अब विश्व के लगभग सारे देशों में मिलता है। कुछ क्षेत्रों में तो इसको स्वयं ही लगाया गया पर काफी क्षेत्रों में ये प्राकृतिक रूप से भी फैला है। इसी तरह से मिलिया (दरेक) भारत में ही विकसित हुआ पौधा है लेकिन अब यह अमेरिका में काफी मात्रा में फैल गया है।

प्राकृतिक जाति – ऐसे विजातीय पौधे जो अपनी जनसंख्या को प्राकृतिक रूप से परिवर्तित करते हैं, उन्हें प्राकृतिक जाति कहा जाता है। उदाहरण के तौर पर सफेदे का वृक्ष भारत में 1790 में लाया गया था और उसके बाद से इसका यहॉ पर प्राकृतिक रूप से विस्तार हो गया।

नैमित्तक जाति – ऐसे विजातीय पौधे जो अपनी जनसंख्या को परिवर्तित नहीं कर पाते और अपने उगने के लिए बार बार प्राक्कथन पर निर्भर करते हैं उन्हें नैमित्तक जाति कहते है।

प्राक्कथन – पौधों और बीजों का अकारण या अचानक एक देश से दूसरे देश या एक स्थान से दूसरे स्थान पर जहाँ पर वे पहले से नहीं पाए जाते, अकारण या अचानक स्थानान्तरण, प्राक्कथन कहलाता है। पौधों का नए स्थानों पर प्राक्कथन मुख्य तौर पर मनुष्य द्वारा सोच समझकर या अचानक किया जाता रहा है। पौधों के मूल स्थानान्तरण, फैलाव, प्रकार और प्रवृत्ति की जानकारी विजातीय और स्वदेशी पौधों को पहचानने में काफी महत्वपूर्ण होती है। दुर्भाग्यवश पुराने और मध्यकालीन काल में पौधों पर अपर्याप्त शोध होने के कारण विदेशी पौधों को पहचानना अति कठिन कार्य है। ऐसी बहुत कम जातियाँ हैं, जिनकी वानस्पतिक सर्वेक्षण की पहले के समय की पर्याप्त जानकारी है। इसके साथ ही प्राकृतिक व्यापकता को शीघ्र से अलग करना काफी कठिन होता है, क्योंकि प्रकृति में परिवर्तन अचानक नहीं होता बल्कि ये धीरे–धीरे होता है।

अतिक्रमण (इनवेजन) प्रक्रिया – इस प्रक्रिया को मुख्य तौर पर तीन भागों में विभक्त किया जाता हैं।

1. प्राक्कथन – इन पौधों का, उनके हिस्सों का या बीजों का नए पर्यावरण में आना और प्राकृतिक संसाधनों द्वारा उदाहरण के तौर पर हवा, पानी, या मनुष्यों द्वारा उनकी मूल भौगोलिक सीमा से दूर–दूर तक बिखराव होना, जिससे उनकी पूर्ण विकसित आबादी नए स्थान में स्थापित हो जाती है, प्राक्कथन कहलाता हैं।

2. उपनिवेशीकरण – ऐसे आए हुए पौधे वानस्पतिक रूप से या लैंगिक रूप से प्रजनन द्वारा अपनी आबादी बढ़ाते हैं और अपना अकेले का उपनिवेश बना लेते हैं। ऐसी प्रकिया को उपनिवेशीकरण कहते हैं।

3. प्राकृतिकरण – नई जगह पर अपना झुंड या उपनिवेष बनाने के बाद विजातीय या विदेशी पौधे, मूल पौधों के बीच में अपनी सीमा का विस्तार प्राकृतिक बिखराव द्वारा करते हैं। इसके बाद ये नए पर्यावरण के अनुसार अपने आप को स्थापित करते हैं। जिसके दौरान ये बहुत से जीवन चक्रों से गुजरते हैं और प्राकृतिक रूप से स्थायी हो जाते हैं। प्राकृतिक होने के बाद ही किसी विदेशी पौधे के अच्छे या बुरे गुणों का पता चल पाता

है। इनमें से बाद जिन पादप जातियों में अपने विस्तार की क्षमता अत्यधिक पाई जाती है वो मूल रूप से पाए जाने वाले पौधों के लिए बहुत हानिकारक बन जाते हैं। ऐसे पौधे अपने आस–पास दूसरे पौधों को उगने ही नहीं देते और अकेले अपना ही विस्तार करते हैं। ये पौधे किसी क्षेत्र की पादप विविधता के लिए बहुत बड़ा खतरा होते हैं। भारत में भी पिछले 2 दशकों से ऐसे बहुत से विदेशी पौधे आ गए हैं, जो हमारी पादप विविधता के लिए खतरा बन गए है। इनके आने का मुख्य कारण विकास की गति तेज होना, जैसे कि यातायात के नए साधन, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, पर्यटन आदि जो पिछले दो दशकों में काफी तेजी से बढ़े हैं। जैव विविधता की क्षति के लिए भू–क्षरण के बाद विदेशी पौधों का नाम ही आता है। इसलिए यदि विदेशी मूल के हानिकारक पौधों को आने से रोका नहीं गया तो हम आने वाले समय में अपनी जैव विविधता का बहुत सारा अंश खो देगे।

हमारे देश में मुख्य रूप से चार ऐसे पौधे हैं जो हमारी पादप विविधता के लिए बहुत बड़ा खतरा बन चुके हैं हैं। इनमें मुख्य हैं –

1. ***लैंटाना कमारा*** : ये पौधा कुल वरबिनियेसी कुल का पौधा है तथा यह दक्षिणी अमेरिका और मैक्सिको मूल का है। इसका अंग्रेजी नाम लैन्टाना और हिन्दी में इसको राई मुनिया कहते हैं। ये एक झाड़ीनुमा पौधा है। ये भारत में सबसे पहले 1809 में भारतीय वनस्पति उद्यान, कलकत्ता में एक सजावटी पौधे के तौर पर लगाया गया था। बाद में यहाँ से ये वनप्रांतर हो गया तथा धीरे धीरे कुछ समय बाद ये डेक्कन प्रायद्वीप से लेकर उत्तर में हिमालय की पहाड़ियों तक तेजी से फैलकर स्थापित हो गया। आज इस पौधे ने पर्यावरणविदों, वनस्पतिज्ञों, उद्यान विशेषज्ञों, वन पालकों, कृषकों और वैज्ञानिकों के सम्मुख समस्या उत्पन्न कर दी है, क्योंकि इसने काफी क्षेत्रों में भूमि पर अतिक्रमण कर लिया है। इसलिये ये हमारी स्वदेशी वनस्पति विविधता के लिये बहुत बड़ा खतरा हैं। ये मुख्यतौर पर चारागाहों, तृणभूमियों, खाली स्थानों, वनों में, नालों के और सड़क के किनारों पर अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है।

2. ***ऐजीरेटम कोनिजोईड्स*** : ये पौधा कुल एस्टेरेसी से संबंधित है और दक्षिणी अमेरिका का मूल का पौधा है। इसको अंग्रेजी में गोट वीड और हिन्दी में शाहदवी कहते है। ये पौधा भारत में 1860 में एक सजावट के पौधे के रूप में लाया गया था और उसके बाद ये समस्त भारत में एक खरपतवार की तरह फैल गया। ये एक शाकिय पौधा है, इसकी ऊंचाई 2 मीटर तक हो सकती है। ये मुख्य तौर पर बंजर भूमि, कृषि भूमि, चरागाह, बगीचों और विभिन्न प्रकार के वनों के अन्दर मिलता है। उत्तर भारत में ये 1800 मीटर तक फैला हुआ है और शिवालिक पहाड़ियों में पादप विविधता के लिये बहुत बड़ा खतरा बन चुका है।

3. ***पारथिनियम हिस्टेरोफोरस*** : ये भी एस्टेरसी कुल का पौधा है और दक्षिणी अमेरिका मूल का ही पौधा है। ये पौधा सबसे पहले 1956 में पुणे में मिला था, पर ऐसी जानकारी है कि ये उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही खरपतवार की तरह भारत में फैल चुका था। इसे हिन्दी में गाजर घास भी कहा जाता है। ये भी एक शाकीय पौधा है जो 2 से 3 मीटर तक ऊंचाई ले लेता है। ये पौधा सड़क के किनारे, बंजर भूमि, घास स्थल, चरागाह, बगीचों और खाली स्थानों में पर्याप्त मात्रा में मिल जाता है। ये एक प्रत्यूर्ण पौधा है और इस कारण मनुष्यों तथा पशुओं में विभिन्न प्रकार की एलर्जी उत्पन्न करता है। ये भी उत्तर भारत की शिवालिक पहाड़ियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है और 1500 मीटर से ऊपर भी मिल जाता है। ये पौधा भी पादप विविधता के लिये खतरा बन चुका है।

4. ***यूपेटोरियम अडिनोफोरम*** : यह एस्टेरसी कुल एवं मैक्सिको मूल का पौधा है। ये एक झाड़ी के रूप में पाया जाता है और इसको करोफटन वीड भी कहते हैं। ये उत्तर भारत में 600 मीटर से 1800 मीटर के बीच में काफी तेजी से फैल रहा है। ये पूर्वोत्तर भारत में भी खरपतवार के रूप में पाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि ये चाय के पौधों द्वारा पूर्वोत्तर भारत से उत्तर भारत में फैला है। यह पौधा सड़क के किनारों, पानी के नालों और विभिन्न प्रकार के वनों में असंख्य मात्रा में मिलता है। यह भी पादप विविधता के लिए एक नया खतरा बन कर उभरा है।

इन सब पौधों के अतिरिक्त *माईकेनिया मिक्रेन्था, पोरसपीस ज्यूलिफ्लोरा, करोमोलीना ओडोरेटा* भी भारत में पाये जाने वाले काफी खतरनाक विदेशी अतिक्रमणकारी पौधे हैं, जो भारत में तेजी से फैल रहे हैं और अन्य पादपों के साथ साथ सम्पूर्ण जैव विविधता के अस्तित्व के लिये खतरा बनने लगे हैं।

पिसोनिया ग्रैन्डिस – एक अल्पज्ञात, महत्वपूर्ण औषधीय वृक्ष

देवस्मिता दत्ता प्रमाणिक, एस. एस. दाश एवं संजय कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

प्रकृति के द्वारा मानव और पृथ्वी पर उपस्थित प्रत्येक जीवधारी को दिये गये वरदानों में पेड़–पौधों का महत्वपूर्ण स्थान है। पेड़–पौधे जीवों के जीवन चक्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनसे न केवल भोजन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति ही होती अपितु जीव जगत से संतुलन बनाने में भी ये सहायता मिलती है। कार्बन चक्र, जल चक्र, ऊर्जा चक्र, भोजन श्रृंखला के पिरामिड में भी वनस्पतियों को सर्वोच्च स्थान हासिल है। इनकी उपयोगिता को देखते हुए इनको अनेक संवर्गों में बांटा गया है। इनमें औषधीय पौधे न केवल अपना औषधीय महत्व रखते हैं, आय का भी एक जरिया बन जाते हैं। हमारे शरीर को निरोगी बनाये रखने में औषधीय पौधों का अत्यधिक महत्व होता है, यही वजह है कि भारतीय पुराणों, उपनिषदों, रामायण एवं महाभारत जैसे प्रमाणिक ग्रंथों में इसके उपयोग के अनेक साक्ष्य मिलते हैं। प्रसिद्ध विद्वान चरक ने तो हरेक प्रकार के औषधीय पौधों का विश्लेषण करके बीमारियों में उपचार हेतु चरक संहिता की रचना तक कर डाली थी, जिसे पौधों के औषधीय गुणों पर आधारित एक प्रमाणिक पुस्तक का दर्जा प्राप्त है। लेकिन आज भी कई ऐसे पेड़– पौधे हैं, जिनके औषधीय उपयोगों से मानव अनभिज्ञ हैं, ऐसे ही पेड़ पौधों में से एक है– *पिसोनिया ग्रैन्डिस* !

पिसोनिया ग्रैन्डिस आर. ब्र. (*पी. एल्बा* स्पान. एवं *पी. मोरिन्डाफोलिया* आर. ब्र. एक्स वाइट) को सामान्यतः लेटयूस ट्री या कैबेज ट्री के नाम से भी जाना जाता है जो निक्टेजिनिऐसी कुल का सदस्य है। यह एक महत्वपूर्ण औषधीय वृक्ष है, जिसकी औषधीयता पर बहुत कम वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध है और यह आम जनमानस के लिये अज्ञात ही है। कतिपय क्षेत्रों में जनजातिय समूहों के द्वारा इसका प्रयोग लोक वानस्पतिक प्रकार से पारम्परिक दवाइयों के निर्माण में किया जाता है। इसे मधुमेह रोधी, प्रति सूजक, गठिया रोधी एवं कवक नाशी गुणों से युक्त माना जाता है।

इस पादप को सर्वप्रथम 1750 में मोलूक्कास और मध्य मलेशिया से प्रकृति विज्ञानी रह्मफिस ने वर्णित किया था और इसे "वाइल्ड पोर्थब ट्री ऑफ द आइसलैंड" नाम के साथ इसकी शाखायुक्त पत्तियों एवं फलों के सरल चित्रण के द्वारा वर्णित किया था। इसके बाद रार्बट ब्राउन ने 1810 में उत्तरी आस्ट्रेलिया, पापुआ न्यू गिनी, अराफूरा समुद्र एवं इंडोनेशिया से घिरे कार्पेन्टेरिया की खाड़ी में मोरिंगटोन द्वीप के पूर्वी छोर पर स्थित कछुआ द्वीप (टर्टल आइसलैंड) जिसे स्थानीय भाषा में पिसोनिया कहा जाता है, से इसका सर्वप्रथम वैध वर्णन (वेलिड डिस्क्रीप्शन) दिया, इसी कारण इस वृक्ष के वंश का नामकरण भी किया गया है।

***पिसोनिया* और सी–बर्ड का रोचक संबंद्ध**–*पिसोनिया ग्रैन्डिस* के रोचक और अद्भुत भौगोलिक वितरण का संबंद्ध सी बर्ड के कारण है। सी–बर्ड, जैसा कि नाम से ही परिलक्षित होता है, समुद्री पक्षियों को कहा जाता है। अपनी लम्बी दूरी की उड़ानों और द्वीपीय प्रवासों के लिये प्रसिद्ध सी–बर्डस की कई जातियाँ विश्व भर में पाई जाती हैं, जैव विकास के सिद्वान्तों में सी–बर्डस की उत्पत्ति संसृत विकास (कोन्चरजेन्ट इवोल्यूशन) के आधार पर हुई मानी जाती है। ये पक्षी समुद्री पारिस्थितिकीय तंत्र में अनुकूलन (एडेप्टेशन) के साथ कालोनी (समूहों) में प्रवास करते हैं, कालोनियों में पक्षियों की संख्या सैकड़ों से लेकर हजारों तक हो सकती है। वैश्विक स्तर पर सी–बर्ड की कई जातियाँ जैसे एबूडोन शेयरवाटर, वैज–टेल शेयर वॉटर, वाइट टेल ट्रॉपिक बर्ड, ब्राउन नॉडी *एनाउस*, लेसर नॉडी *एनाउस*, ब्रिडल्ड टेरन स्टेरना, वाइट टेल *जाइगिस एल्बा* आदि जातियाँ उष्णकटिबंधीय इंडो–पैसिफिक द्वीप समूह में पश्चिमी हिन्द महासागर से पूर्वी प्रशान्त महासागर तक *पिसोनिया ग्रैन्डिस* के वितरण से जुड़ी हुई हैं।

हिन्द महासागर में, *पिसोनिया ग्रैन्डिस* कई छोटे छोटे द्वीप समूहों से लेकर उत्तरी एवं उत्तर–पूर्वी मडागास्कर जिसमें सेशेल्स, एगालिगास एवं रोड्रिग्वेज शामिल है और लक्ष द्वीप, मालद्वीप, चागोस आर्चिपिलेगोस (फेहंद्वीप) से अंडमान द्वीप समूह तक वितरित है। सी–बर्ड कालोनियों के साथ साथ *पिसोनिया ग्रैन्डिस* का सिलसिलेवार वितरण इस बात का प्रमाणिक साक्ष्य है कि सी–बर्ड के साथ ही *पिसोनिया* का भी समानान्तर विकास हुआ है। इस वृक्ष के आसंजक पुंधानीधर (चिपकने वाले एंथोकार्प) एवं फल का विकास समुद्री पक्षियों के द्वारा उष्णकटिबंधीय समुद्री क्षेत्र में होने वाले प्रकीर्णन को सहजता देने के लिये ही हुआ होगा। कभी कभी यही आसंजकता और फल के बाह्य आवरण के कंटकयुक्त होने के कारण छोटे सी–बर्डस के पंखों में ये इतने ज्यादा लग जाते हैं, जिससे नन्हें पक्षियों को उड़ने में परेशानी होती है, जिस वजह से कई इनकी मौत भी देखने को

पिसोनिया ग्रैन्डिस : वृक्ष, पुष्पन और फल

हिंद महासागर के द्वीपीय क्षेत्रों में सी–बर्ड के साथ *पिसोनिया ग्रैन्डिस* का वितरण

मिलती है। इस कारण *पिसोनिया* का अन्तर–द्वीपीय–प्रकीर्णन भी बाधित होता है। हालांकि सी–बर्डस की कालोनियों में पक्षियों के अपशिष्ट मिश्रित अम्लीय मृदा में *पिसोनिया ग्रैन्डिस* की अच्छी वृद्धि दर्ज की गई है।

भारत में, पिसोनिया का वितरण मुख्यतः अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह एवं दक्षिण पश्चिमी क्षेत्रों में लक्षद्वीप में देखने को मिलता है, जहाँ यह तटीय, समुद्री, चट्टानी शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में समुद्र तल से 50–80 मी. की ऊंचाई पर मिलता है। इस वृक्ष वनस्पति को कम देखभाल की जरूरत होती है और यह देखने में भी सुन्दर होती है इसलिये इसे भारत में कई जगह मुख्य भूमि पर एवं उद्यानों में सजावटी वृक्ष के रूप में भी लगाया जाने लगा है।

वानस्पतिक विविरण –*पिसोनिया ग्रैन्डिस* मध्यम आकार का सदाबहार वृक्ष है, जो 8–12 मी. ऊंचाई का हो सकता है। इसकी जड़ें मिट्टी की ऊपरी सतह पर उजागर होती हैं एवं इसकी छाल सफेद–भूरे रंग की होती है, जिसमें विशिष्ट खांचे एवं पत्तियों के बड़े बड़े निशान देखने को मिलते हैं। नवीन तना रोमिल होता है और पत्तियाँ बृहत अंडाकार होती है, जिनका आकार 7–30 × 5–20 से.मी. होता है। वृक्ष में पुष्प बहुयुग्मक होते हैं, जो शाखा के अन्तिम छोर पर खिलते हैं। नर पुष्प कीपाकार (इनफुडिबुलिफार्म) या नलिका युक्त घंटीनुमा (ट्यूबुलर कैम्पानुलेट, 5 लोब युक्त) एवं मादा पुष्प दिर्घाकार अंडाकार (ओबलोंग ओवाइड) होते हैं। द्विलिंगी पुष्प फनल आकृति वाले एवं ग्रंथिमय सफेद या गुलाबी रंग वाले होते हैं। फलों का पुंधानीधर (एंथोकार्प) शुष्क, अवस्फोटी, पतला, लम्बाकार से कल्ब आकृति वाला होता है।

रसायनिकी –*पिसोनिया ग्रैन्डिस* में कई प्रकार के जैव सक्रीय संघटक पाये जाते हैं, जैसे पिनाटोल, एल्लान्टोइन, बीटा–सिटोस्टेरॉल, बीटा–सिटोस्टेरॉल ग्लूकोसाइड, एल्फा–पिनास्ट्रॉल, ऑक्टोसैनाल, डुलकिटॉल, रेह्मेनोसाइड, 4–0–मिथाअल–5–0 एसिटिल मेरिसिलिन 3–0–ग्लूको, फ्लेवेनॉइड एवं क्वेरसेटिन।

औषधीय उपयोग – दक्षिणी और पश्चिमी भारत के जनजातीय समुदायों के द्वारा रोजमर्रा की आवश्यकताओं और विभिन्न औषधीय अनुक्रमों में इस वृक्ष की पत्तियाँ, तने और जड़ का प्रयोग सदियों से किया जाता आ रहा है। हमारे प्राचीन चिकित्सा शास्त्रों में इसकी पत्तियों को दर्दनिवारक, प्रति सूजक, मूत्रवर्धक, हायपोग्लाइसिमिक, प्रति कवक और प्रति जीवाणुक के रूप में प्रयोग किये जाने का वर्णन मिलता है। नवीन ताजा पत्तियों को यू–डी–कोलोन (एक प्रकार का टायलेट संगध द्रव्य) में भीगोकर फाइलेरिया से ग्रसित पैर की सूजन को कम करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है। इसकी पत्तियों में उपस्थित एल्लान्टोइन को संश्लेषित करके निकालकर त्वचा सुरक्षा हेतु प्रयोग किया जाता है एवं इसे कई अन्य सौन्दर्य प्रसाधनों में 2.0 प्रतिशत सांन्द्रता के साथ उपयोग में लाया जाता है। हाल में हुये शोधों में इसकी पत्तियों में हिपैटो–प्रोटेक्टीव गुण भी देखा गया है। तमिलनाडु की नीलगिरी की पहाड़ियों में निवास करने वाले टोडा जनजाति के लोग इसकी पत्तियों के निक्षेप का प्रयोग घावों को भरने, गठिया, अल्सर, फाइलेरिया, पेचिस और सर्पदंश के उपचार में करते हैं। इसकी जड़ों में रेचक गुण पाया जाता है।

अन्य उपयोग – तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं केरल में जनजातिय समुदाय के लोग इसका प्रयोग सब्जी एवं सलाद के रूप में करते हैं। पत्तियों को चारे के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। दक्षिण भारत में लोग इसके आसंजक फलों का प्रयोग पक्षियों कीटों को पकड़ने में भी करते हैं।

यूराएल फेरक्स (निम्फेसी) मखाना : पश्चिम बंगाल राज्य में एक संभावित जलीय नकदी फसल

हिमांशु शेखर महापात्र व दिनेश लक्ष्मण शिरोडकर[1]
मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता
[1]औद्योगिक अनुभाग, भारतीय संग्रहालय, कोलकाता

सामान्यतः मखाना (फॉक्स नट) के रूप में प्रसिद्ध *यूराएल फेरक्स* सालिस्ब. (निम्फेसी) *विक्टोरिया* वंश का एक मौसमी जलीय मैक्रोफाइट है। *यूराएल फेरक्स* शीतोष्ण एशिया, जापान, चीन, कोरिया तथा सुदूरपूर्व रूस एवं उष्णकटिबंधीय एशिया सहित बांग्लादेश और भारत में स्थानिक है। भारत में यह मुख्यतः बिहार तथा ओडिशा के अलावा पश्चिम बंगाल और असम राज्यों में भी पाई जाती है।

इसका पौधा वार्षिक, छोटे और मोटे प्रकंदयुक्त, कांटेदार जलीय पौधों में गहरे हरे रंगयुक्त पूर्ण विकसित पत्तियों की ऊपरी सतह रोयेंदार झुर्रीदार, जालनुमा होती है जबकि निचली सतह बैंगनी रंगयुक्त एवं वक्र कांटेदार डंठल से जुड़ा होता है। आसमानी रंगयुक्त भालाकार 4 पंखुड़ियाँ जिसकी बाह्य सतह कांटेदार एवं भीतरी सतह सफेद एवं चिकनी होती है एवं अधोमुखी थाली के समान वर्तिकाग्र युक्त पुष्प इसकी खास पहचान है। इसमें फूल मार्च से अप्रैल के दौरान खिलते हैं तथा जून से अगस्त के दौरान फल लगने शुरू हो जाते हैं। बीजों की कटाई अक्टूबर महीने तक चलती है।

यूराएल फेरक्स को आचार्य जगदीश चंद्र बोस, भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा के कुछ महत्वपूर्ण झीलों जैसे लेरम, किंग, कुंस्टलर तथा देवान में लंबे समय से उगाया जा रहा है। वर्ष 2012 में उद्यान के झीलों में गाद हटाने की प्रक्रिया के दौरान इस पौधे का प्राकृतवास अस्थायी रूप से प्रभावित हुआ था। इसलिए इस पौधे को टीओपी झील में स्थानांतरित कर दिया गया तथा गाद हटाने की प्रक्रिया के दौरान लेरम झील के एक हिस्से को पौधों के निर्बाध विकास के लिए अबाधित रखा गया। गाद हटाने की प्रक्रिया की समाप्ति के उपरांत, *यूराएल फेरक्स* को इसके मूल प्रकृतवास में पुनः स्थापित कर दिया गया तथा फिर से पूर्ण विकसित होने के बाद इसमें फूल खिलने लगे हैं। इस पौधे से माड़ीदार सफेद बीज पैदा होते हैं जो खाद्य और बेहद पौष्टिक होते हैं। इस पौधे की खेती इसके बीजों के लिए की जाती है। बीजों को ग्रीष्म ऋतु के उतरार्द्ध तथा शरद ऋतु के पूर्वार्द्ध में इकट्ठा किया जाता है एवं इन्हे कच्चा या पकाकर खाया जा सकता है। कच्चे बीजों से उतनी ही कैलोरी ऊर्जा मिलती है जितनी प्रधान खाद्य पदार्थों जैसे गेहूं, चावल और अन्य अनाज, आदि से मिलती है। मखाना कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और खनिज–लवण का प्रमुख श्रोत है। मखाने के बीज को अक्सर भुनकर या तलकर पॉपकॉर्न की तरह खाया जाता है। लोग अक्सर त्योहारों के दौरान खीर में मखाना को एक शुभ घटक के रूप में इस्तेमाल करते हैं। मखाने को पारंपरिक चिकित्सा में व्यापक रूप से कई बीमारियों के इलाज के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा है।

इस पौधे को सभी आयु समूहों के लोगों की पाचन समस्याओं के उपचार हेतु परामर्शित किया जाता है क्योंकि इसके कसैले गुण दस्त को कम करने और भूख को बढ़ाने में रामबाण की तरह काम करते हैं। यह फ्लेवोनोइड्स का एक महत्वपूर्ण श्रोत है, जो वास्तव में ऑक्सीकरण रोधी होते

1. एवं 2., ए. जे. सी. बोस. भारतीय वनस्पति उद्यान की झील में *यूराएल फेरक्स*

हैं तथा हानिकारक तत्वों के प्रभाव को रोकते हैं। ऐसे शक्तिशाली ऑक्सीकरण रोधी अस्तित्व से बुढ़ापे को भी रोका जा सकता है। यह जड़ी बूटी श्वसन प्रणाली को स्वस्थ बनाती है तथा बार–बार पेशाब लगने के तकलीफ को दूर करती है। बीजों के सेवन से हृदय मजबूत बनते हैं, जो एनीमिया की बीमारी में बहुत उपयोगी होते हैं। बीजों से महिलाओं में बांझपन की समस्या को दूर करने में मदद मिलती है। बीजों को अत्यधिक कामोद्दीपक भी माना जाता है। चूंकि इसके बीजों में कैलोरी और वसा कम, रेशे अधिक होते हैं, मधुमेह रोगियों द्वारा इनका सेवन किया जा सकता है। अन्य औषधीय उपयोगों में अनिद्रा, घबराहट और चिड़चिड़ापन, प्लीहा और गुर्दे को सामान्य बनाना, ऊतकों में नमी के स्तर को बढ़ाना आदि शामिल हैं।

यूराएल फ़ेरक्स एक वार्षिक नकदी जलीय फसल है। कभी यह भारत में हिमालय के आस पास कश्मीर से मणिपुर तक वितरित थी, लेकिन अब यह उत्तर बिहार के कुछ जिलों तथा छिटपुट रूप में ओडिशा, पश्चिम बंगाल और असम के कुछ स्थिर उथले जलाशयों और झीलों तक सीमित हो गई है। इसके उच्च आर्थिक और औषधीय महत्व को ध्यान में रखते हुए, मखाना को भारत के विभिन्न भागों के भावी किसानों के बीच लोकप्रिय बनाया जा सकता है। पश्चिम बंगाल जहां जलाशयों और झीलों की भरमार है, मखाना की खेती को ग्रामीण जनता और छोटे किसानों के बीच एक संभावित नकदी फसल के रूप में आजीविका चलाने के लिए व्यापक रूप से लोकप्रिय बनाया जा सकता है।

पेड़ खड़ा है और हरा भरा है जिसके द्वार ।
समझदार है, भाग्यवान है वह परिवार ।।

बुरांश (*रोडोडेन्ड्रॉन अरबोरियम*) : एक मनमोहक एवं गुणकारी वनस्पति

पुष्पी सिंह एवं आरती गर्ग
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

भारत का हिमालय क्षेत्र, पांच भारतीय राज्यों को दर्शाता है–जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम तथा अरुणाचल प्रदेश। इन सभी राज्यों में हिमालय की विभिन्न ऊंचाई की पर्वत श्रृंखलाएं विद्यमान हैं। हिमालय सदियों से प्रकृतिविदों एवं वनस्पतियों के कारण विशेष आकर्षण का केन्द्र बना रहा है तथा इसकी गोद में विभिन्न प्रकार की वनस्पति यां पाई जाती है। परन्तु इसके प्राकृतिक सौन्दर्य को चार चाँद लगाते हैं तथा अपनी ओर आकर्षित करते हैं–चिर परिचित "बुरांश के वृक्ष"!

बुरांश के वृक्ष हिमालय मे लगभग 1500 मी. से 3600 मी. की ऊंचाई पर उगते हैं तथा पर्यावरण संरक्षण में ये अहम भूमिका निभाते हैं। बसंत ऋतु आते ही बुरांश के वृक्ष लाल रंग के बड़े–बड़े फूलों से लद जाता है और इस समय यह अत्यंत ही मनमोहक लगता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों बुरांश स्वयं ऋतुराज बसंत का रुप धारण करके आ खड़ा हो। पहाड़ियों में बसंत ऋतु में हिमालय क्षेत्रों मे गहरे लाल पुष्पों से सुशोभित यह वृक्ष एक बड़े गुलाब के गुलदस्ते के समान प्रतीत होता है। बुरांश के वृक्ष को भारत में उत्तराखंड राज्य में" राज्य वृक्ष" तथा इसके फूलों को नेपाल में "राष्ट्रीय पुष्प" का गौरव प्राप्त है।

वानस्पतिक विवरण – एरिकेसीकुल के बुरांश वृक्ष को वानस्पतिक विज्ञान में*रोडोडेन्ड्रान अरबोरियम* के नाम से जाना जाता है, जो भारत में पाई जाने वाली बुरांश की लगभग 73 जातियों में से एक है। ग्रीक में *'रोडोडेन्ड्रॉन'* का शाब्दिक अर्थ 'गुलाब का वृक्ष' और *अरबोरियम* का अर्थ 'काष्ठ की तरह' होता है।

रोडोडेन्ड्रान अरबोरियम एक सदाबहार वृक्ष है, जिसकी ऊंचाई लगभग 15 मी. तथा मोटाई 3–4 मी. होती है। इस की छाल सलेटी भूरे व भूरे लाल रंग की होती है। पत्तियाँ 10–18 से.मी. लम्बी, 5–8 से.मी. चौड़ी तथा टहनी के सिरे पर गुच्छे के रुप में होते हैं। इसके फूल गहरे लाल रंग के होते है तथा कई छोटे–छोटे फूलों से एक सम्पूर्ण फूल बनता है। वार्णिक सूक्ष्म फांक, दलपुंज घंटी के आकार के होते है, पुंकेसर जायांगधर, परागकोश अण्डाकार, वर्तिका सुमंड, फल कैप्सूल लगभग 3.8 सेमी. लम्बा व 1.25 सेमी. चौड़ा तथा बीज छोटे गहरे भूरे, संकुचित होते हैं।

पुष्पकाल– मार्च से प्रारम्भ होकर अप्रैल तक रहते हैं।

रसायन संघटक : बुरांश के तने से टैरेक्सेरोल, अरसोलिक एसिड, बिटुलिनिक एसिड, ल्यूकोपिला रगो निडिन, पाये जाते है। पत्तियों सेग्लूकोसाइड, एल्फा–एमाइरिन, एरिकोलीन, अरसोलिक एसिड पाय जाते है तथा फूलों में कुर्ऐकेटिन, रुटीन, कौमारिक एसिड पाये जाते हैं।

लोक औषधीय उपयोगः

- बुरांश के फूलों का स्वाद खट्टा–मीठा होता है। क्षेत्रीय लोग इसका इस्तेमाल जैम व जेली बनाने में करते हैं।
- पहाड़ी क्षेत्रों में इसके फूल बाजारों में बेचे जाते हैं, जिसका इस्तेमाल स्थानीय लोगों द्वारा घरों में चटनी बनाने, शर्बत, स्कवेश बनाने में किया जाता है। बुरांश के फूलों का रस "बुरांश शरबत" के नाम से भी बहुत प्रचलित है।
- बुरांश की पत्तियों का इस्तेमाल सिरदर्द में किया जाता है।
- इसके ताजे सूखे फूलों का इस्तेमाल नरेती में फंसी मछली की हड्डी को निकालने मे किया जाता है।
- इसकी पेड़ की छाल से बना नास ठंड में राहत देता है।
- बुरांश की लकड़ी का इस्तेमाल चारकोल व ईंधन के रूप में करते हैं। इसकी लकड़ी का प्रयोग लकड़ी के बर्तन बनाने में भी किया जाता है।
- इसकी पत्तियों का इस्तेमाल मंदिरों, देव डोलियों, पालकियों को सजाने में भी किया जाता है। इसके फूलों का सेवन कई पशु–पक्षीयों और कीट पतंगे भी करते हैं।

औषधीय उपयोग

- बुरांश के सूखे हुए फूलों का इस्तेमाल डायरिया और पेचिस में बहुत लाभकारी माना जाता है।
- आयुर्वेद मे "अशोकारिष्ट" के नाम से प्रचलित आयुर्वेदिक टॉनिक में बुरांश सम्मिलित होता है। पारम्परिक चिकित्सा प्रणालियों में इस औषधि का प्रयोग विविध रोगों के निवारण हेतु किया जाता है।

संरक्षण : बुरांश के वृक्ष हिमालय की प्राकृतिक धरोहर हैं तथा संरक्षण की दृष्टि से अत्यत महत्वपूर्ण हैं। इन वृक्षों के कारण वनों मे हरियाली रहती है तथा जल श्रोतों के लिए भी इन वृक्षों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है। इनका संरक्षण करना एवं इनको बचाये रखना हमारे पर्यावरण के लिए अति आवश्यक है, लेकिन शनैः शनैः इन वृक्षों की संख्या में कमी आ रही है। मानवीय हस्तक्षेप अति विदोहन, समय पूर्व पुष्पन जैसे कारणों के कारण बुरांश के वृक्षों पर संकट गहरा ताजा रहा है। उत्तराखंड के जिलो में कुछ वर्षों से इन वृक्षों पर उगने वाली विशिष्ट फर्न जाति भी इन बहुमूल्य वृक्षों को नुकसान पहुँचा रही हैं, जिसके फलस्वरूप कई पेड़ सूख चुके हैं। बुरांश के वृक्षों की पर्यावरण एवं मानव जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं एवं उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इनके संरक्षण पर विशेष ध्यान देने एवं शीघ्र ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

कड़ी धूप है जलते पाँव ।
होते पेड़ तो मिलती छाँव ।।

पारिजात (हरसिंगार)– एक पुनरावलोकन

अर्जुन प्रसाद तिवारी, अच्युतानंद शुक्ला एवं भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

वैज्ञानिक वर्गीकरण	
जगत	पादप जगत
प्रभाग	मेंग्नोलियोफाइटा
वर्ग	मेंग्नालियोप्सिडा
गण	लेमियेल्स
कुल	ओलियेसी
वंश	*निक्टेन्थिस*
जाति	*आरबोर–ट्रिस्टीस*

पारिजात का वृक्ष सुन्दर तथा औषधीय गुणों से युक्त होता है। संस्कृत भाषा में इसे शेफालिका के नाम से जाना जाता है, जिसका अर्थ है, वह फूल जिसमें शिलीमुख अर्थात् भंवरा आराम से सोता है। यह उन प्रमुख वृक्षों में से एक है, जिसके फूल ईश्वर की आराधना में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इसके पुष्पों को भगवान श्री कृष्ण की पूजा में प्रयोग किया जाता है। इसमें आकर्षक एवं अनुपम सुगंध से युक्त फूल आते हैं, जो सामान्यतः रात में खिलते हैं और सुबह स्वतः गिर जाते हैं। पारिजात या हरसिंगार का वानस्पतिक नाम *निक्टेन्थिस आरबोर–ट्रिस्टीस* है, जो ओलिऐसी कुल का सदस्य है। इसके फूल, पत्ते व छाल का औषधीय कार्यों के लिये भारतीय चिकित्सा प्रणालियों में उपयोग प्राचीन काल से ही किया जा रहा है। ऐसी मान्यता है कि पारिजात के वृक्ष को छूने मात्र से ही व्यक्ति की थकान मिट जाती है। यह जाति भारत की स्थानिक जाति है तथा संपूर्ण भारत में पायी जाती है।

वानस्पतिक वर्णन : पारिजात का वृक्ष 10 से 15 फीट ऊँचा होता है, कहीं–कहीं पर इसकी ऊँचाई 20 से 25 फीट तक भी होती है। इसकी शाखायें, टहनियां एवं पत्तियां खुरदुरी तथा रोमिल होती है। इसकी शाखायें चतुष्कोणीय होती है। पत्तियां अंडाकार, 6–15 सेमी. लंबी एवं 2.5–7.5 सेमी. चौड़ी, आधार पर कटी हुई, अग्रभाग पर नुकीली एवं दोनों सतहों पर खुरदुरी होती हैं। इसके पुष्प टहनियों पर गुच्छों में ही लगते है और पुष्प की पंखुड़ियां 6–7, सफेद रंग की तथा नारंगी रंग के डंठल से जुड़ी होती है। इसके फल अर्द्ध गोलाकार व चपटे होते हैं।

भौगोलिक वितरण : पारिजात का वृक्ष भारत, बांग्लादेश, भारत–पाक उप महाद्वीपीय क्षेत्र, वर्मा, श्रीलंका, दक्षिण–पूर्व एशिया, उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है। यह विशेष रूप से बाग–बगीचों एवं सुन्दरता के लिए घरों मे लगा हुआ मिलता है।

पारिजात के रसायनिक गुण एवं संघटक : पारिजात का फूल हल्का रूखा, तिक्त, कटु, गर्म, वात–कफनाशक, ज्वर नाशक, मृदु, विरेचक, शामक, उष्णीय और रक्त शोधक होता है। इसके फूलों में सुगंधित तेल होता है तथा इसकी रंगीन पुष्प नलिका में *निक्टेन्थिन* नामक रंग द्रव्य पाया जाताहै, जो केसर में स्थित *ई–क्रोसेटिन* के सदृश होता है। इसके बीज मज्जा से 12–16 प्रतिशत पीले, भूरे रंग का स्थिर तेल निकलता है तथा इसके पत्तों में *टाइनिक एसिड, मिथाइल सेल्सीलेट, ग्लाइकोसाइड* (1.0 प्रतिशत), *माइनीटल* (1.0 प्रतिशत), *राल* (1.0 प्रतिशत), कुछ उड़नशील तेल, विटामिन–सी एवं विटामिन–ई पाया जाता है। इसकी छाल में *ग्लाइकोसाइड* पाया जाता है।

पारिजात के औषधीय गुण : पारिजात वृक्ष औषधीय गुणों का भण्डार है। यह रूमेटिज्म, गठिया के अतिरिक्त और अन्य प्रकार की बीमारियों जैसे–बवासीर, हृदय संबंधी रोग, सूखी खांसी, बुखार, त्वचा रोग, स्त्री रोगों आदि के उपचार हेतु बनने वाली औषधियों में भी प्रयोग किया जाता है। पारिजात वृक्ष के विभिन्न भागों का उपयोग निम्नानुसार है:–

1. **तना :** परंपरागत रूप से तना की छाल का चूर्ण गठिया, जोड़ों का दर्द, मलेरिया एवं कफ निवारक रोगों के लिये उपयोग में लाया जाता है। इसकी पत्तियां, छाल एवं टहनी का लगभग 10 ग्राम की मात्रा में लेकर एक गिलास पानी में उबाल कर प्रति दिन पीने से जोड़ों के दर्द में लाभ मिलता है।
2. **पत्ती :** इसकी पत्तियों काढ़ा आयुर्वेद में साइटिका, रूमेटिज्म, गठिया आदि बीमारियों के उपचार में प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त बवासीर, यकृत रोग, पित्त विकार एवं बुखार आदि में इसकी पत्तियों का उपयोग किया जाता है।

   खांसी रोग : इसकी पत्तियों के रस को शहद में मिलाकर सेवन करने से सूखी खांसी ठीक हो जाती है।

   उच्च रक्त एवं मधुमेह : इसकी पत्तियों को पीसकर शहद में मिलाकर सेवन करने से उच्च रक्त चाप और मधुमेह लाभ मिलता है।

त्वचा संबंधी रोग : इसकी पत्तियों का लेप बनाकर त्वचा पर लगाने से त्वचा संबंधी रोगों के निदान के लिये भरपूर इस्तेमाल किया जाता है।

स्त्री रोग : पारिजात की कोपलों को काली मिर्च के 5 दानों के साथ पीसकर सेवन करने से स्त्री रोगों में लाभ मिलता है।

हड्डी टूटना : हड्डी टूटने परइसकी पत्तियों एवं छाल का लेप बनाकर लगाने से लाभ मिलता है।

सर्दी एवं खांसी : इसकी 2–3 पत्तियों को चाय में मिलाकर नियमित पीने से सर्दी एवं खांसी में लाभ मिलता है।

मधुमेह : इसकी पत्तियों का काढ़ा बनाकर 30 दिनों तक नियमित सेवन करने से मधुमेह रोग में लाभ मिलता है।

चोट व घाव : इसकी पत्तियों एवं छाल का लेप बनाकर लगाने से किसी भी प्रकार की चोट व घाव ठीक हो जाते है।

पुराना बुखार : पारिजात की 3–5 ग्राम पत्तियों का रस, शहद में मिलाकर, गर्म पानी के साथ तीन दिन तक नियमित लेने से पुराना बुखार में लाभ मिलता है।

विषम ज्वर : इसकी 4–5 ताजा पत्तियों को पीस कर तथा पानी में मिलाकर 7–8 दिनों तक नियमित पीने से ज्वर में लाभ मिलता है।

पेट के कीड़े : इसकी पत्तियों का रस लगभग 2 चम्मच में, चुटकी भर नमक मिलाकर, 2–3 दिन तक नियमित खाली पेट रहते हुए, पीने से पेट के कीड़े समाप्त हो जाते है।

3. **पुष्प :** इसके फूलों का रस हृदय संबंधी रोगों के लिये उत्तम औषधि मानी जाती है। पुष्पों का प्रयोग पित्त दोष को कम करने तथा बवासीर और त्वचा रोगों में भी किया जाता है।
4. **बीज :** इसके बीजों का उपयोग कृमिनाशक के रूप में किया जाता है तथा इसके बीजों को चबाने से सिर दर्द जैसी बीमारी में लाभ मिलता है। इसके अतिरिक्त इसके बीजों को पीस कर पानी में मिलाकर प्रयोग करने से सिर की रूसी, पपड़ी एवं सूखी त्वचा आदि में लाभ मिलता है। इसके एक से दो बीज का सेवन प्रतिदिन किया जाये तो बवासीर रोग ठीक हो जाता है, तथा इसके बीज का लेप बनाकर गुदाद्वार पर लगाने से बवासीर के रोगी को राहत मिलती है। इसके बीजों को पीसकर बालों को धोने से, बालों को पोषण मिलता है, अर्थात् बाल मुलायम एवं चमकदार बनते हैं।
5. **बालों की रूसी :** इसके बीजों को पीस कर, पानी में मिलाकर, बालों को धोने से रूसी दूर हो जाती है तथा बाल मुलायम एवं स्वच्छ हो जाते हैं।

पारिजात का वृक्ष हिन्दू संस्कृति, परम्पराओं और कई मान्यताओं में भी परिलक्षित होता है जिस कारण इसके पुष्पों का देव पुष्पांजलि आदि में प्राचीन काल से ही प्रयोग किया जाता रहा है। इस वृक्ष से जुड़े कुछ रोचक पौराणिक धार्मिक किस्से कहानियॉ भी हैं जिनमें –

पौराणिक उल्लेख (1) प्रथम कथानक : 'हरिवंशपुराण' में एक ऐसे वृक्ष का उल्लेख मिलता है, जिसको छूने से देव नर्तकी उर्वशी की थकान मिट जाती थी। पौराणिक कथानकों के अनुसार पारिजात वृक्ष की उत्पत्ति देवताओं और दानवों के द्वारा किये गये सागर मंथन से हुई है। कहा जाता है कि देवराज इन्द्र ने इस वृक्ष को अपने उद्यान नंदन कानन में लगा दिया था। देवराज इन्द्र के निमंत्रण पर जब श्री कृष्ण इन्द्र लोक में अपनी पहली पत्नी देवी रूक्मिणी के साथ पहुंचे, तो देवराज इन्द्र ने स्वागत करते हुये पारिजात का पुष्प भेंट किये थे।

तत्पश्चात् एक बार नारद मुनि इन्द्र लोक के कानन वन से पारिजात वृक्ष के कुछ फूल लाकर श्री कृष्ण को दिये, तथा श्री कृष्ण ने उन फूलों को अपनी पत्नी रूक्मिणी को दे दिया। यह देखकर नारद मुनि श्री कृष्ण की दूसरी पत्नी सत्यभामा के पास गये और चुपके से बता दिया कि इन्द्र लोक से लाये गये दिव्य फूलों को श्री कृष्ण ने रूक्मिणी को दे दिया है। यह सुनकर सत्यभामा को क्रोध आ गया और उसने कृष्ण के पास जाकर कहा कि उसे उक्त पारिजात वृक्ष ही चाहिये। तब श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को इन्द्र लोक से लाकर उसे पारिजात वृक्ष देने का वादा किया।

तत्पश्चात् नारद मुनि इन्द्र के पास गये और कहा कि स्वर्ग के दिव्य पारिजात वृक्ष को लेने के लिये मृत्यु लोक से कुछ लोग आने वाले हैं। लेकिन पारिजात वृक्ष तो इन्द्र लोक की शोभा है, और इसे यहीं पर रहना चाहिये। जब श्री कृष्ण जी पत्नी सत्यभामा के साथ पारिजात वृक्ष को लेने के लिये इन्द्र लोक पहुँचे तो इन्द्र ने पारिजात को देने का विरोध किया। परन्तु श्री कृष्ण के आगे उनका हठ नहीं चला और पारिजात उन्हें देना ही पड़ा। लेकिन श्री कृष्ण के हाथ में पारिजात वृक्ष को देते हुए इन्द्र ने श्राप दिया कि इस वृक्ष का फूल दिन में कभी नहीं खिलेगा।

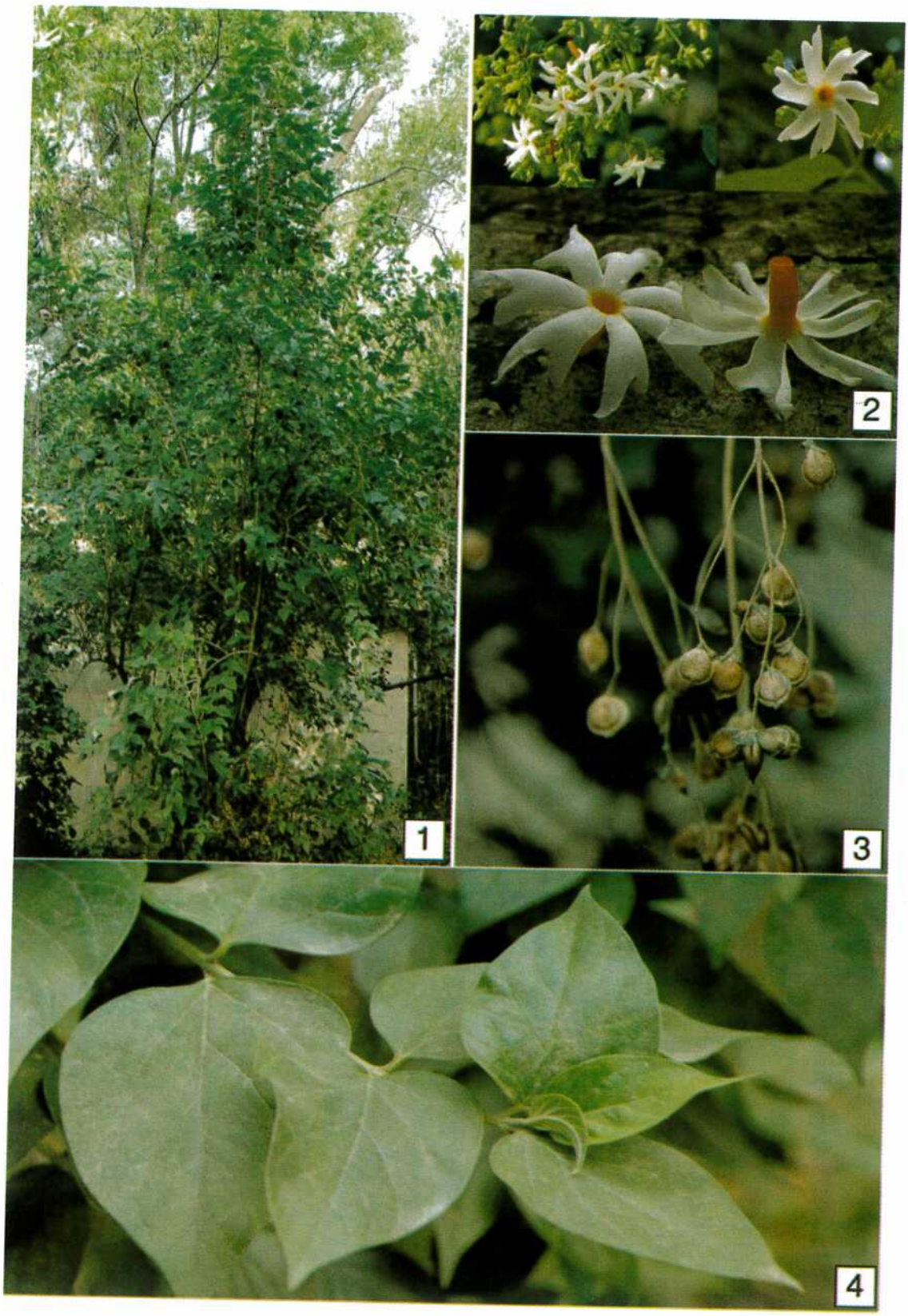

1. पारिजात वृक्ष 2. पुष्प 3. फल 4. पत्ती

श्री कृष्ण जी, पत्नी सत्यभामा की हठ के कारण पारिजात को साथ लेकर मृत्यु लोक आ गये और उसे सत्यभामा की वाटिका में रोपित कर दिया। परन्तु सत्यभामा को सीख देने के लिये श्री कृष्ण ने कुछ ऐसा कर दिया कि पारिजात का वृक्ष तो सत्यभामा की वाटिका में था, लेकिन उसके फूल रूक्मिणी की वाटिका में गिरते थे। इस प्रसंग में सत्यभामा को पारिजात वृक्ष मिला, लेकिन रूक्मिणी के हिस्से में पुष्प मिले। इस कथानक के अनुसार आज भी पारिजात के फूल अपनी छाया परिधि से हटकर कुछ दूर ही गिरते हैं।

पौराणिक उल्लेख (2) द्वितीय कथानक : एक अन्य जनश्रुति के अनुसार 'पारिजात' नाम की एक राजकुमारी थी, जिसे भगवान सूर्य से प्रेम हो गया था। लेकिन अथक प्रयासों के बावजूद भी भगवान सूर्य ने 'पारिजात' के प्रेम को स्वीकार नहीं किया था, जिससे खिन्न होकर राजकुमारी 'पारिजात' ने आत्महत्या कर लिया। कहा जाता है कि जिस स्थान पर राजकुमारी 'पारिजात' की कब्र बनी थी, उसी कब्र के ऊपर 'पारिजात' नामक वृक्ष ने जन्म लिया था। 'पारिजात' वृक्ष को रात में देखने से ऐसा लगता है, जैसे कि वह रो रहा हो, लेकिन सूर्योदय के साथ ही पारिजात की टहनियां और पत्तियां सूर्य को आगोश में लेने के लिये आतुर दिखाई पड़ते हैं। ज्योतिष विज्ञान में भी पारिजात का विशेष महत्व बताया गया है।

पौराणिक उल्लेख (3) तृतीय कथानक : धन की देवी माँ लक्ष्मी को 'पारिजात' के पुष्प प्रिय हैं, तथा उन्हें प्रसन्न करने संबंधी अनुष्ठानों में भी पारिजात वृक्ष का उपयोग किया जाता है। धन लक्ष्मी को प्रसन्न करने संबंधी संस्कृत भाषा में लिखे गये मंत्र 'ओऽम् नमो मनिन्द्राय आयुध धराय माम् लक्ष्मी वस्नच्छित्न पूराय पूराय ऐन् हींन् क्लींम् ह्यायुण मणी भद्राय नमः' का 108 बार जाप करते हुए, नारियल पर पारिजात के पुष्प अर्पित किये जायें और पूजा के इस नारियल एवं फूलों को लाल रंग के कपड़े में लपेटकर, पूजा घर में स्थापित किया जाय, तो धन लक्ष्मी सहज ही प्रसन्न होकर साधक के घर में वास करने लगती हैं। यह पूजा वर्ष के 5 शुभ मुहुर्त जैसे– होली, दीपावली, सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण, नवरात्रि के रवि पुष्प तथा गुरू पुष्प नक्षत्र में की जाये तो उत्तम फल प्राप्त होता है। यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि पारिजात वृक्ष के वे फूल ही उपयोग में लाये जाते हैं, जो वृक्ष से टूटकर गिर जाते हैं, अर्थात् वृक्ष से पुष्प तोड़ना वर्जित कहा गया है।

जल जीवन का अनमोल रतन ।
इसे बचाने का हम करें जतन ।।

वनस्पति वाणी अंक 25 : 117-119(2016)

लक्ष्मणफल *(एनोना मूरिकाटा)* : एक महत्वपूर्ण वृक्ष

विनीत कुमार सिंह एवं गोपाल प्रसाद सिन्हा
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

आदिम काल से ही मनुष्य जंगलों से प्राप्त होने वाली वनस्पतियों का उपयोग औषधि, खाद्य एवं अन्य दैनिक आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति के लिए करता आ रहा है। वनों में निवास करने वाली आदिम जनजातियाँ पुरातन काल से ही पेड़–पौधों के विभिन्न भागों का उपयोग स्वस्थ रहने एवं रोगों का पारंपरिक इलाज करने के लिए करती आ रही हैं एवं यह ज्ञान इनके वंशजों को हस्तांतरित होता चला आ रहा है। पृथ्वी पर पाये जाने वाले प्रत्येक पादप में कुछ न कुछ विशिष्ट गुण पाये जाते हैं, जो उनके विभिन्न भागों में पाये जाने वाले रासायनिक संघटकों के कारण होता है जैसे– एल्कलोइड्स, टेर्पेनोइड्स, फेनोलिक्स, टरपीन्स आदि। इन संघटकों में कई प्रकार की बीमारियों से लड़ने की क्षमता होती है। आधुनिक परिवेश में बढ़ते हुए पर्यावरण प्रदूषण के कारण मानव कई जानलेवा रोगों से ग्रसित है। कैंसर इनमें से सबसे खतरनाक विषाणु जनित रोग है। इसके सम्पूर्ण इलाज की खोज अभी तक नहीं हुई है। एलोपैथिक पद्धति द्वारा इसका उपचार किया जाता है, जिसके दूरगामी दुष्प्रभाव होते हैं, अतएव इसकी प्राकृतिक चिकित्सा की मांग बढ़ी है। इस पद्धति में इसका उपचार वनस्पतियों से प्राप्त होने वाले रासायनिक संघटकों से किया जाता है। प्रकृति में ऐसे कई पौधे हैं, जिनमें इस रोग से लड़ने की क्षमता पायी जाती है। *एनोना मूरिकाटा* ऐसे ही पौधों में से एक महत्वपूर्ण पौधा है, जिसमें मनुष्यों में होने वाले विभिन्न प्रकार के कैंसर से लड़ने की क्षमता है।

वृक्षों और झाड़ियों की 137 जातियों का एक विस्तृत वंश एनोना – एनोनेसी कुल का पौधा है, जो मुख्यतः उष्णकटिबंधीय देशों में पाये जाते हैं। कुछ का मूल स्थान अफ्रीका समझा जाता है। इनमें से पाँच जातियाँ जिनमें से कुछ का फल खाया जाता है, भारत और श्रीलंका में प्रविष्ट की गई हैं। *एनोना स्क्वमोसा* एवं *एनोना रेटिकुलाटा* के साथ ही *एनोना मूरिकाटा* भी देश भर में प्रकृत हो गए हैं। एनोना मूरिकाटा का वृक्ष वैश्विक स्तर पर वेस्टइंडीज, टोगो, क्यूबा, बाहामास, वेनेनजुएला, मेक्सिको, चीन, ऑस्ट्रेलिया, पेरु, वियतनाम, फिलीपीन्स, मलेशिया, ब्राजील, अमेजोनिया, श्रीलंका और मध्य अमेरिका में पाया जाता है। यह भारत में मुख्यतः दक्षिण के राज्यों जैसे तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना एवं केरल के साथ ही उत्तर एवं उत्तर–पूर्वी राज्यों में भी पाया जाता है। यह एक छोटा, चिरहरित, लगभग 6–12 मीटर ऊँचा वृक्ष होता है। इसकी नव शाखाएँ रोमिल, पुरानी रोममुक्त होती, पत्तियाँ सरल, लम्ब–गोलवत, ऊपरी सतह चिकनी एवं नीचे की ओर हल्की रोमिल होती हैं। इसके पुष्प हरे– पीले, कक्षीय और सात्रिक दोनों तरह के, फल बड़े गोलाकार या अंडाकार और कटीले होते हैं। फल का गूदा रेशेदार एवं सुगंधित होता है। इनमें पुष्पन–फलन अप्रैल–नवम्बर के मध्य में होता है। इस वृक्ष को भारतीय उपमहाद्वीप की प्रांतीय भाषाओं में विभिन्न नामों से जाना जाता है, जैसे – हिन्दी में 'लक्ष्मणफल', मराठी में 'मामफल', बंगाली में 'जंगली आता', कन्नड़ में 'मुलारामफल', मलयालम में 'मुलनचक्का', तमिल में 'पुलीपल्ला', तेलुगु में 'मुंडलासिथाफलामू' एवं अंग्रेजी में 'प्रिकली कस्टर्ड एपल' आदि।

रासायनिकी – इस वृक्ष के विभिन्न भागों में अलग– अलग तरह के रासायनिक संघटक पाये जाते हैं, जिसमें मुख्यतः एल्कलोइड्स, फ्लेवेनोल, ट्राइग्लाइकोसाइड, फेनोलिक और साइक्लोपेपटाइड हैं। रासायनिक संघटकों के साथ ही इसमें कुछ महत्वपूर्ण खनिज जैसे पोटेशियम, कैल्शियम, सोडियम, कॉपर, आइरन एवं मैग्नीशियम भी पाये जातें हैं, जिसके सेवन से मनुष्य के शरीर को सम्पूर्ण पोषण प्राप्त होता है। *एनोना मूरिकाटा* के विभिन्न भागों में पाये जाने वाले रासायनिक तत्वों का विवरण निम्न प्रकार से हैं–

फल – एनोनीन, नॉरनूसिफेरिन, एसीमिलोबिन (सभी एल्कलोइड्स), एपोमुरासिन–ए, बी और सी, मूरिसिन– जे, के और एल (सभी एनोनेसिअस, एसीटोजेनिन), सिन्नमिक अम्ल, कौमेरिक अम्ल, केफिक अम्ल, फेरिलोल ग्लकोसाइड (सभी फेनोलिक संघटक)।

पत्तियाँ – एनोमूरिसिन– ए, बी, सी एवं ई, एनोहेक्सोसिन, मूरिकापेंटोसिन, मूरिकाटोसिन, एनोपेंटोसिन, मूरिहेक्सोसिन, मूरिकोरियोसिन, एनोकाटालिन, (सभी एनोनेसिअस एसीटोजेनिन), जाइलोपिन, एनोनिन, आइसोलौरेलिन (सभी एल्कलोइड्स), गैलिक अम्ल, एपिकाटासिन, कुयरसेटिन, कैटसिन, कैमेफेरोल (फ्लावनोल ट्राइ ग्लाइकोसाइड)।

जड़ – मोंटेक्रिसटिन, सिससोलेमिन, सिसपेन्टलिन, सिसरेटीकुलेटिन, मूरिडाइनिन, कोरोनिन, सबडेलीन (सभी एनोनेसियस एसीटोजेनिन)।

बीज – मूरिकाटासिन, एनोनासिन, कोरोसोलोन, कोरोसोलीन, सोलामिन, आइसोएनोनासिन, कोरपोक्सिलोन (सभी एनोनेसियस एसीटोजेनिन)।

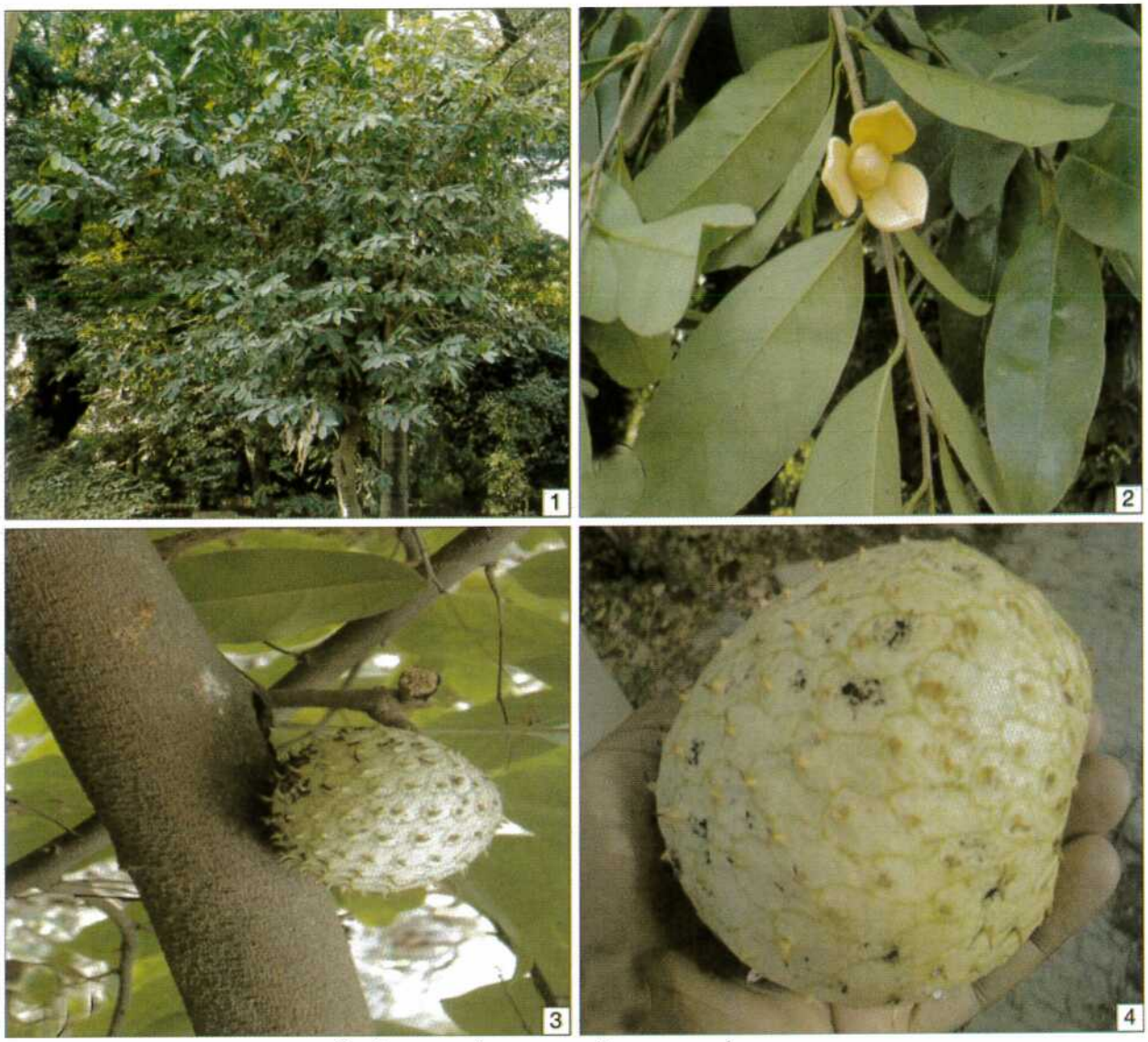

1. चिरहरित वृक्ष, 2. पुष्पित शाखा, 3. फलित शाखा, 4. पूर्ण पका हुआ फल

छाल – रेटिकुलिन, कॉकलौरिन, कोरेक्सीमिन, स्टफेरिन, एनोमूरिन, एनोमूरिसिन (सभी एल्कलोइड्स)।

उपयोगिता – इस पौधे का समस्त भाग *एनोना स्कुयमोसा* एवं *एनोना रेटिकुलाटा* की तरह उपयोगी होता है। यह मानव जाति के लिए घातक कैंसर एवं परजीवी संक्रमण से लड़ने में सहायता प्रदान करता है। भारत में इसका फल पारंपरिक औषधि के रूप में गठिया के दर्द, मानसिक विकार, डायरिया, पेचिश, ज्वर, मलेरिया, खाँसी–जुकाम, त्वचा संबंधी रोग, मधुमेह, सिरदर्द एवं याददाश्त को बढ़ाने के लिए किया जाता है। पत्तियों का काढ़ा गठिया एवं मस्तिष्क संबंधी विकारों में अत्यंत लाभकारी होता है। कूटे हुये बीज कृमिनाशक एवं अन्य परजीवियों के संक्रमण में लाभकारी सिद्ध होते हैं।

विश्व के विभिन्न देशों में लक्ष्मणफल को कई तरह से उपयोग में लाया जाता है–

अमेजोनिया – पत्तियों का प्रयोग टॉनिक के रूप में पैरों के सूजन, मूत्रविकार एवं बीजों को सुखाकर वातहर के रूप में दिया जाता है।

ब्राजील– फलों के रस को पेचिश, मुंह के छाले एवं ज्वर में दिया जाता है। पत्तियों का रस का प्रयोग यकृत रोग, कृमिरोग, पेटदर्द, गठिया में किया जाता है। जड़ के छाल के काढ़े को वातहर एवं मधुमेह में प्रयुक्त किया जाता है।

मलेशिया– पत्तियों के काढ़े को बढ़े हुये रक्तचाप, डायरिया और कसाय के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसकी पत्तियों के लेप को *अनोना स्कुयमोसा* एवं गुड़हल की पत्तियों के रस को मिलाकर सर पर मसलने से बेहोशी की अवस्था मे आराम मिलता है।

पेरू– पत्तियों के काढ़े का प्रयोग जुकाम, यकृत विकार, डायरिया, पेचिश, ज्वर, अति–तनाव, मधुमेह एवं अलसर मे किया जाता है। कूटे हुए बीजों का उपयोग परजीवियों, कीटों, एवं पिस्सुओं को मारने के लिए किया जाता है। छाल के काढ़े का प्रयोग मधुमेह एवं तनाव मुक्त होने के लिए किया जाता है।

टोगो– पत्तियों के अर्क का प्रयोग मलेरिया ज्वर में किया जाता है।

वेस्टइंडीज– पत्तियों के रस का प्रयोग अति–तनाव, पेट के कीड़ों को मारने के लिए, डायरिया एवं अस्थमा में किया जाता है। फलों का उपयोग ज्वर, परजीवी नाशक और डायरिया में किया जाता है। छाल का प्रयोग अनिद्रा एवं परजीवियों से बचने के लिए किया जाता है।

दक्षिण अमेरिका एवं अन्य अफ्रीकी देशों में इसकी पत्तियों को कैंसररोधी, कीटनाशक, कफ, दर्द, एवं चर्म रोगों के उपचार में लाया जाता है। साथ ही यह संवेदनशील त्वचा, मानसिक शांति, मांसपेशियों को आराम प्रदान एवं तनाव को कम करने में सहायक सिद्ध होता है। लोक वनस्पतिक उपयोग के साथ ही इसके फलों से पेय पदार्थ, कैन्डी, आइसक्रीम, शेक एवं सिरप बनाया जाता है। प्रकृति में उपलब्ध वनस्पतियाँ मानव जीवन के हर क्षेत्र को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती हैं। हमारे देश में कई वनस्पतियाँ ऐसी हैं जो विदेशी होकर भी देशी अथवा प्रकृत हो गईं हैं। लक्ष्मणफल भी उन्हीं में से एक है, जिसके नाम में ही इसे ईश्वर के फल की संज्ञा दे दी गयी है।

पेड़ लगाओ, पेड़ बचाओ।
मानव का अस्तित्व बचाओ।।
ऐसी उन्नति से क्या लाभ ?
जीवन हो जाये अभिशाप ।।

इंडोपेप्टाडेनिया औधेंसिस – एक संक्षिप्त परिचय

नीलम गौतम, अच्युतानंद शुक्ला एवं अम्बर श्रीवास्तव[1]
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद
[1]भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

भारत जैव सम्पदा की दृष्टि से विश्व के समृद्ध देशों में से एक है। भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में कुछ ऐसी दुर्लभ पादप जातियाँ पाई जाती हैं, जो विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। भारतीय वनस्पति सम्पदा में से लगभग 33 प्रतिशत स्थानिक जातियां हैं। भारतीय जैव विविधता के आकर्षण केंद्रों में हिमालय क्षेत्र अपने प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र के विविध संयोजन के कारण अनूठी जैव विविधता की विशाल श्रृंखला समेटे हुये है।

इंडोपेप्टाडेनिया फली परिवार की एक बारहमासी जाति है। यह एक स्थानिक दुर्लभ वृक्ष है और इसकी केवल एक जाति *इंडोपेप्टाडेनिया औधेंसिस* पायी जाती है। सामान्यतः इसे गैंती या हाथीपौला के नाम से भी जाना जाता है। इस मध्यम आकार के वृक्ष के मुख्य तने पर लम्बवत शाखाओं पर सघन झूलती शाखाएँ होती हैं जिन पर असंख्य नीचे की ओर उन्मुख पत्तियाँ पायी जाती हैं। इसके पत्तों के विशिष्ट आकार और खूबसूरत शिखा इसकी छटा में चार चांद लगाते हैं। इस जाति की आबादी भारत नेपाल की सीमा क्षेत्र तक ही सीमित है और 156–908 मीटर के ऊंचाई के बीच हिमालय की तलहटी मे पायी जाती है। इसकी खोज 1874 में ही की जा चुकी थी लेकिन अब तक इस पर कम ही ध्यान दिया गया है। वैज्ञानिकों के कथनानुसार भारत में पिछले कई दशकों के दौरान स्थानीय लोगों के निवास की जरूरतों के लिए इन वृक्षों के अत्यधिक दोहन और हनन के कारण इन पेड़ों की आबादी मे काफी हद तक कमी आई है और कुछ ही क्षेत्रों मे सीमित हो कर रह गयी है। इस जाति के प्राकृतिक उत्थान की क्षमता मे कमी के परिणामस्वरूप इसकी जातियों निरंतर घट रही है और दुर्लभ होती जा रही हैं। आईयूसीएन के मानदंड के अनुसार इसे विलुप्ति के कगार पर मूल्यांकित किया गया है और लुप्तप्राय श्रेणी मे रखा गया है

व्युत्पत्ति : *इंडोपेप्टाडेनिया* मे इंडो शब्द भारत की ओर लक्षित करता है जबकि *पिप्टाडेनिया* माईमोसी कुल में पाये जाने वाली एक और जाति है जिससे *इंडोपेप्टाडेनिया* के विशिष्ट गुण मिलते हैं। सर्वप्रथम इसे गोंडा जिले के अवध (औध) वन क्षेत्र मे पाया गया था, जिसके आधार पर इसकी जाति का नाम औधेंसिस रखा गया। औध ब्रिटिश भारत के आगरा और अवध के सयुंक्त प्रांत का हिस्सा था। यह प्रांत ही अब उत्तर प्रदेश के नाम से जाना जाता है।

वितरण : यह जाति मुख्यतः भारत नेपाल के सीमा पर मध्य हिमालय के उष्णकटिबंधीय नम पर्णपाती जंगल के तराई क्षेत्र मे पायी जाती है। पड़ोसी देश नेपाल के सीरिया नाका के पास, कंचनपुर जिले से लेकर कपिलवस्तु मे खंडों में इसकी आबादी पायी गयी है। भारत में उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में यह पाया जाता है। यह उत्तराखंड के चंपावत जिले के शारदा घाटी, टनकपुर और चौखा के बीच, कुमाऊँ के पहाड़ियों के बाहरी क्षेत्रों में पाया जाता है। उत्तर प्रदेश के सुहेलवा वन्य जीव वन डिवीजन, बलरामपुर में यह प्राकृतिक रूप से मिलता है। अब इस जाति के गिनती के पेड़ बलरामपुर की तुलसीपुर रेंज में एक नाले के किनारे बचे हैं, जिन्हें वन विभाग संरक्षित कर रहा है। बलरामपुर जिले के सुहेलवा वन्यजीव अभयारण्य के अलावा बारहवा रेंज, नुल्ला नदीतल, भैंसासुर, श्रावस्ती वन विभाग के भिंगा वन क्षेत्र, बहराइच, गोंडा, गोरखपुर के गंडक नदी के किनारे में भी इसकी आबादी पायी जाती है। इसके संरक्षण के लिए कई अनुसंधान केन्द्रो पर जैसे वन अनुसंधान संस्थान, देहारादून, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसन्धान संस्थान लखनऊ, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण देहरादून एवं इलाहाबाद में भी इसको परा–स्थाने (एक्स सीटू) संरक्षण हेतु लगाया गया है। इस जाति के संरक्षण के लिए इसके संग्रह को विनियमित किया गया है और अब कई स्थानों में इसका रोपण किया जाता है।

इस खूबसूरत पेड़ का निवास मुख्यतः पहाड़ों के ढलानों पर सड़क के किनारे, सतही भूमि पर शुष्क और कठोर चट्टानी मिट्टी पर, हिमालय की तलहटी मे नदियों के किनारो की कटान पर तथा पथरीली रेतीली मिट्टी के पास होता है। सुहेलवा के वन भी गंगा जलोढ़ पर हैं और मिट्टी रेतीली दोमट होती है जहां यह प्राकृतिक रूप से उपलब्ध है। नदियों के कटानों पर होने के कारण यह पेड़ गंभीर प्राकृतिक खतरों से प्रभावित होता है । इन मझौले पेड़ों के वन समुदाय के लिए आसानी से उपलब्ध होने के कारण इन पर चारा और लकड़ी के मूल्यों के लिए मानवीय दबाव अधिक होता है।

वानस्पतिक वर्णनः यह छोटे से मध्यम आकार (8–15 मीटर) के सदाबहार पेड़ होते हैं, जिसमें तना शाखित होता है। पुष्पकाल फरवरी से मार्च और फलन अप्रैल–मई के मध्य होता है। इंडोपेप्टाडेनिया की लकड़ी पीलापन लिए या लाल होती है, लकड़ी के अनाज (ग्रेंस) की संरचना बंद होती है इसलिए इसकी लकड़ी कठोर और टिकाऊ होती है। पेड़ कवच के साथ या बिना कवच के हो सकते हैं। मुख्य तना और शाखाएँ काँटेदार या बिना कांटे के हो सकती है। पुराने पेड़ों पर कांटे गिर जाते हैं और तने पर निशान छोड़ जाते हैं। तना छोटा होता है और इसकी छाल गहरे भूरे या लालिमा लिए हुये भूरे रंग की होती है। इसकी छाल लकड़ी नुमे पपड़ी की तरह निकलती रहती है। पेड़ की शाखाओं से लटकती हुयी लम्बरूप टहनियों होती हैं। टहनियों पर 6 से 12 सेमी० लंबे प्राक्ष होते हैं और प्रत्येक पर दो जोड़ी पिन्ने या कभी कभी एक जोड़ी पिन्ने भी पाये जाते हैं। पिन्ने की हर जोड़ी के बीच मे शंक्वाकार ग्रंथि पायी जाती है। नयी पत्तियाँ कोमल और लाल रंग की होती हैं जो की परिपक्व होने पर गहरे हरे रंग की हो जाती हैं। पत्तियाँ बिना डंठल के द्विपक्षवत होती हैं और 5 से 10 सेमी० लंबी होती हैं। पत्तियाँ आकार मे थोड़ी तिरछी होती और अंडाकार या गुर्दे के आकार की हो सकती हैं। यह पत्तियाँ शीर्ष पर कुंद होती हैं और इनकी सतह खुरदुरी चर्मवत् होती हैं। पत्तियों की मुख्य तंत्रिका से सहायक तंत्रिकाएँ निकलती हैं जो की किनारो पर फंदे की तरह होती हैं। एक ही पेड़ पर कई तरह की पत्तियाँ हो सकती हैं। पुष्पक्रम स्पाइक्स के रूप मे होते हैं और पत्तियों की तुलना में छोटे होते हैं, जिनकी लंबाई 2.5 से 4.0 सेमी तक होती है। ये पुष्पक्रम जब पत्तों और शाखा के कोण मे पाये जाते हैं तो शाखारहित होते हैं जबकि छोर पर होने पर 3 से 7 शाखीय स्पाइक्स पायी जाती हैं। पुष्प आकर्षक और द्विलिंगी होते हैं। पुष्प कोष कप के आकार के और सूक्ष्म होते हैं जिनमे 5 अस्पष्ट दांत पाये जाते हैं। फूल बहुदलीय होता है और 5 पंखुड़ियाँ पायी जाती हैं। यह पंखुड़ियाँ एक दूसरे से मुक्त होती हैं और 3 से 4 मिमी लंबी भालाकार होती हैं। इन पंखुड़ियों का रंग हरा पीला होता है और पुष्पकोश से ज्यादा लंबी होती हैं। फूलों मे 10 गुर्दे के आकार के पुंकेसर पाये जाते हैं जो की बिना डंठल के होते हैं। पुंकेसर जोड़ियों मे होते हैं और बाहर से फैले होते हैं। पराग कोष पर एक पर्णपाती ग्रंथि भी पायी जाती है। शैली रेशेनुमा होता है और कलंक टर्मिनल है, अंडाशय डंठलयुक्त होता है, जिसमें कई बीजाणु होते हैं। फली के डंठल लंबे होते हैं, जिस पर स्टीपिटेट पतली सरल सीधी फलियाँ या दात्राकार फलियाँ लटकती रहती हैं। फली की लंबाई 15 से 34 सेमी और चौड़ाई 2 सेमी तक होती है। फलियों की सतह समतल होती है और फलियों का रंग शुरू मे लाल होता है, जो परिपक्व होने पर हरी और पकने पर भूरे रंग की हो जाती हैं। प्रत्येक फली मे लगभग 15 से 20 बीज होते हैं जो बड़े अंडाकार और हल्के से चपटे होते हैं। इसके बीज हल्के और पंखनुमा होते हैं। फलियों मे स्फुटन दोनों किनारो से होता है या बीज के स्थान से होता है और बीजों में प्रकीर्णन हवा द्वारा होता है।

आर्थिक मूल्य व उपयोग : इसकी लकड़ी कठोर और टिकाऊ होने के कारण इमारती कार्यो के लिए अच्छी मानी जाती है। ईंधन के लिए भी ये उपयोग में लायी जाती है। स्थानीय लोगो द्वारा इसकी पत्तियां मवेशियों के चारे के लिए काम आती हैं और इसमें पाये जाने वाले औषधीय गुणों के कारण इसे दवा के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इसकी छाल का अत्यधिक इस्तेमाल होता है। सदाबहार सघन शाखाओं और विशिष्ट खूबसूरती के कारण इन पेड़ों को उद्यानों और मार्ग में लगाए जाने वाले पेड़ के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है।

संरक्षण के उपाय : *इंडोपेप्टाडेनिया* के लुप्तप्राय आबादी में निरंतर गिरावट आ रही है। ऐसी लुप्तप्राय जातियों की जनसंख्या का आकार छोटा होता है और एक बहुत ही सीमित रेंज होती है। समय रहते अगर इसके संरक्षण के उपायों को नही अपनाया गया तो बहुत जल्द उसकी जनसंख्या उस स्तर तक गिर जाएगी, जहाँ से यह जाति प्राकृतिक तौर पर अपना पुनरुद्धार करने में अक्षम होगी। इससे पहले की यह पूर्णतः क्षतिग्रस्त हो जाएँ इस पेड़ की जाति की रक्षा के लिए स्थानीय लोगो को इस जाति के विलुप्त होने के संकट के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता है। यह जाति मुख्यतः नदियों के कटान पर मौजूद है, इसलिए इसके प्राकृतिक निवास को बचाने और बरसात के मौसम में नदियों के तट को कटान से रक्षा के लिए उचित निर्माण और प्रबंधन योजना बनाई जानी चाहिए। विलुप्ति पर लगाम लगाने के लिए इसकी सुरक्षा को सुनिश्चित करने और इस जाति के अतिशोषण पर रोकथाम के लिए उचित कानून के जरिये संरक्षण कार्यक्रमों को लागू करने की आवश्यकता है, जिससे इस जाति के संरक्षण को बढ़ावा मिल सके।

फागुन संग पौधे

विनोद मैना
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर

चिड़ियों ने शोर किया फागुन की भोर हुई।
ढ़ोलक पर थाप लगी, घर घर से टेर हुई।
कि, आजा रे फगुआरे, कजरारे, मतवारे, रतनारे हुरिया रे मितवारे।
कि, फागुन अब आया है, फागुन अब आया है। फागुन अब .....।।
कंचन की किरण कुची, पोत रही दिवालें।
सरसों संग सर सर ही, खेतों में नव बालें।
महुए सी मादक अब मद वाली मलयज है।
रह–रह कर बजवाती, पीपल से कर तालें।।
नीम ठगा सोच रहा, फागुन के मदन नयन।
रूप नया देंगे फिर, पतझड़ जब गौर गई।
चिड़ियों ने शोर किया फागुन की भोर हुई .....।।
उर उमंग उमगी है, तेंदु, ताल, तेमल में।
बात रोज होती है, सलाई, साल, सेमल में।
बिरिया के बेरों पर बावरा, बमूरा है।
खैर करे खिरनी से, खिलवारे जंगल में।
फर–फराश चितिंत है, इमली की हालत पर।
बरनि, बनी, बंजारिन बगिया क्यों छोर गई।
चिड़ियों ने शोर किया फागुन की भोर हुई .....।।
सतरंगी रंगों ने रंग दी मन फुलवारी।
फूलों ने छोड़ी है रंग भरी पिचकारी।
कलियों संग के लिकरे, कजरारे कुल आरे।
तनिया बँध टूटे जब, कोयलिया, किलकारी।
चूनर तो रंग डाली, चोली मत रंग नारे।
फागुन सुनि हुरिया रे, अमराई नोर हुई।।
चिड़ियों ने शोर किया फागुन की भोर हुई .....।।
घर गुलाब महका है, फागुन की भोर हुई।
रोम, रोम पुल का है, सांस–सांस मधुवन है।
नयनों की पुतली में, नन्हीं सी खिड़की पर।
कान्हा भुज बंधन में, राधा का प्राण प्रिये।
तन–मन भी रंग डाले, रंग दे हर कोर नई।।
चिड़ियों ने शोर किया फागुन की भोर हुई .....।।

अमलतास

विनीत कुमार सिंह
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

यूँ तो इस धरा पर मिलते हैं अनगिनत मनोहर वृक्ष ।

जिनको देख मानव ह्रदय करता है मयूर नृत्य।।

जिसमें अमलतास की खूबसूरती का नहीं है कोई जोड़ ।

इस औषधीय पादप के गुण हैं कई अनमोल।

पीत–पीत जब पुष्प गुच्छ, इठलाते हैं इसकी टहनी पर ।

प्रतीत होता है की पुनः आगमन हुआ बसंत का इस पृथ्वी पर।।

सिजलपिनिऐसी कुल का यह पौधा है, दैवीय गुणों से परिपूर्ण ।

जिसके प्रत्येक भाग में होते हैं अनेक औषधीय गुण।।

पुष्प के गुच्छे जनमानस को करते हैं बहुत आकर्षित ।

कितना भी दुख हो अंतर्मन को हो जाता है वो प्रफुल्लित।।

पुष्प तो पुष्प है, इसका फल भी लगता है अत्यंत मनोरम ।

मानो जैसे लटक रहा हो वृक्ष पर कोई सुन्दर बेलन।।

सूरत में जितना सुन्दर है कीरत में उससे बेहतर है।

सम्पूर्ण वृक्ष में मिलते हैं अनेक रासायनिक संघटक हैं।।

ऐसे मनोहारी एवं उपयोगी वृक्षों की रक्षा हमारा कर्तव्य है।

इस आधुनिक प्रदूषित परिवेश में यही मानव के सच्चे मित्र हैं।।

भारत में जल संकट

संगीता निरंजन
हावड़ा

मूलभूत आवश्यकता की अब तक बर्बादी जारी है,
जल संकट की त्रासदी भारत में एक महामारी है ।
सूखा रूपी दानव ने पांव पसारे कब से हैं,
बुंदेलखंड, महाराष्ट्र विदर्भ में भूखे प्यासे अपने हैं।
बूंद –बूंद को तरस रहे हैं, धरती मां भी प्यासी है,
प्रतिदिन गिरता जलस्तर , भारी संकट की आगाजी है ।
वैश्विक ऊष्णता ने मारा है, मानव धरती पर बेचारा है,
कृत्यों की सजा भुगत रहा, बच्चा बच्चा हमारा है।
जैव विविधता रही नहीं, प्रकृति ने भोगा सारा है,
परिणाम स्वरूप केदार त्रासदी, अब ये हस्र हमारा है।
खेतों में दूर तलक फैली, उड़ती धूल की आँधी हैं,
तितली, भौंरे गौरैया, अब नाम के लिए बाकी हैं।
किसान की रोती आंखों में, स्याह अंधेरा छाया है,
कब ये सब कुछ बदलेगा, इसी सोच में बेचारा है ।
हमने अब तक, कब तक, इस सच को नहीं पहचाना है,
रोको इस बर्बादी को, अन्यथा शीघ्र काल गर्त में जाना है
जागरूकता की आवश्यकता है, जलश्रोतों को बचाना है ,
भू–जल दोहन रोककर जलस्तर बढ़ाना है ।
योजना परियोजना को कागजों से अब निकालना है ,
5 जून , 22 मार्च, की मूल भावना को जमीं पर उतारना है ।
जल संरक्षण पर्यावरण दिवस की अच्छाई जन जन को बताना है ,
नदी, झील, कुंए तलाब को प्रदूषण मुक्त बनाना है ।
जिस दिन मूल्य समझ जाएंगे अमृत रूपी जल का,
उस दिन हम देखेंगे रूप, गरजते बरसते बादल का ।
हरा भरा संसार हो अब, यह मात्र सपना नहीं बनाएंगे,
धन धान्य से भूमि भारत की, परिपूर्ण अब बनाएंगे ।

वैज्ञानिक शोध सच बोल रहे हैं

भोलानाथ
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद

यों पर्यावरणीय संघटकों में जग जन, विविध प्रदूषण घोल रहे हैं।
कोई सच माने, या ना माने लेकिन, वैज्ञानिक–शोध सच बोल रहे हैं।।

ज्ञानी, गुणवान, कर्मठ मानव को, यों प्रगति की सतत जरूरत है।
लेकिन प्रगति–प्रभावों से ही, यों पर्यावरण की बदली सूरत है।।
जल–वायु–मृदा हो गये प्रदूषित, जो जीवन प्रति अनमोल रहे हैं।
कोई सच माने, या ना माने लेकिन, वैज्ञानिक–शोध सच बोल रहे हैं।।

परिवर्तित जलवायु का दुष्प्रभाव, भौतिक धरती पर झलक रहा है।
मृदा अपरदन, दुरूपयोग, वनस्पति विनाश भी काया पलट रहा है।।
कहीं अतिवृष्टि, कहीं अनावृष्टि है, कहीं आंधी–अंधड़ डोल रहे हैं।
कोई सच माने, या ना माने लेकिन, वैज्ञानिक–शोध सच बोल रहे हैं।।

मृदु जल के प्राकृतिक स्रोत,नदी, झरने, झीलें, हिम शिलायें है।
वनस्पतियों से हरे–भरे जंगल, स्वस्थ जैव विविधता की आशायें हैं।।
प्राकृतिक संसाधनों के दोहन प्रति, जन छिपकर धावा बोल रहे हैं।
कोई सच माने, या ना माने लेकिन, वैज्ञानिक–शोध सच बोल रहे हैं।।

बारहमासी जलवाहक नदियों की, वर्तमान पारिस्थितिकी ठीक नहीं।
कहीं बनें बांध, तटबंध कहीं पर, किया बालू खनन सटीक नहीं।।
तटीय शहर, उद्योग निरंतर, निज मलवे, कचरे नित छोड़ रहे हैं।
कोई सच माने, या ना माने लेकिन, वैज्ञानिक–शोध सच बोल रहे हैं।।

वनस्पति विकास,संरक्षण,सदुपयोग से, जंगल विकास स्वतः होगा।
करें जल संचयन, रोकें दुरूपयोग, संरक्षण से जीवन सुखद होगा।।
जन सहयोग, नियंत्रण, तकनीकी प्रयास, अग्रिम राह टटोल रहे हैं।
कोई सच माने, या ना माने लेकिन, वैज्ञानिक–शोध सच बोल रहे हैं।।

जिन पर्वत शिखरों पर हिम शैलें थी, वैश्विक गर्मी से पिघल गये हैं।
उन पर आश्रित जल श्रोत प्रभावित, हर ऋतुएं, मौसम बदल गये हैं।
कहीं पर्वतारोही, आध्यात्मिक मेले, प्रदूषण की पोटली खोल रहे हैं।
कोई सच माने, या ना माने लेकिन, वैज्ञानिक–शोध सच बोल रहे हैं।।

1. अव्यक्तमूलमनादि तरू त्वच चारि निगमागम मने
   षट कंघ शाखा पंच बीस अनेक पर्न सुमन धने
   फल जुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेही आश्रित रहे
   पल्लव फूल नवल नित संसार विटप नमामहे (उत्तर कांड)
2. पीपर तरू तर ध्यान सो धरई
   जाप जग्य पाकरि तर करई
   आंव छांह कर मानस पूजा करई (उत्तर कांड)
3. दुर्वासना कुमुद समुदाई ।
   तिन्ह कहं सरद सदा सुखदाई ।।
   धर्म सकल सरसीरूह वृंदा
   ळोइ हिम तिन्ह हिदहइ सुखमंदा
   पुनि ममता जवास बहुताई
4. भयदायक खल कै प्रिय बानी
   जिमि अकाल कै कुसुम भवानी
5. ग्यान जोनी पावक जिमि अरनी (अरणि काष्ठ अग्नि उत्पन्न किया जाता था)

उपमा के लिए विशेष वनस्पति के उल्लेख से वनस्पति के गुण या दोष प्रकट करते है ; जैसे

साधु चरित शुभ चरित कपास ।
निरस बिसद गुनमय फल जासू ।।

साधु चरित कपास के फल के समान नीरस परन्तु बहुत गुण वाला होता है। वस्त्र बनाने के लिए कपास का फल सबसे अधिक उपयोगी है ।

ते सिर कटु तुंबरी समतूला अर्थात् तूंबी का फल कटु होता है ।

सुधि सुजान बट छीर मगावा अर्थात् जटाजूट संवारने में बट वृक्ष का दूध (रस) उपयोग किया जाता है।

धिग मोहि भयउं बेनु बन आगी
बेनुमूल सुत भयहु धमोई ———— बांस वन को आग और धमोई नष्ट कर देते हैं ।

बाज सुराग कि गांडर के तांत (तन्तु) से बने वाद्य यंत्र से सुरीले राग नहीं निकालेंगे ।

चंचरीक जिमि चम्पक बागा ———————— चम्पा फूल के बाग में भौंरे उदास और निर्लिप्त रहेंगे ।

जिमि जल निघटत सरद प्रकासे
बिलसत बेतस बनज बिकासे

शरद ऋतु में पानी धटने पर बेंत एवं समगोत्री वनस्पति का विकास होता है ।

अर्क जवास पात बिनु भयउ (वर्षा ऋतु में)
फूले कास सकल महि छाई (शरद ऋतु में)
काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच

अर्थात् केले के वृक्ष को काटने पर ही नये वृक्ष में फल लगता है ।

फूलइ फरइ न बेंत जदपि सुधा बससहि जलद

अर्थात् अमृत की वर्षा होने पर भी बेंत में फूल –फल नहीं लगेंगे ।

भूर्ज तरू सम सन्त कृपाला ।
परहित नित सह विपति बिसाला ।।
सन इव खल पर बंधन करई ।
खाल कढाई विततिं सहि मरई ।।

दूसरों के हित के लिए अपनी छाल देकर भोजपत्र विपत्ति सहन करता है। सन (जट) अपना छाल दूसरों के अहित (बंधन) के लिए देकर स्वयं नष्ट हो जाता है ।

इसी प्रकार राम चरित मानस में मांगलिक अवसर पर लगाए जाने वाले वनस्पति का उल्लेख मिलता है। यथा –

हरद दूब दधि अच्छत माला
सफल पूगफल कदलि रसाला
रोपे बकुल कदम्ब तमाला
पान पूगफल मंगल मूला
सफल रसाल पूगफल केरे
चम्पक बकुल कदम्ब तमाला
पाटल पनस परास रसाला
दधि दुर्वा रोचन फल फूल
नव तुलसी दल मंगल मूल

अध्यात्म (भक्ति), काव्य कौशल, सौंदर्य चेतना के समन्वय या संतुलन के लिए जहां वनस्पति का उल्लेख है उनके विश्लेषण (व्याख्या) से नये दिगन्त का अवलोकन संभव होता है। साधक–सिद्ध –सुजान से यह संभव होता है। पर्वत,वन और भूतल की समस्त संपदा बहुत (कौतुक) से देखते हैं ।

मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में पर्यावरण

संजीव कुमार दास
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

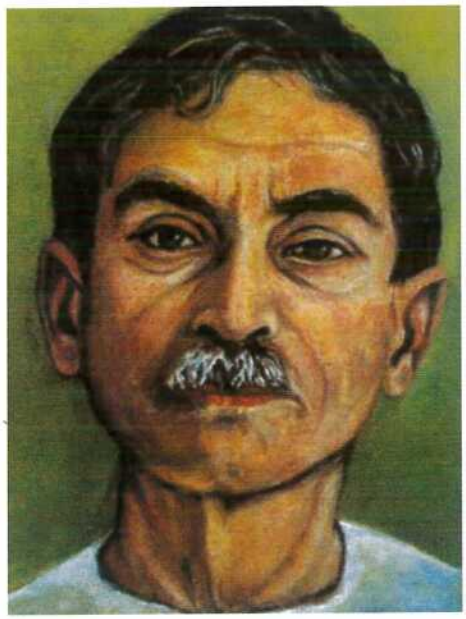

मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में बहुत सहज एवं सरल शैली में समाज के विभिन्न आयामों को जनसमक्ष के सम्मुख अपने लेखनी के माध्यम से रखा। उन्होंने अपनी रचनाओं में ग्रामीण जीवन, रुढ़िवाद एवं शोषण पर लिखा। उनकी रचनाओं में पेड़, पौधों एवं जीव जंतुओं को भरपूर स्थान प्राप्त हुआ है। प्रकृति के प्रति उनकी अपार रुचि थी जिसका प्रतिबिम्ब उनकी रचनाओं में भी देखने को मिलता है। प्रस्तुत लेख में मुंशी प्रेमचंद जी द्वारा रचित कहानियों को स–उदाहरण प्रस्तुत कर पर्यावरण के प्रति उनके लगाव और रूचि से पाठकों को अवगत करवाने का प्रयास किया गया है।

नागपूजा – इस कहानी में उन्होंने आषाढ़ माह का बहुत सुंदर वर्णन किया है। प्रातः का समय था। कीट–पंतगे नजर आ रहे थे। पौधे और वृक्ष निखरे हुये थे जैसे कि अभी अभी नहा के आये हों । चिड़ियों में गजब की चंचलता थी । डाल–डाल, पात–पात पर चहक रही थी । कभी किसी पौधे को देखती तो कभी फूल पर पड़ी जल की बूंदों को अपने मुंह पर उनके शीतल छींटे लेती। नाग पूजा के इस कहानी में सांप पर उन्होंने बहुत अपूर्व ढंग से लिखा है। पर्वत यात्रा नामक कहानी में उन्होंने नैनीताल व बद्रीनाथ का वर्णन किया है। ये दोनों स्थल पर्वत के आंचल में और हिमालय के आंचल में स्थित हैं। इस कहानी में भी उनका प्रकृति के प्रति आकर्षण झलकता है।

पूस की रात – कहानी में प्रेमचंद ने पूस की एक रात का सुंदर और मार्मिक वर्णन किया है। सर्दी में तारे भी ठिठुर गये थे । इसी कहानी में सप्तऋषि का वर्णन, आमों के बाग, अरहर के खेत एवं वृक्षों पर टपकते ओस की बूंदें। ये सब उनके प्रकृति के प्रति उनके प्यार को प्रकट करता है। इस कहानी में उन्होंने जबरा नामक कुत्ते का स्थान दिया है ।

ठाकुर का कुंआ – नामक कहानी में प्रेमचंद जी ने पानी के प्रति सचेतनता दिखाई है। जोखुको बदबूदार पानी पीने की कतई इच्छा नहीं हैं ।

समर यात्रा – इस संस्मरण में मुंशीजी ने स्वतन्त्रता सेनानियों के अल्हड़पन की प्रकृति के साथ अद्वितीय तुलना की है, खासकर बुढ़िया नोहरी की, जो अद्भुत एवं पठनीय है।

नेउर – कहानी में लेखक ने सूर्य और मेघ की तुलना की है। इसी प्रकार 'दो बैलों की कथा' में उन्होंने गधे के चरित्र पर बहुत सुंदर वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त इस कहानी में बैल, गाय एवं कुत्ते के चरित्र पर भी आलोकपात किया है ।

वरदान – इस कहानी में मुंशी जी ने विन्ध्याचल पर्वत पर अपनी लेखनी की अमिट छाप छोडी है। उन्हों ने लिखा है विन्ध्याचल मध्य रात्रि के निविड अंधकार में काल देव की भांति खड़ा था । पर्वत पर उगेछोटे–छोटे वृक्ष इस प्रकार दृष्टिगोचर हो रहे थे, मानो ये उसकी जटांए हैं और अष्ठभुजा देवी का मंदिर जिसके कलश पर श्वेत पताकायें वायु की मंद–मंद तंरगों में लहरा रही थी, उस देव के मंदिर के मस्तक में एक दीपक झिल मिला रहा था, जिसे देख कर धुंधले तारे का मान हो जाता था। गंगाजी की काली तंरगें पर्वत के नीचे सुखद प्रवाह से बह रहीं थी। उनके बहाव में एक मनोरंजक राग निकल रहा थी । ठौर–ठौर नावों पर और किनारों के आसपास मल्लाहों के चूल्हे की आँच दिखाई दे रही थी। नादान दोस्त में लेखक ने चिड़िया एवं उसके अंडे पर एक मार्मिक कहानी लिखी है ।

कश्मीरी सेब – इस कहानी में मुंशी जी ने अनेक फलों के गुणों के बारे में जिक्र किया है। उन्होंने लिखा है आजकल शिक्षित समाज में विटामिन और प्रोटीन के शब्दों में विचार करने की प्रवृति हो गई है। टमाटर को पहले कोई सेंत में भी न पूछता था। अब टमाटर भोजन का आवश्यक अंग बना गया है। गाजर भी पहले गरीबों के पेट भरने की चीज थी। अमीर लोग तो उसका हलवा ही खाते थे। मगर अब पता चला है कि गाजर में बहुत

विटामिन है, सेब के विषय में तो यह कहा जाने लगा है कि एक सेब रोज खाइये तो आपको डाक्टर की जरुरत नहीं होगी। इसी तरह उन्होंने इस कहानी दशहरी, लंगड़ा और अल्फांसो आमों की चर्चा की है।

रामचर्चा – इस कहानी से सरजू नदी का संजीव वर्णन किया है। चित्रकूट का वर्णन बहुत मनोहारी है। यमुना नदी का वर्णन है। पहाड़ियां हरी भरी झाड़ियों से लहरा रही थी। पेड़ों पर मोर, तोते इत्यादि पक्षियाँ चहक रहे थे। हिरणों के झुंड घांटियों में चरते दिखाई दे रहे थे। हवा इतनी स्वच्छ थी जैसे आत्मा को ताजगी मिल रही थी। वनों में ऋषि–मुनियों के आश्रम थे। इस कहानी में नर्मदा किनारे स्थित पंचवटी का बहुत सुंदर सजीव वर्णन है ।

यह मेरी मातृभूमि है – कहानी में मुंशी जी ने अपने बचपन के बरगद के पेड़ का अपूर्व वर्णन किया है, उन्होंने कहा है कि यही बरगद है जिसकी डालों पर चढ़ कर कर मैं फुनगियों तक पहुंच जाता था, जिसकी जटाएं हमारी झुला थी और जिसके हमें सारे संसार की मिठाईयों से अधिक स्वादिष्ट मालुम होते थे। उन्होंने अपने गांव के चौपाल के निकट गौशाला का वर्णन किया है, जहाँ गायें रखी जाती थी, बछड़ों के साथ हम लोग किलोलें करते थे। ईख के खेत और कोल्हावाडे का भी वर्णन है। इस कहानी में आगे चलकर मुंशी प्रेमचंद जी ने पतीत पावनी गंगा मैया नदी के चंहु ओर व्याप्त दृश्य का वर्णन किया है ।

विदुषी विरजन – लेखक ने प्रकृति और संगीत का सुंदर तारतम्य बिठाया था, दुर्गा मंदिर कहानी में कई स्थानों में उन्होंने प्रकृति को स्थान दिया है। सावन के महीने के समय वृक्ष हरी चादर ओढ लेते हैं। मृदु समीर सावन का राग गाते हैं, और बगुले डालियों पर बैठे डोले झूलते हैं। इस प्रकार हम देखते है कि मुंशी प्रेमचंद की अधिकतर कहानियां ग्राम्य जीवन एवं प्रकृति पर आधारित है । 'शाप' नामक इस कहानी मुंशी जी प्रकृति के बारे बहुत कुछ कहा है। यात्रा का सातवां वर्ष था और ज्येष्ट का महीना था । मैं हिमालय के दामन में ज्ञान सरोवर के तटपर हरी–हरी घास पर लेटा हुआ था, ऋतु अत्यंत सुहावनी थी। ज्ञान सरोवर के स्वच्छ निर्मल जल में आकाश और पर्वत क्षेणी का प्रतिबिंब, जल पक्षियों का पानी में तैरना, शुभ्रहिम श्रेणी का सूर्य के प्रकाश से चमकना आदि अति मनोहारी दृश्य। सावन का महीना था । आकाश पर काले काले बादल मंडरा रहे थे, मानो काजल के पर्वत उड़े जा रहे है। झरनों में दूध की धारायें निकल रही थी, मानो स्वर्ग से अमृत की बूंदे टपक रही हों। जल की बूंदे फूलों और पत्तियों के गले में चमक रही थी।

उपरोक्त कहानियों के अतिरिक्त ऐसी कई और रचनायें हैं जिनमें मुंशी प्रेमचंद और उनकी लेखनी पर्यावरण और उसके महत्व को समझाते हुये आम जन मानस को पर्यावरण के प्रति समर्पित भाव रख उसका संरक्षण करने को प्रेरित करती है।

संरक्षण ही उत्तम समाधान है, कभी इसका बुझे चिराग नहीं ।
अब धरती को चैन से रहने दें, कभी उपजे कोई विवाद नहीं।।
– भोलानाथ

वनस्पति वाणी अंक 25 : 136-138(2016)

अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में हिन्दी

पुरूषोत्तम कुमार डेरोलिया एवं एस. के. श्रीवास्तव
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, देहरादून

"हिन्दी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया ।"
– डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

साहित्य और भाषा – भाषियों की दृष्टि से हिन्दी संसार की विशिष्ट एवं अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाषाओं में से एक है। विश्वभर में आज लगभग 80 करोड़ लोग हिन्दी बोलते हैं। हिन्दी अपनी गरिमा एवं समृद्ध साहित्य के कारण विश्व के अनेक देशों के शताधिक महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती है। अनेक विदेशी विद्वानों ने हिन्दी को अध्ययन–अध्यापन, शोध एवं लेखन का विषय बनाकर इसे विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया हैं। हिन्दी की देवनागरी लिपि ध्वन्यात्मक विश्लेषण की दृष्टि से विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। हिन्दी, वर्तमान में विश्व में मेंडारिन (चीनी भाषा) के बाद दूसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व के लगभग 93 देशों में हिन्दी का या तो जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रयोग होता हैं अथवा उन देशों में हिन्दी के अध्ययन–शिक्षण की व्यवस्था है। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या जहाँ हिन्दी भाषा से अधिक है, वहीं चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा सीमित है, जबकि अंग्रेजी भाषा का क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा अधिक है, किन्तु हिन्दी बोलने वालों की संख्या अंग्रेजी बोलने वालों से अधिक हैं।

मॉरीशस, फिजी, गुयाना, सूरीनाम, कीनिया, ट्रिनीडाड–टुबैगो, म्यांमार, थाइलैंड, नेपाल, श्रीलंका, मलेशिया, दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में भारतीय लोग बड़ी संख्या में निवास करते हैं, जिनकी मातृभाषा हिन्दी रही। इन देशों में अधिकांश भारतीय मूल के अप्रवासी जीवन के विविध क्षेत्रों में हिन्दी का प्रयोग करते है। संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, मैक्सिको, क्यूबा, रूस, ब्रिटेन, जर्मनी एवं दक्षिण अफ्रिका आदि देशों में ऐसे कई लोग रहते हैं, जो हिन्दी को विश्व की एक भाषा के रूप में सीखते हैं, पढ़ते हैं तथा हिन्दी में लिखते हैं। इन देशों की विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में स्नातक, परास्नातक स्तर पर हिन्दी शिक्षा का प्रबन्ध हैं। भारत एवं पाकिस्तान के अलावा हिन्दी एवं उर्दू भाषियों की बहुत बड़ी संख्या विश्व के लगभग साठ देशों जैसे संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, मैक्सिको, ब्राजील, ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, नीदरलैंड, दक्षिण अफ्रिका, दक्षिण कोरिया, थाइलैण्ड, तजाकिस्तान, उज्बेकिस्तान एवं आस्ट्रेलिया आदि में निवास करती है। इन देशों की यह आबादी सम्पर्क भाषा के रूप में "हिन्दी–उर्दू" का प्रयोग करती हैं, हिन्दी की फिल्में देखती है, हिन्दी में गाने सुनती है।

हमें यह मानने में संकोच नही करना चाहिए कि हमारे देष में आधुनिक भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन, भाषा सर्वेक्षण, भाषा–कोष निर्माण, व्याकरण निर्माण, पाठ्य पुस्तकें और उनके मुद्रण में विदेशी विद्वानों की भी अहम् भूमिका रही हैं। इनमें मैक्समूलर, ग्रियर्सन, विलियम केरी, मैकग्रेगर, फादर कामिल बुल्के आदि प्रमुख है। प्रोफेसर जिंगडिग डान व चिन–शे–इन ने रामचरित मानस एवं बाल्मीकि रामायण का चीनी पद्यानुवाद किया। रूस के प्रोफेसर बारान्निकोव, चेलिशेव, दिम्शित्ज व चेर्निशोव, जापान के प्रोफेसर के. दोई, मिजोकामी, कोगा और सुजुकी, अमरीका के डा. केरीन शोमर, पोलैण्ड के प्रोफेसर ब्रिस्की, डा. रूत्कोवस्का व पर्नोवस्की, नार्वे के प्रोफेसर क्नूत क्रिस्तयासन, फीन धीसन और जेन्स बोरविंग, चेकोस्लाविया के ओदोले स्मेकल, बेल्जियम के प्रोफेसर पी. पोलट व किलवर्ट, फिनलेण्ड के वेर्तिल टिक्कनेन, इटली के स्टेफनोपियानों, हंगरी के मारिया नैज्यषी, फ्रांस के निकोल बलवीर आदि वे नाम हैं जो विश्व हिन्दी की मशाल जलाए हुए हैं।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विश्व के प्रमुख देशों ने अनुभव किया कि विशाल भारतीय भू–भाग में संपर्क के लिए हिन्दी की आवश्यकता होगी। अतः उन्होने अपने विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था की। अपने छात्रों को छात्रवृत्तियां देकर भारत पढ़ने भेजा। भारत से अध्यापक अपने देश बुलाये। वर्तमान में पैंतालिस से अधिक देशों के 143 विश्वविद्यालयों एवं 600 से भी अधिक प्राथमिक–माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी अध्ययन–अध्यापन हो रहा है। इन विश्वविद्यालयों में हिन्दी के पाठ्यक्रम के तहत् भाषा के अलावा भारतीय संस्कृति, इतिहास, समाज आदि के बारे में भी पढ़ाया जाता है। भारतीय बहुल देशों के अतिरिक्त अमरीका, कनाडा, रूस, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, हालैण्ड, यू.के., फ्रांस, इटली नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, स्विट्जरलेण्ड, जर्मनी, हंगरी एवं आस्ट्रिया आदि में हिन्दी के अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था विश्वविद्यालय तथा समकक्ष सुप्रसिद्ध संस्थाओं में अद्यतन एवं आधुनिक ढंग से किया गया है। इन देशों का एक बहुत बड़ा समुदाय कई दशकों से हिन्दी के अध्ययन–

अध्यापन, लेखन और प्रकाशन के द्वारा इस भाषा के प्रति अपनी अटूट निष्ठा का प्रमाण हमारे सामने प्रस्तुत करता हैं। यूनाइटेड किंगडम में लंदन, कैम्ब्रिज तथा यार्क विश्वविद्यालयों में हिन्दी के पठन–पाठन की व्यवस्था है। संयुक्त राज्य अमरीका के येन विश्वविद्यालय में तो सन् 1815 से ही हिन्दी की व्यवस्था है। त्रिनिदाद एवं टोबेगो में यूनिवसिटी ऑफ वेस्टइण्डीज में हिन्दी पीठ स्थापित की गई है। फिजी में शिक्षा विभाग द्वारा संचालित सभी बाह्य परीक्षाओं में हिन्दी एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। हिन्दी के होते हुए विस्तार को देखते हुए विश्व के कई विश्वविद्यालय हिन्दी पढ़ा रहे है जैसे – यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोय–अमरीका, यूनिवर्सिटी ऑफ आयोवा–अमरीका, नॉर्थ केरोलिना स्टेट यूनिवर्सिटी–अमरीका, ड्यूक यूनिवर्सिटी–अमरीका, द यूनिवर्सिटी ऑफ एडिनबर्ग–स्कॉटलेण्ड, आक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी–इंगलैण्ड, टोकियो यूनिवर्सिटी–जापान, शंघाई इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी–चीन, यूनिवर्सिटी ऑफ ऑकलैण्ड, वारसा यूनिवर्सिटी–पोलेण्ड, बुखारेस्त यूनिवर्सिटी–रोमानिया, सोफिया यूनिवर्सिटी–बुल्गारिया, टोरंटो यूनिवर्सिटी– कनाडा, बैंकुवर यूनिवर्सिटी–कनाडा आदि।

हिन्दी की ऐसी उत्तरोत्तर हो रही प्रगति का श्रेय भाषा की अपनी सहज, सरल आत्मसाती प्रकृति एवं हिन्दी विद्वानों, हिन्दी सेवियों, हिन्दी साहित्यकारों, समाज सुधारकों, हिन्दी की विभिन्न प्रचारक संस्थाओं, राजबल, सरकारी प्रयासों के साथ–साथ विश्व हिन्दी सम्मेलन को जाता है। विश्व मंच पर हिन्दी को स्थापित करने तथा उसके व्यापक–उदार रूप को उद्घटित करने में विश्व हिन्दी सम्मेलनों की अहम् भूमिका रही है। दिसम्बर 1993 मे मॉरीशस में आयोजित चतुर्थ विश्व हिन्दी सम्मेलन में भारत में एक 'अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय' तथा मॉरीशस में 'विश्व हिन्दी सचिवालय' की स्थापना के प्रस्ताव पारित किए गए। इसके तहत् भारतीय संसद द्वारा एक विशेष अधिनियम द्वारा 'महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय' की एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय के रूप में वर्धा (महाराष्ट्र) में स्थापना की जा चुकी है। वैश्विक स्तर पर हिन्दी के प्रचार–प्रसार एवं विकास के लिए 'विश्व हिन्दी सचिवालय' को मूर्तरूप देने के लिए भारत एवं मॉरीशस सरकारों के बीच 20 अगस्त 1999 को एक संयुक्त सहमति पत्र पर हस्ताक्षर हुए। 12 नवम्बर, 2002 को मॉरीशस की संसद में एक अधिनियम को पारित कर "विश्व हिन्दी सचिवालय" की स्थापना की गई। विश्व हिन्दी सचिवालय के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है–

- विश्वविद्यालयों में हिन्दी पीठों की स्थापना करना।
- हिन्दी को विश्व भाषा के रूप में प्रोन्नत करना।
- अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी पुस्तकालय की स्थापना करना।
- अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी पुस्तक मेलों का आयोजन करना।
- हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की अधिकृत भाषा बनाने हेतु प्रयत्न करना।
- हिन्दी विद्वानों के योगदान को मान्यता प्रदान करने हेतु उन्हें सम्मानित करना।
- हिन्दी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संगोष्ठी तथा विचार–विमर्श एवं चर्चा का आयोजन करना।
- हिन्दी में शोध कार्य के लिए 'दस्तावेज केन्द्र' स्थापित करना, जिसमें हिन्दी से सम्बद्ध आंकड़े उपलब्ध हों।

वर्तमान में संयुक्त राष्ट्र संघ की छह आधिकारिक भाषाएं है–अंग्रेजी, रूसी, चीनी, फ्रेंच, स्पेनिश और अरबी। इन भाषाओं में अरबी भाषा के अलावा सभी पाँचों भाषाएं संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना से ही इसकी आधिकारिक भाषाएं है। महासभा द्वारा अरबी भाषा को वर्ष 1973 में संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा का दर्जा प्रदान किया गया।

हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में मान्यता दिलाने के प्रयास विश्व हिन्दी सम्मेलनों एवं अन्य माध्यमों से चल रहे हैं। कई विश्व हिन्दी सम्मलनों में भी हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की सातवीं आधिकारिक भाषा बनाने का आह्वान किया जाता रहा है। हाल ही में भोपाल (मध्य प्रदेश) मे आयोजित दसवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में भी हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनाने पर विशेष जोर दिया गया। हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र में स्थापित करने के रास्ते में दो बाधाएं है, जिनमे पहली बाधा है किसी भाषा के रूप में मान्यता दिए जाने के बाद होने वाला खर्च और दूसरी बाधा है कि ऐसे किसी प्रस्ताव की मंजूरी के लिए संयुक्त राष्ट्र के प्रक्रिया नियम 51 में संशोधन के लिए सदस्य देशों के बहुमत का समर्थन।

भाषा के अध्ययन – अध्यापन के अतिरिक्त अनेक देशों में जनसंचार के क्षेत्र में हिन्दी का प्रयोग हो रहा है। अमेरिका से 'हिन्दी टाइम्स', 'हिन्दू टाइम्स', 'फिल्मी अदालत', मॉरीशस से आर्योदय' सुमन, दर्पण, सण्डे वाणी, अनुराग' (त्रैमासिक साहित्यिक पत्र), बाल सखा (बाल पत्रिका), फिजी से 'शांतिदूत' फिजी समाचार, लन्दन से 'जगतवाणी' (साप्ताहिक) आदि समाचार–पत्र अनेक वर्षों से हिन्दी में प्रकाशित हो रहे हैं और उनका भी एक अच्छा खासा पाठ्य समुदाय है। बी.बी.सी. की हिन्दी सेवा के हिन्दी कार्यक्रम वर्षों से लगातार चले आ रहे हैं और संसार के अनेक देशों में हिन्दी प्रेमी लोग इस कार्यक्रम को ध्यानपूर्वक सुनते हैं। आज बी.बी.सी. के हिन्दी एकक ने संसार के सुप्रसिद्ध प्रचार माध्यमों के बीच अपना एक सम्मानपूर्वक स्थान बना लिया है और उनकी कुशलता की सराहना अनेक लोग किया करते हैं। हिन्दी–हिन्दुस्तानी के अंतर्राष्ट्रीय प्रसार में फिल्मों का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी फिल्मों और सुगम संगीत की लोकप्रियता पाकिस्तान और पश्चिम एशिया के देशों में निरंतर बढ़ रही है। भाषा

के प्रसार में इससे अनायास ही सहायता मिल जाती है। अब ब्राजील एवं अन्य लेटिन अमेरिकी देशों में भी भारतीय भाषाओं विशेषकर हिन्दी के टी. वी. कार्यक्रम सीरियल भी प्रतिदिन दिखाए जाने लगे है। जिन्हें विदेशी दर्शकों का एक बड़ा वर्ग देखने लगा है। दक्षिण एशियाई देशों में यह सब पहले से ही हो रहा है। आज–कल सोशल मीडिया, वैचारिक आदान–प्रदान का एक प्रभावी मंच बन गया है, जिस पर भी हिन्दी का व्यापक उपयोग होने लगा है। अब तो इंटरनेट पर हिन्दी ब्लॉग की संख्या भी दिनों दिन बढ़ती जा रही है, जो कि लगभग एक लाख से अधिक है। इंटरनेट पर कई सरकारी एवं गैर सरकारी वेबसाइट मौजूद है। केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों की लगभग नौ हजार वेबसाइट हिन्दी में उपलब्ध है। हाल ही में 'ट्विटर' की तरह हिन्दी की 'मूषक' सोशल वेबसाइट आरंभ की गई है। गूगल के मुताबिक 20 प्रतिशत भारतीय उपभोक्ता हिन्दी में इंटरनेट को पसन्द करते है। वर्तमान में पन्द्रह से अधिक सर्च इंजन हैं, जो किसी भी वेबसाइट का कुछ ही मिनटों में अनुवाद कर देते है। गूगल, याहू और फेसबुक भी अब हिन्दी में उपलब्ध है। इंटरनेट पर हिन्दी का सफर रोमन लिपि से प्रारम्भ हुआ और फॉन्ट जैसी समस्याओं से जूझते हुए यह देवनागरी लिपि तक पहुँच गया। हाल ही में कुछ कम्पनियों ने देवनागरी में भी 'की–बोर्ड' उपलब्ध कराए है। आज–कल स्मार्टफोन पर ट्रांसलेशन एप उपलब्ध है, जो हिन्दी को अंग्रेजी में तथा अंग्रेजी को हिन्दी में आसानी से अनुवादित कर देते है। वर्तमान में हिन्दी की पुस्तकों का डिजिटल अथवा ऑनलाइन संस्करण, अमेजन, फ्लिपकार्ट और स्नेपडील सहित कई बड़े स्टोर उपलब्ध करा रहे हैं, जिन्हें कम्प्यूटर, लेपटॉप, टेबलेट, स्मार्टफोन पर घर बैठे या चलते फिरते आसानी से पढ़ा जा सकता है। इस प्रकार हिन्दी विश्व रंगमंच पर अपनी सार्थक एवं प्रभावी भूमिका निभाने की दिशा में सतत् रूप से अग्रसर है।

हिन्दी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्त्रोत है।
–सुमित्रा नंदन पंत

पर्यावरण समाचार – 2016

संजीव कुमार दास एवं संजय कुमार
भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता

1. 1945 में जापान के हिरोशिमा शहर में परमाणु बम गिरने के बाद पर्यावरण बिल्कुल परिवर्तित हो गया था। उस प्रतिकूल अवस्था में कनेर का फूल (ओलिऐन्डर) पहली बार खिला था। इसलिए वहाँ के निवासियों ने इस फूल को राजकीय फूल घोषित किया है। (लाइव मिंट)

2. अमेजन के वर्षा वनों को वृहत ऑक्सिजन तैयार करने वाला सयंत्र कहा जाता है। इसे आमतौर पर पृथ्वी का फेफड़ा भी कहा जाता है। बताया जाता है कि इस वन में बीस हजार से अधिक अज्ञात पादप जातियां विद्यमान हैं। इन सब कारणों से इस वन क्षेत्र को वनस्पति का स्टोर हाउस कहा जाता है । (टाइम्स ऑफ इंडिया)

3. भारतीय वन सर्वेक्षण के आंकड़ों के अनुसार भारत के पश्चिम बंगाल में सबसे अधिक मैंग्रोव वनस्पतियाँ हैं । इसके बाद गुजरात और अंडमान में मैंग्रोव वनस्पतियों की सर्वाधिक जातियाँ पाई जाती हैं। (इंडिया स्टेट ऑफ फॉरेस्ट रिर्पोट 2015)

4. हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि पृथ्वी को सर्वाधिक ऑक्सीजन समुद्री पौधों से प्राप्त होती है। इन पौधों को फाइटोप्लैक्टॉन कहते हैं। (टाइम्स ऑफ इंडिया)

5. वृक्ष वायु की गति को नियंत्रित करता है, इस प्रकार वायु प्रदूषण और भू–क्षरण को फैलने से रोकता है। एक सर्वे में कोलकाता में हरियाली 4.79 प्रतिशत, दिल्ली में 19.9 प्रतिशत, मुंबई में 18 प्रतिशत दर्ज की गई है। जबकि एक भारतीय शहर में हरियाली 15 प्रतिशत होनी चाहिये है। हरियाली की राष्ट्रीय प्रतिशत 19.49 है। कोलकाता में शहरीकरण के कारण 1 प्रतिशत से कम जगह खाली रह गयी है । (जागरण जोश)

6. मरूस्थलीयकरण को रोकने के लिये संयुक्त राष्ट्र अभिसमय (यूनाइटेड नेशंस कन्वेंशन टू कोम्बैट डेजर्टीफिकेशन) का प्रमुख उद्देश्य नव प्रवर्तनकारी राष्ट्रीय कार्यक्रमों एवं समर्थक अंतराष्ट्रीय भागीदारियों के माध्यम से प्रभावकारी कार्यवाही को प्रोत्साहित करना एवं मरूस्थलीय को रोकने में स्थानीय लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहित करने हेतु ऊर्ध्वगामी उपागम (बॉटम अप एप्रोच) के लिये प्रतिबद्धता है। (यूपीएससी 2016 प्री.)

7. भारत में पाई जाने वाली ऊंटों की नस्ल 'खराई ऊंट' एक अनूठी जाति है, जो समुद्री जल में तीन से 5 कि.मी. तक तैरने में सक्षम होती है और मैन्ग्रूव वनस्पति इसका प्रिय आहार है। (इंडियन एक्सप्रेस/यूपीएससी 2016 प्री.)

8. भारतीय प्राणी सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों ने बंगाल की खाड़ी में स्थित शंकरपुर तट, पूर्व मेदिनीपुर जनपद से एक नयी ईल मछली की जाति की खोज की है। इस मछली का नाम *जिम्नोथोरेक्स इंडिकस* रखा गया है। इस शोध को जूटैक्सा नामक जर्नल में प्रकाशित किया गया है। (द हिन्दू)

9. भारतीय वन्य जीव संस्थान, देहरादून राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण के सहयोग से देश में प्रथम टाइगर रिपोजिटरी (बाघ संग्रहणालय) बनाने का निर्णय लिया गया है। (द हिन्दू)

10. भारत के राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के द्वारा हाल में जारी किये गये आंकड़ों के अनुसार देश में पर्यावरण से जुड़े अपराधों में कमी आई है । जहाँ वर्ष 2014 में पर्यावरण से जुड़े 5846 मामले दर्ज किये गये थे, वहीं वर्ष 2015 में ये घट कर 5156 हो गये हैं, देश में कुल पर्यावरणीय अपराधों में 75 प्रतिशत अपराध उत्तर प्रदेश में दर्ज किये गये हैं, इसके बाद राजस्थान और आंध्र प्रदेश का स्थान आता है। (द हिन्दू)

11. भारतीय रेलवे ने देश का पहला ग्रीन रेल कॉरिडोर को 24 जुलाई 2016 को रामेश्वरम–मानामदुरै के बीच तमिलनाडु में शुरू किया है। 114 किलोमीटर लंबी रामेश्वरम–मानामदुरै रेल लाइन पर ट्रेनें बायो–टॉयलेट से सुसजित होंगी, इसके साथ ही यह रेल लाइन जीरो टॉयलेट डिस्चार्ज यानी टॉयलेट की गंदगी से मुक्त होगी। (जागरण जोश)

12. संसद ने अनिवार्य वनीकरण कोष विधेयक–2016 पारित कर दिया है, इसे 29 जुलाई 2016 को राज्यसभा ने पास कर दिया है। लोकसभा इसे पहले ही पारित कर चुकी है। इस विधेयक में अनिवार्य वनीकरण के लिए केन्द्र और राज्य स्तर पर कोष बनाने का प्रावधान है। नया कानून बनने से राज्यों को वनीकरण और सम्बन्धित गतिविधियों के लिए 42 हजार करोड़ रुपये दिए जायेंगे। पर्यावरण मंत्रालय के अनुसार ओडिशा को इस कोष से सबसे अधिक राशि लगभग छह हजार करोड़ रुपये दी जाएगी। (जागरण जोश)

13. पक्के टाइगर रिजर्व ने 22 मई 2016 को मुंबई में चार श्रेणियों में से एक इण्डिया बायो डायवर्सिटी अवार्ड 2016 प्राप्त किया। यह पार्क अरुणाचल प्रदेश के पूर्वी कामेंग जिले में है। पक्के टाइगर रिजर्व का हॉर्नबिल नेस्ट एडोप्शन प्रोग्राम संकटग्रस्त प्रजातियों के संरक्षण श्रेणी के तहत पुरस्कार से सम्मानित किया गया। ये पुरस्कार केंद्रीय पर्यावरण, वन एवं जलवायु मंत्रालय, राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण (एनबीए) और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) की संयुक्त पहल पर दिये गये हैं। (जागरण जोश)

14. पर्यावरण वन मंत्रालय ने 9 मई 2016 को समन्वित अपशिष्ट प्रबंधन (आईडब्ल्यूएमएस) हेतु एक वेब आधारित अनुप्रयोग की शुरुआत की है। यह वेबसाइट है (www.iwms.nic.in)सरकार ने अपशिष्ट के बेहतर प्रबंधन के लिए इसकी शुरुआत की है। इससे जो लोग विशेष श्रेणी के अपशिष्ट पदार्थो का आयात–निर्यात करते हैं, अपशिष्ट का पुनः उपयोग अथवा रीसाइक्लिंग करते हैं या सह–प्रसंस्करण के लिए कार्यरत हैं, उन्हें ऑनलाइन आवेदन करने में आसानी होगी, उन सभी अधिकारियों अथवा प्राधिकरणों को लाभ होगा जो अनुमति देने, आवेदन स्वीकार करने अथवा खारिज करने में सहयोगी भूमिका निभाते हैं इससे कागज की बचत होगी एवं हरित वातावरण में योगदान दिया जा सकेगा। (जागरण जोश)

15. विश्व वन्यजीव कोष (डब्ल्यूडब्ल्यूएफ) और ग्लोबल टाइगर फोरम (जीटीएफ) द्वारा 10 अप्रैल 2016 को प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, विश्व भर में पहली बार बाघों की संख्या में 22 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 100 सालों के निरंतर गिरावट के बाद, ताजे आंकड़ो के मुताबिक, बाघों की जनसँख्या 3890 हो गयी है। अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (आईयूसीएन) के अनुसार ये आंकड़ा 2010 में 3200 बाघों का था। संगठनों का कहना है कि इस वृद्धि के कई कारण हो सकते हैं, जिनमें भारत, रूस, नेपाल और भूटान में बाघों की संख्या में इजाफा, उन्नत सर्वेक्षण और व्यापक संरक्षण शामिल हैं। (जागरण जोश)

16. भारत के पश्चिमी घाट में स्थित अगस्त्यमाला बायोस्फीयर रिजर्व को यूनेस्को द्वारा विश्व के 20 नए बायोस्फीयर रिजर्व नेटवर्क में 19 मार्च 2016 को शामिल किया गया है। पेरू की राजधानी लीमा में आयोजित दो दिवसीय कार्यक्रम में इसे शामिल किया गया है। इससे विश्व के 120 देशों में कुल बायोस्फीयर रिजर्व की संख्या 669 हो गयी, जिसमें 16 ट्रांसबाउंड्री साइट्स (दो देशों में मौजूद) हैं। (जागरण जोश)

17. 4 दिसंबर 2015 को पर्यावरण वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के द्वारा इंडिया स्टेट ऑफ फॉरेस्ट रिपोर्ट (आई एस एफ आर) 2015 जारी किया गया, रिपोर्ट के अनुसार भारत के वन और वृक्षारोपण में 5081 वर्गकिलोमीटर की बढ़ोतरी हुई है। कुल वन क्षेत्र 79.42 मिलियन हेक्टेयर है जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का 24.16 फीसदी है। देश का कुल वन क्षेत्र 3775 वर्गकिलोमीटर बढ़ा है, जबकि वृक्षारोपण क्षेत्रों में 1306 वर्ग किमी की बढ़ोतरी हुई है। (जागरण जोश)

18. फरवरी 2016 के पहले सप्ताह में केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने 24 शहरों के लिए राष्ट्रीय वायु गुणवत्ता सूचकांक (एनएक्यूआई) जारी किया। रंग कोड और संख्यात्मक मान के साथ प्रकाशित एनएक्यूआई प्रत्येक शहर में प्रदूषण की तुलना करने में मदद करेगा। एनएक्यूआई का निर्धारण पार्टिकुलेट मैटर (पीएम 2.5 ठीक, श्वसनीय कण), सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, ओजोन, अमोनिया और शीशा समेत उच्च प्रदूषकों की सांद्रता के आधार पर किया जाता है। (जागरण जोश)

19. तमिलनाडु सरकार ने राज्य में कीटोप्रोफेन जो एक नॉन स्टेरॉयड एंटी इन्फ्लेमेट्री ड्रग (एनएसएआईडी) है, पर प्रतिबंध लगा दिया है। इसका प्रयोग पशु चिकित्सा के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर किया जाता है। यह कदम राज्य में में गिद्धों को गंभीर खतरे बचाने के लिए लिया गया है। बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी ने सर्वप्रथम वर्ष 1990 के दशक में भारत में गिद्धों की संख्या में कमी का उल्लेख किया था। वर्ष 2003 में डॉ लिंडसे ओक्स और उनकी टीम ने पाया की डिक्लोफेनाक गिद्धों की संख्या में कमी का एक मूल कारण है जिसके बाद डाईक्लोफेनाक को 11 मार्च 2006 को भारत में बाजार से हटा लिया गया था। (द हिन्दू)

20. भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के द्वारा वनस्पति अन्वेषण–2015 का विमोचन किया गया। वर्ष 2015 के दौरान भारत से 12 नये वंश, 183 नयी जातियों, 7 नए प्रभेदों एवं 3 उप जातियों का अन्वेषण किया गया, इसके अतिरिक्त 01 वंश, 144 जातियों, 4 उप जातियों और 13 प्रभेदों को भारतीय पादप जगत के लिये नये वितरणपरक अभिलेख के रूप में सम्मिलित किया गया है। वर्ष 2015 में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों के द्वारा 153 नवीन अन्वेषण किये गये हैं। इन अन्वेषणों में बालसम की 13 जातियाँ, जिन्जिबर की 03 जातियाँ, फाइकस की 03 जातियाँ, दलदली पौधों की 06 जातियाँ, घास की 5 जातियाँ एवं साइकस की 1 जाति एवं वन्य कुकुरमुत्तों (मशरूम) की 36 जातियाँ अन्वेषित की गई हैं।

(वनस्पति अन्वेषण–2015)

राजभाषा कार्यान्वयन में उल्लेखनीय बिन्दु

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने हिंदी के प्रसार एवं गति को बढाने के लिए एवं वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्य को पाने के लिए राजभाषा नीति का अनुपालन किया और वर्ष प्रयन्त कई कार्यक्रमों में प्रतिभाग और आयोजन किया जिनमें –

- सितम्बर 2015 में मुख्यालय एवं क्षेत्रीय केन्द्रों में हिंदी दिवस, हिंदी सप्ताह, हिंदी पखवाड़ा मनाया गया। मुख्यालय में इस दौरान निबन्ध, वाद–विवाद, टंकण, टिप्पण–आलेखन आदि प्रतियोगिताएं आयोजित की गई । प्रतियोगिताओं में श्रेष्ठ निष्पादन हेतु प्रतिभागियों को पुरस्कृत किया गया।

- राजभाषा अधिनियम 1963 एवं राजभाषा नियम 1976 का अनुपालन तथा राजभाषा विभाग द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्य प्राप्ति में मुख्यालय एवं क्षेत्रीय केन्द्र सचेष्ट रहे।

- भारतीय वनस्पति की विभागीय पत्रिका 'वनस्पति वाणी–2015, वनस्पति अन्वेषण'–2015 एवं वनस्पति अन्वेषण के 125 वर्ष पत्रिकाऐं प्रकाशित की गई ।

- कोलकाता नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति (कोलटालिक) क्षेत्र–8 के अध्यक्ष होने के कारण सर्वेक्षण ने वार्षिक बैठक में भाग लिया।

- कोलकाता नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की शीर्ष स्तरीय हिंदी निबंध प्रतियोगिता में हिंदीत्तर भाषा वर्ग में श्रीमती नीलिमा ए. एम. परिरक्षण सहायक को प्रथम पुरस्कार देकर पुरस्कृत किया गया।

- कोलटालिक की पत्रिका 'स्वर्णिमा' में 'भूकंप एक प्राकृतिक किंतु मानवजनित आपदा' लेख के लिए श्री संजय कुमार, वनस्पति सहायक, प्रकाशन अनुभाग को द्वितीय पुरस्कार देकर पुरस्कृत किया गया ।

- मुख्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने 'प्रोत्साहन योजना' के तहत 10 कर्मचारियों को वर्षभर हिंदी में कार्य करने के कारण पुरस्कृत किया गया।

- भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में हिंदी अधिकारी के पद को अपडेट कर सहायक निदेशक (राजभाषा) का दर्जा दिया गया है ।

- हिंदी के उत्तरोतर प्रगति के लिए भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के अधिकारी एवं कर्मचारी सचेष्ट रहे ।

लेखकों के लिए निर्देश

सभी लेखक वनस्पति वाणी में प्रकाशन हेतु रचनाएं भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें–

- रचना वनस्पति विज्ञान की किसी महत्वपूर्ण सूचना, अनुसंधान, उपयोग, महत्व इत्यादि से संबंधित एवं मौलिक होनी चाहिए तथा रचना की विषय वस्तु विगत वर्षों में प्रकाशित रचनाओं से भिन्न हो। रचनाएं ए–4 आकार के कागज पर 12 फॉन्ट साइज एवं द्विपंक्ति अन्तर (Double space) में टंकित अथवा सुपाठ्य एवं स्पष्ट रुप से हस्तलिखित होनी चाहिये। वर्तनी एवं व्याकरण पर विशेष ध्यान दें। प्रयास करें कि लेख की पांडुलिपि 10 टंकित पृष्ठों से अधिक न हो तथा छाया चित्रों की अधिकतम दो ही प्लेटें हों।
- कविताएं प्रस्तुत करते समय ध्यान रखें कि कविता का मूल भाव स्पष्ट रहें एवं कविता तुकान्त हो ।
- वर्गीकरण शब्दावली का प्रयोग Class –वर्ग, Order–गण, Family–कुल, Genus–वंश, Sub-species –उपजाति, Variety–प्रभेद, Form–रुप में करें। तथा टंकित रचनाओं में वंश एवं जाति का नाम *तिरछे* (*italic*) में एवं हस्तलिखित रचनाओं में रेखाकिंत (underline) करें।
- वनस्पतियों के नाम लिखते समय ध्यान रखें कि सबसे पहले वनस्पति का प्रचलित नाम तत्पश्चात् यदि आवश्यक हो तो वनस्पतियों के क्षेत्रीय नामों का प्रयोग प्रचलित के बाद किया जाये।
- एक ही लेख में एक ही तथ्य की बार–बार पुनरावृत्ति से बचें।
- औषधीय उपयोग से संबंधित लेखों में रोगों के प्रचलित हिंदी नामों का प्रयोग करें। अंग्रेजी नामों को अपरिहार्य स्थिति में देवनागरी लिपि में लिखें।
- जहाँ तक संभव हो लेख को सहज एवं सरल रुप प्रस्तुत करें, जिससे सभी पाठक सुगमता से समझ सकें।
- लेख में आभार एवं संदर्भों का प्रयोग नहीं करें।
- लेख में सम्मिलित फोटो–प्लेट्स के साथ इसमें उपयोग किये गये छायाचित्रों की अलग (JPEG) फाइल भी भेजें एवं छायाचित्रों की प्लेंटें बनाते समय लिजेन्ड में संख्यागत क्रम (1,2,3.....) का प्रयोग करें, प्लेंटों पर प्रयोग किये गये चित्रों की मूल प्रति अनिवार्यतः उपलब्ध करवाएं।
- इन्टरनेट से लिये गये चित्रों का प्रयोग कदापि न करें तथा कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन नही करें ।
- रचनाओं में दिये गये तथ्यों एवं सूचनाओं के लिये लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे, अतः तथ्यपूर्ण एवं वैज्ञानिक रचनायें ही भेजें।

वन महोत्सव–2016 की कुछ झलकियाँ – 1. ए. जे. सी. बोस भारतीय वनस्पति उद्यान में आयोजित वन महोत्सव–2016 में प्रतिभागी स्कूली बच्चे, अभिभावक एवं गणमान्य जन। 2. डॉ. ए. के. सान्याल, चैयरमैन, पश्चिम बंगाल जैव विविधता बोर्ड, प्रतिभागियों को सम्बोधित करते हुये। 3. डॉ. परमजीत सिंह, निदेशक, भावस, स्कूली बच्चों के साथ उद्यान में वृक्षारोपण कार्यक्रम के दौरान। 4. उद्यान में लगाई गई चित्रकला प्रदर्शनी का अवलोकन करते आगन्तुक। 5. डॉ. परमजीत सिंह, निदेशक, भावस, वन महोत्सव के दौरान श्री निरंजन दास, सी.जी.एम. (पर्यावरण) कोल इंडिया लिमिटेड को पौध भेंट करते हुये।

1

2

3

4

5

1. ए. जे. सी. बोस भारतीय वनस्पति उद्यान में 5 जून 2016 को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर आयोजित चित्रकला प्रतियोगिता में प्रतिभाग करते स्कूली बच्चे। 2. विश्व पर्यावरण दिवस के दौरान आयोजित पर्यावरण चेतना रैली का एक दृश्य। 3. श्री वी. के. एस. शास्त्री, ए. जी. एम., यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, विश्व पर्यावरण दिवस के दौरान उद्यान में वृक्षारोपण करते हुये। 4. 22 मई 2016 को अन्तर्राष्ट्रीय जैव विविधता दिवस के अवसर पर प्रतिभागियों को सम्बोधित करते डॉ परमजीत सिंह, निदेशक, भावस। 5. अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस, 21 जून 2016 के अवसर पर योग कार्यक्रम में सहभागिता करते भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिक एवं कर्मचारी।